मृदा एवं पादप पोषण

लेखकः
डॉ0 दिनेश मणि

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

मृदा एवं पादप पोषण

लेखक

डॉ. दिनेश मणि

उपाचार्य रसायन शास्त्र विभाग

(कृषि रसायन अनुभाग)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

© भारत सरकार, 2005

© Government of India, 2005

मूल्य :

देश में : 367 रु॰

विदेश में : 7.94 पौंड/4.33 डालर

प्रकाशक :

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

बिक्री हेतु संपर्क सूत्र :

(1) **बिक्री अनुभाग**
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

(2) **प्रकाशन नियंत्रक**
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
सिविल लाइन्स
दिल्ली–110 054

आयोग के पूर्व एवं वर्तमान अध्यक्ष

1.	डॉ. दौलत सिंह कोठारी	1961-1965
2.	डॉ. निहाल करण सेठी	1965-1966
3.	डॉ. विश्वनाथ प्रसाद	1966-1967
4.	डॉ. एस. बाल सुब्रह्मण्यम	1967-1968
5.	डॉ. बाबूराम सक्सेना	1968-1970
6.	श्री कृष्ण दयाल भार्गव	1970-1970
7.	श्री गंटि जोगि सोमयाजी	1970-1971
8.	डॉ. पी. गोपाल शर्मा	1971-1975
9.	प्रो. हरवंश लाल शर्मा	1975-1980
10.	प्रो. मलिक मोहम्मद	1983-1987
11.	प्रो. सूरजभान सिंह	1988-1994
12.	प्रो. प्रेमस्वरूप सकलानी	1994-1998
13.	डॉ. हरीश कुमार	1998-1998
14.	डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव	1998-2001
15.	डॉ. हरीश कुमार	2001-2003
16.	डॉ. (श्रीमती) पुष्पलता तनेजा	2003-2005
17.	प्रो. के. बिजय कुमार	2005-

समन्वय तथा संपादन

प्रमुख संपादक
प्रो. के. बिजय कुमार
अध्यक्ष

संपादक
श्रीमती शशि गुप्ता
सहायक निदेशक

पुनरीक्षक
डॉ. रमेशचंद्र तिवारी
प्रोफेसर, मृदा विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान संस्थान
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशन

श्री राम बहादुर
उपनिदेशक

डा. पी. एन. शुक्ल
वैज्ञानिक अधिकारी

श्री आलोक वाही
कलाकार

आमुख

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक विश्वविद्यालय-स्तरीय हिंदी पुस्तकों, शब्द-संग्रहों, परिभाषा-कोशों, चयनिकाओं, पत्रिकाओं, पाठमालाओं आदि का निर्माण किया है।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि उनकी विषय-सामग्री उपयोगी तथा अद्यतन हो और भाषा सरल, बोधगम्य एवं आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम से अपने-अपने विषय को पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला 'मृदा एवं पादप पोषण' इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कृषि रसायन विभाग के उपाचार्य डॉ. दिनेश मणि द्वारा तैयार की गई है। इसका पुनरीक्षण डॉ. रमेशचंद्र तिवारी, प्रोफेसर, मृदा विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने किया है। पुस्तक 10 अध्यायों में विन्यस्त है जिसमें लेखक ने मृदा के पोषक तत्व, जैविक खाद, विभिन्न रासायनिक जैव उर्वरक, मृदा की समस्याएं आदि महत्वपूर्ण विषयों का विस्तृत विवरण दिया है। पुस्तक में आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावली का प्रयोग करने का पूरा प्रयास किया गया है। लेखक तथा पुनरीक्षक के अथक परिश्रम के फलस्वरूप यह कार्य संपन्न हो पाया है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

आशा है यह पाठमाला विश्वविद्यालयी छात्रों तथा जिज्ञासुओं के लिए अत्यंत उपयोगी होगी।

के. बि. कुमार

वर्ष 2005

(प्रो. के. बिजय कुमार)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

भूमिका

बढ़ती जनसंख्या का भरण-पोषण सुनिश्चित करने के लिए खाद्यान्न उत्पादन में प्रतिवर्ष लगभग 5-6 लाख टन की बढ़ोत्तरी करने की आवश्यकता है। सघन कृषि के कारण मृदा से पोषक तत्वों के लगातार दोहन और कम आपूर्ति के कारण मृदा उर्वरता में कमी आ रही है तथा पोषक तत्वों का असंतुलन बढ़ता जा रहा है। प्रमुख पोषक तत्वों के अतिरिक्त गौण व सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी भी उभरकर सामने आने लगी है। ऐसी स्थिति में समुचित उत्पादन प्राप्त करने के लिए पादप पोषक तत्वों का आनुपातिक व वैज्ञानिक प्रबंधन बहुत ही आवश्यक हो गया है।

पादप पोषक तत्वों के मृदा से ह्रास के कारण मृदा उर्वरता क्षीण होती जा रही है। यदि पोषक तत्वों के उपयोग में पर्याप्त वृद्धि के द्वारा इस ह्रास को रोका न गया तो निकट भविष्य में फसलों की उत्पादकता में ठहराव या गिरावट आ सकती है जिससे देश की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। इस समय कोई भी अकेला स्रोत फसलों की पोषक तत्वों की मांग को पूरा करने की स्थिति में नहीं है। अतः पोषक तत्वों के अन्य स्रोत जैसे कार्बनिक खाद एवं जैव-उर्वरकों को रासायनिक उर्वरकों के साथ इस्तेमाल करने की आवश्कता है।

कृषि को टिकाऊ बनाने एवं खाद्यान्न उत्पादन में निरन्तर वृद्धि बनाए रखने के लिए उर्वरक उपयोग की वर्तमान पद्धति में परिवर्तन लाना आवश्यक है। आज उन सभी उपायों को अपनाने की जरूरत है जिनसे प्रयोग किए जाने वाले उर्वरकों की उपयोग क्षमता व उपलब्धता को बढ़ाया जा सके। फसल उत्पादन को टिकाऊ बनाने के लिए मृदा उर्वरता को बनाए रखना जरूरी है और मृदा उर्वरता को बनाए रखने के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन अति आवश्यक है।

इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत मोनोग्राफ लिखा गया है। विश्वास है कि प्रस्तुत मोनोग्राफ स्नातक तथा स्नातकोत्तर विद्यार्थियों सहित सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। मोनोग्राफ से संबंधित सुझावों का स्वागत है।

इलाहाबाद

डॉ. दिनेश मणि

मृदा एवं पादप पोषण

अध्याय		पृष्ठ संख्या
1. प्रस्तावना		1
2. मृदा एवं पादप पोषण		11
	• ऐतिहासिकी	
	• उद्देश्य एवं महत्व	
	• वर्तमान परिप्रेक्ष्य	
3. आवश्यक पोषक तत्व		37
	• प्राथमिक पोषकतत्व (नाइट्रोजन, फास्फेटस, पोटेशियम)	
	• द्वितीयक पोषक तत्व (कैल्शियम, मैग्नीशियम, गंधक)	
	• सूक्ष्म पोषक तत्व (आयरन, मैंगनीज, कॉपर) जिंक, मॉलिब्डिनम, बोरोन, क्लोरीन	
4. जैविक खादें		63
	• गोबर, कम्पोस्ट, हरी खाद	
	• खली की खाद, वर्मी कम्पोस्ट	
	• एजोला, नील हरित शैवाल इत्यादि	
5. रासायनिक उर्वरक		135
6. जैव उर्वरक		205
7. समस्याग्रस्त मृदाएं एवं मृदा सुधारक		217
8. मृदा परीक्षण: आवश्यकता और महत्व		247

9. उर्वरकों का सक्षम उपयोग		255
10. समन्वित/एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन		283
11. उपसंहार		295
परिशिष्ट	I. उपयोगी सारणियां	303
	II.पारिभाषिक शब्दावली	
	• हिंदी-अंग्रेजी	313
	• अंग्रेजी-हिंदी	320
	III. संदर्भ	329

अध्याय–1

प्रस्तावना

इस समय देश में 14.20 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में खेती की जा रही है। यह भूमि भी धीरे-धीरे कम होती जा रही है और आबादी बढ़ती जा रही है। अनुमान है कि वर्ष 2025 में भारत की आबादी 125 करोड़ हो जाएगी, तब वर्तमान उत्पादकता के आधार पर खाद्यान्न उत्पादन की जरूरतें पूरी करने के लिए 2025 तक कम से कम 3 करोड़ टन नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश की जरूरत पड़ेगी (सारणी 1:1)।

सारणी 1.1: 21वीं सदी में खाद्यान्नों की आवश्यकता (मिलियन टन)

फसल	2001-2002	2006-2007
चावल	89.8	98.8
गेहूं	72.5	80.7
मोटे आनाज	32.6	34.4
दालें	18.4	21.5
खाद्य तेल	7.9	9.5
चीनी	16.8	19.6
सब्जी	91.7	108.5
फल	52.6	69.1

(स्रोत: स्वामीनाथन, एम.एस., एग्रीकल्चर फॉर 21st सेंचुरी "किसान वर्ल्ड" 1999)

यह उर्वरक भी तभी पर्याप्त होगा जब जैव-उर्वरक और गोबर की खाद का पर्याप्त उपयोग किया जाए और यह सर्वत्र सामान्य रूप से उपलब्ध हो। अभी रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग में भारी असंतुलन है। जहां पंजाब में 167 किलोग्राम उर्वरक प्रति हेक्टेयर इस्तेमाल किया जाता है, वहीं असम में इसका सिर्फ 2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर ही है।

दूसरी ओर, पैदावार बढ़ाने में भूमि से जितना पोषक तत्व लिया गया है, और उतना वापस नहीं लौटाया है। यही वजह है कि आज हमारे देश के खेत की मिट्टी में करीब 5 लाख टन सल्फर की कमी है, जो 2025 तक 20 लाख टन हो जाएगा। उस समय मिट्टी को पर्याप्त उपजाऊ कहलाने के लिए 324 हजार टन जिंक, 130 हजार टन लोहा, 11 हजार टन तांबा, 22 हजार टन मैंगनीज और 4 हजार टन बोरॉन की जरूरत पड़ेगी। जैव-उर्वरक, कंपोस्ट, गोबर की खाद तथा फसलों के क्रम के सही चुनाव कुछ ऐसे तरीके हैं, जिनसे रासायनिक उर्वरकों की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है।

एक अनुमान के अनुसार 2035 तक कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता 0.08 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति रह जाने की संभावना है। अत: बढ़ती हुई जनसंख्या की मांगों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि मृदाक्षरण को रोका जाए तथा बेकार बंजर, ऊसर, क्षारीय, अम्लीय तथा निम्नीकृत मृदाओं को सुधारा जाए। मृदा वैज्ञानिकों के अनुसार देश की आधी से ज्यादा खेती योग्य जमीन किसी न किसी समस्या से ग्रस्त है। यह अनुमान नागपुर में स्थित राष्ट्रीय भूमि उपयोग और नियोजन ब्यूरो ने लगाया है। इस केंद्र में उपग्रह चित्रों की मदद से भारत के सभी राज्यों की मिट्टियों के नक्शे बनाए गए हैं। अनुमान है कि देश की कोई 13 करोड़ हेक्टेयर जमीन बंजर हो चुकी है। इन जमीनों को उपजाऊ बनाकर खेती लायक बनाने की तकनीकें मौजूद हैं, पर मुश्किल से 40 लाख हेक्टेयर जमीन सुधारी गई है।

उर्वरक उपयोग द्वारा उपज में वांछित वृद्धि न होने के कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

1. उर्वरकों का असंतुलित उपयोग।

2. कुछ नकदी फसलों (आलू, गन्ना आदि) में आवश्यकता से अधिक उर्वरकों का प्रयोग।

3. गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी।

4. उर्वरकों विशेषकर फास्फेटिक तथा विभिन्न ग्रेड के एन.पी.के मिश्रणों की संदिग्ध गुणवत्ता।

5. उर्वरकों के प्रयोग की गलत विधि एवं समय।

6. अनुचित जल-प्रबंध।

7. फसलों में कीट-व्याधि व रोग तथा खरपतवारों की बढ़ती समस्या और समय से उन पर नियंत्रण न हो पाना।

8. लगातार एक ही फसल-चक्र अपनाने से मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में गिरावट।

9. नहर समादेश क्षेत्रों में भूगर्भ जलस्तर ऊपर उठने से जलप्लावन तथा लवणीयता-क्षारीयता की समस्या।

उर्वरकों के प्रयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है:

1. मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरक प्रयोग।
2. उन्नत खेती की संस्तुतियों का अनुपालन।
3. समय पर बुवाई, पौधों की उचित संख्या, उचित जल-प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण, फसल-सुरक्षा आदि।
4. पिछली फसल में दिए गए उर्वरकों की मात्रा के आधार पर उर्वरक संस्तुतियां।

5. दलहनी फसलों के बाद ली जाने वाली फसल में नाइट्रोजन की मात्रा में कटौती।

6. फॉस्फोरसधारी उर्वरकों का कूंड़ में प्रयोग।

7. गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यक पूर्ति।

8. नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की टॉप ड्रेसिंग में सावधानी-दोपहर बाद टॉपड्रेसिंग, उर्वरक को यथासंभव मिट्टी में मिला देना चाहिए ताकि गैस रूप में नाइट्रोजन की हानि को रोका जा सके, नाइट्रोजन का पूरे फसल-काल में किस्तों में प्रयोग।

9. दलहनी फसलों में राइज़ोबियम कल्चर का प्रयोग।

10. मिट्टी और जलवायु की विभिन्नता के आधार पर फसल और फसली जातियों का चयन।

11. धान की फसल में नीम की खली लेपित यूरिया, एवं यूरिया सुपर ग्रेन्यूल का प्रयोग।

12. धान, गेहूं, फसल-चक्र में ढैंचा की हरी खाद का प्रयोग।

13. गंधक की कमी वाले क्षेत्रों में सिंगल सुपर फास्फेट तथा अमोनियम सल्फेट उर्वरकों को वरीयता।

14. पोषक तत्वों की उर्वरकों, जैविक खादों एवं जैव-उर्वरकों से एकीकृत आपूर्ति।

15. फसल-चक्र में परिवर्तन।

कृषि विशेषज्ञों के अनुसार यदि एकीकृत पौध पोषक तत्व प्रणाली

को प्रभावी तरीके से अपनाया जाए तो लंबे समय तक पौधों को पोषक तत्वों की आवश्यकता पूर्ति करने के साथ-साथ मृदा उर्वरता में वांछित सुधार करके फसलों की आर्थिक उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

एकीकृत पौध पोषक तत्व प्रणाली से अभिप्राय है कि लंबे समय तक मिट्टी की उर्वरता कायम रखना और संभवत: सुधारते हुए टिकाऊ खेती करना। विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों में किसी भी फसल या फसल प्रणाली से अनुकूलतम उपज और गुणवत्ता तभी हासिल की जा सकती है जब समस्त उपलब्ध साधनों से पोषक तत्वों को प्रदान कर उनका वैज्ञानिक प्रबंध किया जाए। एकीकृत पौध पोषक तत्व प्रणाली एक परंपरागत पद्धति है। मृदा पौध प्रणाली में सूक्ष्म मात्रा में पोषक तत्वों का हेर-फेर होने के कारण पौधों की समस्त पोषक तत्वों की आवश्यकता पूर्ति कार्बनिक स्रोतों से हो जाती थी जिसमें मुख्य पोषक तत्वों के अलावा गौण और सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाए जाते थे। अब एकीकृत पौध पोषक तत्व प्रणाली का महत्व इसलिए है, क्योंकि प्रथम, बढ़ती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति केवल लगातार खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी से ही संभव है। इसके लिए प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि करनी होगी जिसके लिए प्रति हेक्टेयर अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होगी। जबकि भारत में उर्वरक उत्पादन का स्तर पर्याप्त नहीं है जो कि वर्तमान में पौधों की कुल पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति कर सके। द्वितीय, अखिल भारतीय स्तर पर खाद और उर्वरक पर किए गए परीक्षणों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि केवल रासायनिक उर्वरकों या केवल कार्बनिक खादों के उपयोग से किसी भी फसल या फसल प्रणाली से अधिक उपज प्राप्त नहीं जा सकती। अब यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है कि कार्बनिक खादों के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों के संतुलित उपयोग से न केवल अधिकतम उपज ली जा सकती है, बल्कि लंबे समय तक इनके प्रयोग से मृदा के उर्वरता-स्तर में भी सुधार होता है, मुख्य पोषक तत्वों के अलावा गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी नहीं

होती एवं उर्वरक उपयोग क्षमता में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से किसान के हित में है।

कृषि वैज्ञानिकों एवं मृदा रसायनज्ञों द्वारा यह अनुभव किया जा रहा है कि अधिक उपज के लिए अधिकांश क्षेत्रों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटैशियम का उपयोग आवश्यक है। यही नहीं, इन प्रमुख पोषक तत्वों के साथ ही बहुफसली खेती वाले क्षेत्रों में जिंक और गंधक-जैसे सूक्ष्म व गौण तत्वों की कमी हो गई है। अब यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि खाद्यान्न उत्पादन के बढ़ते लक्ष्य की पूर्ति हेतु भविष्य में कृषि उत्पादकता में काफी वृद्धि करनी होगी। अत: भूमि में जिन तत्वों की कमी है उनकी पूर्ति के लिए उन सभी तत्वों का संतुलित मात्रा में उपयोग किया जाना चाहिए ताकि भूमि की प्राकृतिक उर्वरता में ह्रास न हो और भूमि उत्पादकता कायम रहे। इसके लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश उर्वरकों के साथ-साथ जैविक खाद-कंपोस्ट, गोबर की खाद, हरी खाद एवं जैव-उर्वरकों के उपयोग के साथ-साथ सूक्ष्म व गौण पोषक तत्वों का इस्तेमाल किया जाए।

आज जब हम अधिक उपज देने वाली जातियों से धान और गेहूं की अधिकाधिक उपज ले रहे हैं और जनसंख्या वृद्धि रुक नहीं पाई है, इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए भोजन जुटाना हमारे लिए वास्तव में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। हम उर्वरकों के उपयोग को अचानक बिल्कुल कम तो नहीं कर सकते किंतु कृषि अवशेषों, हरी खादों तथा जैविक खादों के साथ-साथ पूरक रूप में उर्वरकों का प्रयोग करना होगा किंतु पोषक तत्व प्रबंध संबंधी निम्न तथ्यों को भी ध्यान में रखना होगा:

1. जहाँ पर एन. पी. के. असंतुलित मात्रा में उपयोग हो रहा है, उसे दूर किया जाए तथा साथ ही गंधक एवं जिंक की कमी वाले क्षेत्रों का भी पता लगाना होगा।

2. असिंचित क्षेत्रों में उर्वरकों का उपयोग बढ़ाना होगा।

3. अम्लीय मिट्टियों से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 3-4 क्विंटल/हे. की दर से चूने का प्रयोग करके एन. पी. के. की उपयोग क्षमता में वृद्धि करनी चाहिए।

4. तत्वों के निक्षालन एवं गैसीय हानि को रोककर उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ाना होगा।

5. जहां पर सिंचाई की उत्तम व्यवस्था हो वहां पर हरी खाद और कृषि अवशेषों का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।

सघन कृषि प्रणाली के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होने के साथ ही मिट्टी की उर्वरता में कमी आई है जिससे मिट्टी के पोषक तत्वों की आपसी संतुलन बिगड़ा है। अनेक क्षेत्रों में प्रमुख पोषक तत्वों के साथ ही गौण और सूक्ष्म तत्वों की कमी का संकेत मिला है (देखिए सारणी 1:2)।

सारणी 1.2: भारतीय मिट्टियों का उर्वरता स्तर और कमी की सीमा

पोषक तत्व	मृदा उर्वरता स्तर
नाइट्रोजन	223 जिलों में न्यून, 118 में मध्यम और 18 जिलों में उच्च
फास्फोरस	170 जिलों में न्यून, 184 में मध्यम और 17 जिलों में उच्च
पोटैशियम	47 जिलों में न्यून, 192 में मध्यम और 122 जिलों में उच्च
गंधक	90-100 जिलों में कमी का संकेत मिला है।
मैग्नीशियम	केरल, अन्य दक्षिणी राज्य, अति अम्लीय मिट्टियों में कमी
जिंक	1,50,000 मृदा नमूनों में 50 प्रतिशत में कमी
लोहा	चुनही मिट्टियों में लोहे के प्रयोग से लाभ
बोरॉन	बिहार के कुछ भाग, कर्नाटक और पश्चिमी बंगाल

(स्रोत: टंडन, एच. एल. एस. एवं प्रतापनारायण, 1990)

कृषि उपादानों में सबसे कीमती उर्वरक है। लेकिन किसान उर्वरक उपयोग में प्राय: लापरवाही बरतते हैं। भूमि की दशा और फसल पैदावार लेने के लिए प्रत्येक किसान का प्रमुख और पहला कर्तव्य यह है कि वह भूमि की दशा और फसल के अनुरूप ही उर्वरकों का चयन करना चाहिए क्योंकि प्रत्येक राज्य में भूमि की विभिन्न दशाएं होती हैं। विपरीत प्रकृति की दशा में यदि विपरीत प्रकृति वाला उर्वरक प्रयोग किया जाएगा तो लाभ की जगह किसान को आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। उससे इच्छित उपज तो मिलना दूर, उर्वरक पर खर्च की गई धनराशि भी व्यर्थ चली जाएगी।

जब से अधिक उपज देने वाली किस्मों का प्रचलन बढ़ा है, तब से प्रत्येक किसान फसलों में उर्वरक उपयोग के बारे में सजग है, फिर भी किसान से कहीं न कहीं भूल हो ही जाती है। जैसे फसल विशेष या भूमि की भौतिक दशा जाने बिना ही किसी भी उर्वरक का इस्तेमाल करना, मिट्टी परीक्षण कराए बिना उर्वरक का प्रयोग करना, प्रस्तावित कुल उर्वरकों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश) को चाहे उनकी आवश्यकता हो या न हो, खेत की तैयारी के समय ही इस्तेमाल करना आदि।

स्मरण रहे कि मिट्टी का परीक्षण कराए बिना उर्वरक का प्रयोग न केवल धन का अपव्यय है अपितु इससे पूरा लाभ भी नहीं होता है। अत: मिट्टी का परीक्षण कराकर ही उर्वरकों का उपयोग करना किसान के हित में है। मिट्टी की उर्वरता का मूल्यांकन करने के लिए और उर्वरकों का वैज्ञानिक उपयोग करने के लिए मिट्टी परीक्षण और उसके आधार पर फसलों की अनुक्रिया संबंधी अनुसंधान किया जाता

है। मिट्टी परीक्षण से यह पता चल सकता है कि कौन-सी मिट्टी ऐसी है, जिसमें अधिक उर्वरक देने से प्रभाव या तो बिल्कुल नहीं होगा या कम होगा। संतुलित उर्वरक उपयोग का अर्थ यह नहीं है कि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा मृदा में एक समान डाली जाए। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि मृदा में जिस तत्व की कमी पाई जाए, उसी तत्वधारी उर्वरक को भूमि में फसल की संस्तुत मात्रा के अनुसार दिया जाए।

भारतीय कृषक वर्ग में एक बड़ी भारी कमी यह है कि ये केवल नाइट्रोजन (नाइट्रोजनधारी उर्वरक यूरिया) पर ही अपना ध्यान दे रहे हैं। उन्हें यह पता होना चाहिए कि प्रमुख पोषक तत्वों में फास्फोरस और पोटाश भी आवश्यक हैं। जब तक इन तीनों पोषक तत्वों का संतुलन नहीं होगा तब तक एक तत्व इच्छित पैदावार नहीं दे सकता। लेकिन आम किसान इस विषय में आज भी अनभिज्ञ हैं। जब तक इन गौण और सूक्ष्मात्रिक तत्वों का उपयोग नहीं किया जाएगा, प्रमुख पोषक तत्वों के उपयोग से भी कोई विशेष लाभ नहीं मिल सकता।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने सन् 1969 से अखिल भारतीय स्तर पर मिट्टी की जांच के आधार पर फसलों पर उर्वरकों का प्रभाव परखने के लिए अनुसंधान प्रायोजना प्रारंभ की थी। यह अनुसंधान देश के विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों में किए जा रहे हैं। तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, हरियाणा, पंजाब, और दिल्ली के आस-पास के इलाकों में किए गए प्रयोगों से उर्वरकों के इस्तेमाल के बारे में सही सलाह देना संभव हो सका है। इस बारे में अनुसंधान का उद्देश्य निम्नलिखित था:

1. जहां पर उर्वरक बिल्कुल नहीं दिए गए हैं, उन मिट्टियों में दो स्थानों से प्राप्त की गई उपज में मिट्टी की प्रारंभिक उर्वरता से क्या संबंध रहा?
2. जहां मिट्टी में प्रारंभिक उर्वरता-स्तर कम था, उसमें उर्वरक लगाने

से ज्यादा फायदा होगा, बजाय उसके, जिसमें कि प्रारंभिक उर्वरता स्तर अधिक था।

3. यह भी पता चला कि लागत और मुनाफा का अनुपात तथा प्रति हेक्टेयर कुल आमदनी उन खेतों में उर्वरक देने से अधिक होती है, जहां उर्वरक देने से पहले मिट्टी की जांच कर ली जाती है, बजाय इसके कि जहां जांच नहीं की जाती।
4. मिट्टी की जांच के आधार पर उर्वरक की सही मात्रा तय करके उर्वरक देने से ज्यादा फायदा मिलता है, बजाय इसके कि किसान अपनी मिट्टी को मनचाहे उर्वरक दे या सामान्य सिफारिशों के आधार पर उर्वरक दे। इन सभी बातों को किसानों के खेतों पर भी यह नतीजे खरे उतरे हैं। यह भी एक व्यावहारिक पक्ष है कि प्रयोगशालाओं में जो खोजें की जाती हैं और जिनको किसानों के खेतों पर भी परख लिया जाता है, वह भी बड़े पैमाने पर अपनाए जाने पर या तो बहुत मुश्किल मालूम होती है या बहुत महंगी। अत: आज जब हम रासायनिक उर्वरकों के फसल में भरपूर इस्तेमाल की बात करते हैं, तो हमें जैविक खादों को नहीं भूलना चाहिए। इस समय ढेर सारा गोबर और फसलों के अवशेष ईंधन के रूप में इस्तेमाल कर लिए जाते हैं जिससे खेतों में वांछित जैविक खादें इस्तेमाल नहीं हो पा रही हैं। इस समस्या का हल तभी निकल सकता है जब हम किसानों के लिए ईंधन की सुविधा जुटाएं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक ओर तो हमें ज्यादा पेड़ लगाने होंगे और दूसरी ओर हमें गोबर गैस के इस्तेमाल को बढ़ावा देना होगा। ऐसा करके हम भारतीय कृषि को एक नया आयाम दे सकते हैं।

अध्याय-2

मृदा एवं पादप पोषण

सभी पौधों की वृद्धि के लिए मृदा एक प्राकृतिक माध्यम है। यह पौधों के लिए यांत्रिक सहारा प्रदान करने के अतिरिक्त जल एवं पोषक तत्वों की आपूर्ति भी करती है। मृदा के बिना फसलोत्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जैसे मनुष्य को आहार की आवश्यकता होती है और उसके अभाव में वह बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता और कार्य करने की क्षमता भी नष्ट हो जाती है, वैसे ही पौधों को भी आहार की आवश्कता होती है। आहार के अभाव में उनकी वृद्धि रुक जाती है, उनका फूलना, फलना बन्द हो जाता है और अंत में वे सूख जाते हैं। आहार की कमी से फसलों से अच्छी पैदावार नहीं मिल पाती, अत: फसलों की अच्छी पैदावार लेने के लिए आवश्यक है कि उचित मात्रा में और उचित समय पर उन्हें आहार दिया जाए।

स्मरण रहे, मानव-आहार हेतु अन्न, पशु-आहार हेतु चारे और वस्त्र हेतु रेशों के उत्पादन के लिए सारी आवश्यक उर्वरता मृदा की ऊपरी सतह 0-15 सेमी. में ही निहित रहती है। जहां तक उर्वरता का प्रश्न है, मृदा एक ऐसा प्राकृतिक साधन है जिसका नवीनीकरण स्वत: होता रहता है तथापि मृदा के अत्यधिक उपयोग या दुरुपयोग से मानव ने इस प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ दिया है। आंकड़ों के अनुसार हर वर्ष हमारे देश में 600 करोड़ टन मृदा का नुकसान भूमि-कटाव द्वारा होता रहता है। इससे पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का काफी मात्रा में नुकसान होता है।

पादप-पोषण हेतु पोषक तत्वों की आवश्यकता सदैव से रही है। प्रारंभ में भूमि की संचित उर्वरा शक्ति का प्रयोग फसलोत्पादन हेतु

किया जाता था। जब एक स्थान पर फसल उगाते-उगाते वहां की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती थी तो वहां फसल उगाना बंद करके अन्यत्र लेना प्रारंभ कर देते थे। इस प्रकार क्वांरी भूमि की उर्वरता का उपयोग करके फसलें पैदा की जाती थीं। खेती करने के इस ढंग को "झूम खेती" कहते हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित भूमि के कारण मनुष्य को एक ही स्थान पर कृषि करने हेतु बाध्य होना पड़ा। लगातार एक ही स्थान पर फसल उगाने से जब उसकी उर्वरता क्षीण होने लगी तब पौधों को अलग से खाद देने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। किसी प्रकार भी खेतों की उर्वरता बढ़ा देने का तात्पर्य खाद देना समझा जाता था। यही खाद उर्वरक भी है क्योंकि उर्वरक वे तत्व हैं जो भूमि उर्वरता को बनाए रखते हैं। वस्तुत: खाद तथा उर्वरक पर्यायवाची हैं।

आज संपूर्ण विश्व में, विशेष रूप से विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्य समस्या की स्थिति गंभीर हो गई है। जनसंख्या वृद्धि उत्तरोत्तर हो रही है। इस समस्या के समाधान हेतु दो ही विकल्प हैं। पहला कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाकर और दूसरे प्रति इकाई क्षेत्रफल उत्पादन में वृद्धि करके। प्रथम विकल्प सिद्धांतहीन प्रतीत होता है क्योंकि विकासशील देशों में कृषि योग्य भूमि के क्षेत्रफल में अपेक्षित फसलोत्पादन की संभावनाएं हैं। इस उद्देश्य की सफलता के लिए दोनों क्षेत्रों में हमें मृदा उर्वरता पर ही निर्भर रहना पड़ेगा।

मृदा से होने वाले पोषक तत्वों के नुकसान की भरपाई उन्नत पोषक तत्व प्रबंध विधियों, दक्ष फसल-चक्र प्रणाली, जैव-उर्वरक, अच्छी कम्पोस्ट एवं फसल-चक्र में दलहनी फसलों के समावेश के द्वारा ही संभव है। चूंकि बढ़ा हुआ कृषि उत्पादन मुख्यत: वर्तमान कृषि योग्य भूमि से आएगा। अत: कृषि उत्पादन बढ़ाने एवं मृदा उर्वरता टिकाऊ रखने के लिए उर्वरक एवं कार्बनिक पदार्थों का लगातार संतुलित मात्रा में प्रयोग जरूरी है।

दीर्घकालिक उर्वरक प्रयोग परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि जहां पर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं गोबर की खाद को संयुक्त रूप से प्रयोग किया गया, वहां गोबर की खाद ने 20 प्रतिशत तक फसलोत्पादन में बढ़ोतरी की।

ऐतिहासिकी

कृषकों को मृदा उर्वरता का ज्ञान पूर्व वैदिक काल से ही है। सिन्ध नदी, नील नदी एवं दजला-फरात आदि नदियों के किनारे प्राचीन निवासियों द्वारा कृषि कार्य किए जाने का उल्लेख मिलता है। भारतवर्ष में वैदिक काल से ही अधिक अन्न उपजाने के लिए खादों के उपयोग का उल्लेख है।

वेदोत्तर काल (लगभग 1400 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक) में ब्राह्मण ग्रंथों तथा वेदों से रचित अन्य धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में फसलोत्पादन के लिए अन्य कृषि कार्यों के अतिरिक्त खाद उपयोग के सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। इन ग्रंथों में कृषि योग्य भूमि को "उर्वर" कहा गया है।

"कौटिल्य अर्थशास्त्र" में उपलब्ध साक्ष्य भी यह पुष्ट करते हैं कि प्राचीन भारत में कृषि एक मुख्य कार्य के रूप में किया जाता था तथा फसलों में खादों का उपयोग भी किया जाता था। खादों में मुख्यत: हड्डी, गोबर तथा मछलियों की खादों के प्रचलन का उल्लेख इस ग्रंथ में किया गया है।

हरी खाद के महत्व की जानकारी 1000 ई.पू. के पहले से भी थी। तिल के पौधों के तनों तथा डंठलों का खाद के रूप में प्रयोग करने की चर्चा अथर्ववेद से ही मिलती है। फास्फोरसधारी उर्वरकों, जैसे हड्डी का प्रयोग लगभग 3000 ई.पू. से ही किया जा रहा है।

हमारे देश में उर्वरकों का प्रयोग अभी लगभग 100 वर्ष पूर्व से होने लगा है। प्राचीन काल में लोगों को खाद की रासायनिक संरचना

के विषय में सही जानकारी थी या नहीं, यह सही ढंग से नहीं कहा जा सकता, फिर भी उस समय लोगों को खाद के प्रयोग का मृदा उर्वरता में योगदान तथा मृदाचयन और मृदा की जल ग्रहण क्षमता पर खाद के प्रभाव के बारे में जानकारी निश्चित रूप से थी। खाद में सभी आवश्यक पोषक तत्वों की उपस्थिति की जानकारी विज्ञान के आधुनिक विकास के साथ-साथ हुई।

पाश्चात्य देशों में भी ईसा पूर्व काल में जीवों की खाद, पौधों की खाद, हड्डियों व मछलियों की खादों के उपयोग का सर्वथा उल्लेख मिलता है। रोमन लेखकों में प्रसिद्ध कालमेला (60 ई.) ने अपनी "हसबैन्ड्री" नामक पुस्तक में मृदा उर्वरता का विस्तृत वर्णन किया है।

चौदहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक पेट्रो डे क्रेस जी (1230-1307 ई.) ने अपने ओपस रूरेलियम कमोडोरम नामक ग्रन्थ में मृदा सस्य संबंधी लेखों का संग्रह कर आधुनिक सस्य विज्ञान का सूत्रपात किया। इसके पश्चात् वैज्ञानिक जे. आर. ब्लाउबर (1624-1668 ई.) ने लवण एवं वनस्पति सिद्धांत का विकास किया। वैज्ञानिक वान हैलमोन्ट (1571-1644 ई.) ने सर्वप्रथम जल को पौधे की प्राथमिक आवश्यकता बताया।

सन् 1700 ई. में अंग्रेज वैज्ञानिक जॉन उडवर्ड ने महत्वपूर्ण कार्य करके "पादप पोषण के ह्युमस सिद्धांत" का विकास किया तथा प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि पौधों को जल की अपेक्षा कार्बनिक पदार्थ की अधिक आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक जे.जी. बैलेरिथस ने ह्युमस को पौधों का प्रमुख भोजन बताया, बाद में क्षारीय फॉस्फेट को पौधों के भोजन में सम्मिलित किया।

डी. श्यासोर ने 1804 ई. में सर्वप्रथम बताया कि पौधे विभिन्न पोषक तत्वों पर निर्भर करते हैं जो उन्हें मिट्टी से प्राप्त होते हैं। इन तत्वों में नाइट्रोजन व राख सम्मिलित हैं। वैज्ञानिक बोसिंगोल ने भी इस क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए।

सन् 1840 में जर्मन निवासी रसायनशास्त्री जस्टस वॉन लीबिग (1803-1873) ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट किया कि पौधे फॉस्फोरस, गंधक, पोटाश आदि मृदा से ग्रहण करते हैं तथा कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन वायु व जल से एवं नाइट्रोजन अमोनिया से प्राप्त करते हैं। इस तरह लीबिग के इस विचार से पादप पोषण के नए युग का जन्म हुआ। अन्त में लीबिग के सिद्‌ान्त पर वैज्ञानिक जे. बी. लॉज व जे. एच. गिलबर्ट ने सन् 1843 ई. में रोथमस्टैड (इंग्लैण्ड) में कृषि परीक्षण केन्द्र की स्थापना की तथा विभिन्न पोषक तत्वों पर अन्वेषण किए।

मृदा उर्वरता के ज्ञान हेतु अनुकूल प्राकृतिक दशा की जानकारी के साथ-साथ मृदा में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा में उपस्थिति और पौधों के लिए उनकी सुलभता की जानकारी होना आवश्यक है। मृदाओं में विविधता एवं उनके उपयोग में भी भिन्नताओं के कारण इनके खनिज तत्वों एवं पोषक तत्वों की प्राकृतिक उपस्थिति तथा सुलभता भी भिन्न-भिन्न होती है। आज के वैज्ञानिक युग में मृदा उर्वरता एवं पादप वृद्‌धि के अंत:संबंधों के सिद्‌धांतों का पर्याप्त अध्ययन हो रहा है जिनके आधार पर मृदा उर्वरता संरक्षण व उसको सुधारने की दशा में वैज्ञानिक प्रयोग किए जा रहे हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में पौधों को पोषक तत्वों की उचित मात्रा व संतुलित अनुपात का विकास करके प्रत्येक इकाई पोषक तत्व उपयोग से अधिकतम फसलोत्पादन करने का लक्ष्य प्राप्त करना है।

उद्‌देश्य एवं महत्व

मृदा, वायु, जल, जीव जन्तु ये सभी प्रकार मिलकर ऊर्जा की सहायता से इस पृथ्वी पर एक चक्र के रूप में जीवन को सम्भव बनाते हैं, जिसमें मृदा मुख्य माध्यम हैं। पेड़-पौधे अपने जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए सभी आवश्यक तत्व जैसे वायु और जल से कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन तथा मृदा से नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैगनीशियम, सल्फर, कापर, जिंक, मैंगनीज़, बोरॉन, मोलिब्डेनम और क्लोरीन निकेल लेते हैं।

यह सभी जानते हैं कि मृदा का निर्माण बहुत ही धीरे-धीरे होता है। मृदा की ऊपरी सतह (पृष्ठ मृदा) में ही मानव आहार हेतु अन्न, पशु आहार हेतु चारे और वस्त्र हेतु रेशों के उत्पादन के लिए सारी आवश्यक उर्वरता निहित होती है। जहाँ तक उर्वरता का प्रश्न है मृदा एक ऐसा प्राकृतिक साधन स्रोत है, जिसका नवीनीकरण स्वत: होता रहता है। लेकिन मृदा के अत्यधिक उपयोग और दुरुपयोग से मानव ने इस प्राकृतिक सन्तुलन को बिगाड़ दिया है। आंकड़ों के अनुसार हर वर्ष हमारे देश में 600 करोड़ टन मृदा का नुकसान अपरदन (भूमि कटाव) द्‌वारा होता रहता है। इससे पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का काफी मात्रा में नुकसान होता है। यह सब मनुष्य द्‌वारा अपनी सुविधा के लिए मृदा व उपस्थित वनस्पति का गलत ढंग से उपयोग का परिणाम है। इसके अतिरिक्त मानव ने जितना कुछ मृदा से प्राप्त किया है, उतना निष्ठापूर्वक पोषक तत्वों के रूप में मृदा को लौटाया नहीं है।

वस्तुत: मृदा उर्वरता पृथ्वी के संपूर्ण प्राणियों और पूरे विश्व की सभ्यता का प्रतिबिम्ब है, सम्पूर्ण मानव अस्तित्व का आधार है। मृदा की उर्वरता को उच्च स्तर पर एवं उत्पादक बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा जीवन का आधार समाप्त हो जाएगा और हमारी सभ्यता नष्ट हो जाएगी। मानव जाति का निर्माण भूमि से ही हुआ है।

मानव का जितना विकास हुआ है, वह उसकी भूमि की उर्वरता और उत्पादकता को बनाए रखने के प्रयासों पर निर्भर करता है। फसलोत्पादन के प्रमुख माध्यम के रूप में, मानव जाति के कल्याण में मृदा की एक प्रमुख भूमिका है। किसी देश की कृषि संबंधी जटिल समस्याओं के अध्ययन में नि:संदेह मृदा उर्वरता के अध्ययन का विशेष महत्व है।

मृदा उर्वरता मृदा की वह क्षमता है, जिससे फसलों की एक निश्चित पैदावार होती है और मृदा की उक्त क्षमता मृदा में निहित उन कारकों पर निर्भर करती है, जो उसकी फसलोत्पादन क्षमता का

निर्धारण करते हैं। ये कारक हैं: मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों का संतुलित और सुलभ रूप में विद्यमान रहना, पोषक तत्वों की निमुर्क्ति के लिए स्वस्थ वातावरण निर्माण हेतु मृदा का उचित सूक्ष्म जैविक स्तर बनाए रखना तथा मृदा की किसी विषैली या हानिकारक दशा या तत्वों से मुक्ति। इस प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि कोई उर्वर मृदा उत्पादक भी हो, जैसे कोई जलाक्रान्त या जलमग्न मृदा अत्यधिक उपजाऊ हुए भी प्राकृतिक स्थिति प्रतिकूल रहने के कारण, अधिक उपज नहीं दे सकती है। इसी प्रकार उर्वर मृदा में लवण या क्षार अधिक हो सकते हैं जो पादप वृद्धि के लिए विषैले होते हैं और मृदा की फसलोत्पादन क्षमता को सीमित करते हैं। इसके विपरीत किसी कम उर्वर रेतीली मृदा में आवश्यक मात्रा में उर्वरक और सिंचाई की व्यवस्था करके अधिक उपज ली जा सकती है। मृदा की फसलोत्पादन की उक्त क्षमता, कुछ क्षेत्रों में किन्हीं हानिकारक या विषैले तत्वों की अधिक मात्रा में उपस्थिति से, घट सकती है। इन कारकों के अलावा कुछ ऐसे कारक भी होते हैं, जो एक प्रकार की दशाओं के अन्तर्गत बहुत कुछ स्थिर अवस्था में रहते हैं। इन कारकों को मानव प्रयास द्वारा भी नहीं बदला जा सकता है। जहाँ इस प्रकार की मृदा विद्यमान है वहाँ उसके कारक मृदा प्रकार, प्रकृति और जलवायु हैं। मानव द्वारा नियन्त्रित न किए जा सकने वाले मृदा कारकों में स्थलाकृति, मृदा गठन और मृदा परिच्छेदिका की गहराई आदि उल्लेखनीय है। तापमान, प्रकाश तीव्रता, वाष्पन, पाला आदि जलवायु कारकों को मानवीय प्रयत्नों द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। इस प्रकार अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि मृदा उर्वरता के अध्ययन में वही कारक महत्व के हैं जिनको मानवीय प्रयासों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है और किसी विशिष्ट जलवायु के अंतर्गत पाई जाने वाली किसी प्रदत्त मृदा में इन कारकों का उपयुक्त और अनुकूल नियंत्रण फसलोत्पादन में अधिकतम उपज का निर्धारण करता है। मृदा में विद्यमान उर्वरता का सबसे अधिक लाभ उठाने के लिए इन कारकों का यथोचित अनुकूलन करने पर ही उत्तम मृदा प्रबंध की सफलता निर्भर करती है। संक्षेप में मृदा उर्वरता किसी मृदा की ऐसी संभावित क्षमता है, जिससे फसलोत्पादन होता है,

जबकि मृदा उत्पादकता मृदा प्रबंध को प्रभावित करने वाले कई कारकों का सामूहिक परिणाम होती है।

मृदा उर्वरता दो प्रकार की होती है: स्थायी उर्वरता और अस्थायी उर्वरता। स्थायी उर्वरता मृदा में स्वयं अंतर्निहित होती है और लगभग जन्मजात होती है जबकि अस्थायी उर्वरता उपयुक्त मृदा प्रबंध से उत्पन्न की जाती है। लेकिन मृदा उर्वरता को बढ़ाने के लिए सब मृदा में निहित स्थायी उर्वरता की मात्रा पर ही निर्भर करते हैं। फिर भी यह हम जानते हैं कि स्थायी उर्वरता को मृदा प्रबंध की विधियों से बढ़ाया या नष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार मृदा के स्थायी उर्वरता स्तर की जानकारी और अस्थायी उर्वरता स्तर को अनुकूल बनाने के उपायों का ज्ञान ही उत्तम मृदा प्रबंध के लिए आवश्यक मूलभूत तकनीक है।

मृदा के बारे में हमारी मूलभूत या बुनियादी जानकारी तेजी से बढ़ी है, लेकिन मृदा प्रबंध की कुशलता किसानों में बहुत मंद गति से आ रही है, जिसके कारण मृदा उर्वरता में तीव्र गिरावट आई है एवं प्रति हेक्टेयर उपज में कमी हो गई है। मृदा उर्वरता, मुख्य, गौण और सूक्ष्ममात्रिक आवश्यक पोषक तत्वों की पृष्ठ-मृदा के अंतर्गत पर्याप्त मात्रा और सुलभ रूप में उपस्थिति का परिणाम होती है। इसके अतिरिक्त मृदा में जैव-पदार्थों का भी बड़ा महत्व है। इससे मृदा को भौतिक और सूक्ष्म जैविक लाभ मिलते हैं। जैव-पदार्थ की पर्याप्त मात्रा मृदा को एक जीवित या सक्रिय पिंड तत्वों की मृदा में मौजूदा स्थिति क्या है, ये मृदा में कैसे घटते-बढ़ते हैं और इनको किन रूपों और स्तरों पर किन साधनों से अनुरक्षित किया जा सकता है जिससे इनके दीर्घकालीन उपयोग से फसलोत्पादन अधिक हो सके, आदि पक्षों पर विचार करना आवश्यक होगा।

भारत ही नहीं, सारे विश्व में कृषि अनुसंधान में मृदा उर्वरता का वैज्ञानिक महलू एक पुरानी समस्या है। इस समस्या पर समय-समय पर जितने अध्ययन किए गए उनसे अनुसंधान के नए-नए तथ्य सामने

आये हैं। अब हम मृदा में विद्यमान उर्वरता के कारणों का ठीक-ठीक पता लगा सकते हैं और ऐसे उपाय काम में ला सकते हैं जिनसे मृदा उर्वरता को बढ़ाया जा सकता है या यदि मृदा उर्वरता क्षीण हो गई है तो उसे पुनः प्राप्त किया जा सकता है। कृषि अनुसंधान के क्षेत्र में शरीर-क्रिया विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, और जीव विज्ञान जैसे आधारभूत विज्ञानों के फलस्वरूप पादप पोषण और मृदा विज्ञान की वैज्ञानिक जानकारी बढ़ने से मृदा उर्वरता की बुनियादी धारणाओं पर अधिक प्रकाश पड़ा है। अब यह ज्ञात है कि मृदा में विद्यमान उर्वरता मृदा के अंतर्गत सुलभ रूपों में और पर्याप्त मात्राओं में उपस्थित आवश्यक पोषक तत्वों का परिणाम होती है।

इस प्रकार मृदा में अकार्बनिक पादप पोषक तत्वों, जैव-पदार्थ की मात्रा और सूक्ष्म जैविक स्थिति के अध्ययन के आधार पर उसकी उर्वरता का मूल्यांकन किया जा सकता है। वास्तव में मृदा उर्वरता संबंधी अध्ययन उत्तम मृदा प्रबंध की जानकारी का बुनियादी आधार है और इससे फसलोत्पादन को बढ़ाने में सहायता मिलती है। मृदा उर्वरता विषय एक ओर मृदा विज्ञान से और दूसरी ओर मृदा प्रबंध से संबंधित है। दूसरे शब्दों में यदि इसकी सीमा रेखाएं खींची जाएं तो इसकी एक ओर की सीमा मृदा-विज्ञान से और दूसरी ओर की मृदा-प्रबंध से मिलती है जिससे व्यावहारिक कृषि में ठोस सस्य प्रणाली (उन्नत कृषि विधियों) के वैज्ञानिक आधार का सृजन होता है। अतः इसका ज्ञान किसी भी व्यावहारिक मृदा विज्ञानी या किसी सस्य विज्ञानी यहां तक कि सामान्य कृषक के लिए भी अनिवार्य है।

किसी फसल से जो उपज हमें प्राप्त होती है वह मृदा उर्वरता के लिए उत्तरदायी सभी कारकों का परिणाम होती है। किसी एक कारक की प्रभावोत्पादकता अन्य सभी कारकों के अनुपात और तीव्रता पर निर्भर करती है। इसलिए एक कारक को अनुकूल बनाकर मृदा उर्वरता को सुधारने का उपाय केवल अस्थायी उपचार ही होगा जिसके कारण अंततोगत्वा मृदा कारकों का परस्पर असंतुलन उत्पन्न हो सकता है। फलस्वरूप मृदा अनुपजाऊ हो सकती है। केवल अधिक सिंचाई

और नाइट्रोजनी उर्वरकों के अधिक उपयोग से या फसलों की संकर किस्मों आदि के एक मात्र प्रयोग से न्यून फसलोत्पादन की समस्या के हल की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए जब तक मृदा उर्वरता के सभी कारकों को ठीक-ठाक समझकर उनको अनुकूल नहीं बना लिया जाता, तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती है।

भारतीय मृदा में औसतन नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की कमी है, सल्फर एवं जिंक की भी कमी काफी मात्रा में पाई जाती है। अनुसंधान से यह भी पता चलता है कि 10 टन गेहूं और धान की उपज के लिए लगभग 700 किग्रा. नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की आवश्यकता होती है, जिसे केवल मृदा से पूर्ति करना असंभव है। यह कहना ठीक ही रहेगा कि शायद ही पृथ्वी पर कोई ऐसी मृदा हो जिसमें पर्याप्त मात्रा में उर्वरक डाले बिना बहुत समय तक अधिक उपज ली जा सके। इसलिए यह जरूरी है कि अधिक उपज लेने के लिए मृदा में संतुलित मात्रा में पोषक तत्व डाले जाएं। ऐसा न करने से मृदा तत्वहीन हो जाएगी और अपेक्षित पैदावार नहीं मिल पाएगी।

हमारी भूमि में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए काफी क्षमता है, लेकिन आवश्यक है कि क्षमता का सदुपयोग कैसे किया जाए ताकि बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न पूर्ति बिना कृषि क्षेत्रफल बढ़ाए, की जा सके। इसलिए किसानों के लिए अच्छी जल, उर्वरक और मृदा प्रबंध तकनीक अपनाना जरूरी हो गया है।

मृदा उर्वरता

पादप वृद्धि की उपयुक्त दशाओं में मृदा की पोषक तत्वों को उपलब्ध अवस्था तथा उचित मात्रा व निर्दिष्ट संतुलन में प्रदान करने की क्षमता मृदा उर्वरता कहलाती है।

मृदा की पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता उनकी भौतिक रचना, रासायनिक संगठन व जैविक गुणों का परिणाम होती है। मृदा में पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपस्थित होने पर भी यह उर्वर

नहीं होती है। उदाहरण के लिए अत्यधिक क्षारीय व अम्लीय मृदाओं में पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा होते हुए भी ये पोषक तत्व पौधों को प्राप्त नहीं हो पाते हैं। जल निकास की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जल व वायु में असंतुलन हो जाता है तथा पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा होने पर भी पौधों को अपेक्षित लाभ नहीं होता है। सूक्ष्म जीवों के लिए प्रतिकूल परिस्थितियां होने पर मृदा उर्वरता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत: पोषक तत्वों की पौधों की उपलब्धता को बनाए रखने के लिए मृदा की भौतिक दशा एवं रासायनिक व जैविक गुण श्रेष्ठ होने चाहिए।

मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक

(अ) प्राकृतिक कारक (ब) कृत्रिम कारक

(अ) प्राकृतिक कारक

1. पैतृक पदार्थ

पैतृक पदार्थ पर मृदा की उर्वरता निर्भर करती है। पैतृक पदार्थ में पोषक तत्वों का आधिक्य होने पर उससे निर्मित मृदा भी उर्वर होती है। प्राय: भारत की मृदाओं में नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की कमी पाई जाती है।

2. जलवायु

अत्यधिक कम अथवा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मृदा उर्वरता का क्षय हो जाता है। कम वर्षा व अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में कार्बनिक पदार्थ नष्ट हो जाता है जबकि अधिक वर्षा होने पर पोषक तत्व निक्षालन (लीचिंग) द्वारा नष्ट हो जाते हैं। सम-शीतोष्ण कटिबंध की मृदा अपेक्षाकृत उर्वर होती है।

3. स्थलाकृति

स्थलाकृति असमतल होने पर उर्वरता का ह्रास हो जाता है जिसके

फलस्वरूप निचले स्थानों की मृदा ऊंचे क्षेत्रों की मृदाओं से अधिक उर्वर हो जाती है।

4. मृदा आयु

मृदा आयु के साथ-साथ मृदा उर्वरता में क्षय होता है फसलोत्पादन, मृदा क्षरण, निक्षालन (लीचिंग) आदि द्वारा पोषक तत्वों का ह्रास होता रहता है।

5. मृदा की भौतिक दशा

मृदा कणाकार व संरचना का मृदा उर्वरता पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म कणाकार व दानेदार संरचना वाली मृदाओं की उर्वरता अधिक होती है। बलुई मृदा में जल धारण व पोषक तत्वों का अधिशोषण कम होता है। अत: ये मृदाएं गाद एवं मृत्तिका की अपेक्षा कम उर्वर होती है। भौतिक दशा उत्तम होने पर जल अवशोषण व वायु संचार भी पर्याप्त मात्रा में होता है जिनका मृदा उर्वरता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

6. मृदा अपरदन

मृदा अपरदन द्वारा मृदा की ऊपरी सतह का क्रमिक क्षय होता रहता है जिसके कारण मृदा उर्वरता आंशिक अथवा कभी-कभी पूर्णरूपेण नष्ट हो जाती है।

(ब) कृत्रिम कारक

1. फसल-प्रणाली

मृदाओं में वैज्ञानिक ढंग से फसल प्रणाली लागू करने पर मृदा उर्वरता में ह्रास कम होता है। इकहरी खेती का मृदा उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा मृदा विकृत हो जाती है। दलहनी फसलों का समावेश करके मिश्रित खेती अथवा वैज्ञानिक फसल-चक्र प्रयोग करके मृदा उर्वरता को नियंत्रित किया जा सकता है।

2. जला क्रांति

मृदा के जलमग्न होने के कारण मृदा वायु संचार अवरुद्ध हो जाता है जिसके फलस्वरूप या वायुजीवी सूक्ष्म जीवों की क्रियाएं बंद हो जाती हैं। इसके विपरीत हानिकारक जीवाणु सक्रिय होकर मृदा उर्वरता को प्रभावित करते हैं। मृदा की भौतिक अवस्था खराब हो जाती है तथा जड़ों द्वारा श्वसन बंद हो जाता है जिसके कारण पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण अवरूद्ध हो जाता है।

3. मृदा पी-एच

मृदा पी-एच मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक संवेदनशील कारक है। अत्यधिक अम्लीय पी-एच होने पर मृदा में Fe, Al, Mn, Zn आदि की विलेयता इतनी अधिक बढ़ जाती है जिसका पौधों पर विषैला प्रभाव पड़ने लगता है। साथ ही साथ फॉस्फोरस स्थिर होकर अप्राप्य हो जाता है। Ca, Mg, N, S की प्राप्यता अधिक होती है जबकि सूक्ष्म तत्व व फॉस्फोरस अप्राप्य हो जाते हैं। मृदा उर्वरता बनाए रखने के लिए चूना, जिप्सम आदि पदार्थों का प्रयोग करके मृदा पी-एच सामान्य किया जाता है।

4. मृदा कार्बनिक पदार्थ

मृदा में जैव-पदार्थ के स्तर व मृदा उर्वरता में सीधा संबंध है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ का उचित स्तर बनाए रखने के लिए जैविक खाद, हरी खाद व पादप तथा जन्तु अवशेषों का पर्याप्त मात्रा में उपयोग किया जाना चाहिए।

5. मृदा जीव

मृदा में अनेक बड़े व सूक्ष्म जीव मृदा उर्वरता में वृद्धि करते हैं। केंचुए, चींटी, रोडेन्ट, सप्तपदी, दीमक, मकड़ियां आदि विभिन्न प्रकार से मृदा उर्वरता को प्रभावित करते हैं। मृदा जीवों द्वारा मृदा

चूर्णन होता है व कार्बनिक पदार्थों का पाचन होता है जिसमें मृदा उर्वरता प्रभावित होती है।

मृदा सूक्ष्म-जीव-नाइट्रीकरण जीवाणु, नाइट्रोजनस्थिरीकरण जीवाणु, सल्फर, आयरन, मैंगनीज, फॉस्फोरस आदि को रूपांतरित करने वाले सूक्ष्म जीव-मृदा उर्वरता में वृद्धि करते हैं। कार्बनिक खादों का अपघटन व अनेक रासायनिक अभिक्रियाएं सूक्ष्म-जीवों द्वारा ही किए जाते हैं।

6. मृदा प्रबंध

मृदा की जुताई, सिंचाई, खरपतवार-नियंत्रण, उचित जल-निकास, उर्वरक उपयोग आदि सस्य क्रियाओं का मृदा उर्वरता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अपरदन-नियंत्रण द्वारा मृदा उर्वरता संरक्षित की जा सकती है। अधिक समय से मृदा में फसल न उगाने से मृदा उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उचित समय पर किए गए सस्य कार्यों का मृदा उर्वरता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदा उर्वरता का नियंत्रण

मृदा में उर्वरता बनाए रखने के लिए निम्नलिखित प्रयास अपेक्षित हैं:

1. उचित भू-परिष्करण क्रियाओं द्वारा उत्तम मृदा संरचना का विकास।
2. मृदा में पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ का स्तर बनाए रखना।
3. मृदा में उचित जल संभारण एवं जल-प्राप्यता।
4. सुधारकों के उपयोग द्वारा मृदा पी-एच का नियंत्रण।
5. उचित जल निकास का प्रबंध।
6. मृदा अपरदन का नियंत्रण।
7. खरपतवारों का नियंत्रण।

8. मृदा विकास एवं हानिकारक कीटों की रोकथाम।

9. वैज्ञानिक फसल-चक्र एवं प्रणाली का प्रयोग।

10. संतुलित उर्वरक उपयोग।

11. फसल की कटाई के उपरांत उचित सस्य-प्रबंध।

12. समय-समय पर मृदा परीक्षण द्वारा मृदा उर्वरता की जांच व उसके अनुरूप मृदा उर्वरता का नियंत्रण।

मृदा-उर्वरता एवं उत्पादकता में अंतर

बहुत से लोग मृदा उत्पादकता और मृदा उर्वरता के अंतर को नहीं जानते हैं और इन दोनों शब्दों के अंतर को स्पष्ट करना उचित होगा।

मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में अंतर निम्नलिखित वाक्यांश से स्पष्ट हो जाता है:

"एक अच्छी मृदा उत्पादकता हमेशा उर्वर होती है परंतु उर्वर मृदा सदैव उत्पादक नहीं होती है।"

मृदा उर्वरता व उत्पादकता में मुख्य-मुख्य अंतर नीचे दिए गए हैं।

मृदा उर्वरता	मृदा उत्पादकता
1. मृदा उर्वरता, मृदा की उचित मात्रा एवं अनुपात में पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता है।	मृदा उत्पादकता, प्रति इकाई क्षेत्रफल मृदा की उत्पादन करने की क्षमता होती है।
2. मृदा उत्पादकता का एक अवयव है	मृदा उत्पादकता उर्वरता के साथ-साथ जलवायु, सस्य-प्रबंध, मृदा

	गुण, फसल-प्रकृति आदि पर निर्भर करती है।
3. मृदा की भौतिक दशा, रासायनिक व जैविक गुण मृदा उर्वरता को प्रभावित करते हैं।	मृदा अवस्था के साथ-साथ परिवहन, उपज की मांग, फसल में व्यय आदि उत्पादकता को प्रभावित करते हैं।

मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता में यद्यपि सहसंबंध है, फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि मिट्टी विशेष की उर्वरता अधिक होने पर उसकी उत्पादकता भी अधिक हो। उदाहरणार्थ, लवणीय तथा क्षारीय मिट्टियों की उर्वरता समान होते हुए भी उनकी उत्पादकता समान नहीं हो सकती, क्योंकि इन मिट्टियों में लवणों और क्षारों का बाहुल्य होता है जो पौधों की वृद्धि के लिए विषाक्त होते हैं। साथ ही सोडियम की अधिकता में पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि तत्व उचित संतुलन में नहीं रह पाते। इसी प्रकार कुछ क्षेत्रों की मिट्टियां अधिक उर्वर होने के बावजूद जलमग्नता की स्थिति के कारण वांछित उपज नहीं दे पाती हैं।

जहां एक ओर यह सत्य है कि अधिक उर्वरता वाली मिट्टी की उत्पादन क्षमता भी कुछ कारकों के कुप्रभाव के कारण कम हो जाती है, वहीं इसके विपरीत कम उर्वरता वाली मिट्टी से उन्नत मृदा और सस्य प्रबंध द्वारा अधिक उत्पादन भी प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, हल्के गठन वाली बलुई मिट्टी में पोषक तत्वों और सिंचाई जल की समुचित पूर्ति द्वारा फसलों की उपज में आशातीत बढ़ोतरी की जा सकती है। अंततः स्पष्ट है कि मिट्टी की उर्वरता से हमें उसमें पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धि के स्तर का बोध होता है। मिट्टी की उर्वरता आमतौर पर भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर निर्भर करती है जबकि मिट्टी की उत्पादकता फसलोत्पादन को प्रभावित करने वाले तमाम मिट्टी संबंधी तथा बाह्यकारकों के प्रभाव का सामूहिक प्रतिफल होती है।

मिट्टी की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में उन कारकों की गणना होती है, जिन्हें मानवीय प्रयासों द्वारा बदला नहीं जा सकता, जैसे मिट्टी की किस्म और उसकी प्रकृति तथा गठन, मिट्टी की गहराई, स्थलाकृति जलवायु आदि। द्वितीय वर्ग में मानवीय प्रयास से नियंत्रित होने वाले जलवायु संबंधी कारक अर्थात् तापमान, प्रकाश तीव्रता, वाष्पन, पाला आदि आते हैं। मानवीय प्रयासों द्वारा नियंत्रित होने वाले कारकों का मिट्टी की उत्पादकता के निर्माण में विशेष महत्व है।

विश्व की जनसंख्या की अप्रत्याशित वृद्धि से भविष्य में मानव जीवन की कठिनाइयों की आशंका से प्राय: सभी लोग चिंतित हैं। कुछ विचारकों का तो मत है कि "जनसंख्या विस्फोट" मानवकृत आपदा से कहीं अधिक विकराल रूप ले सकता है। विशेषज्ञों के अनुसार आबादी बढ़ने की वर्तमान दर के हिसाब से सन् 2015 में हमारे देश में एक अरब 22 करोड़ 50 लाख मनुष्यों के साथ 60 करोड़ पशुओं का वास होगा। इस विशाल आबादी के भरण-पोषण के लिए हमें 27 करोड़ 50 लाख टन खाद्यान्न, 108 करोड़ 30 लाख टन हरे चारे और 23 करोड़ 50 लाख टन घन मीटर ईधन के लिए लकड़ी की जरूरत पड़ेगी। उत्पादन के इस स्तर को प्राप्त करने के लिए मिट्टी की उर्वरता बढ़ानी होगी तथा सुरक्षित रखनी होगी।

सुविख्यात कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामिनाथन के अनुसार आज जो बच्चा पैदा होगा उसके लिए 0.08 हेक्टेयर भूमि उसके आवास, विद्यालय, सड़क आदि सुविधाओं के लिए तथा 0.04 हेक्टेयर भूमि खाद्यान्न, फल-सब्जी आदि उगाने के लिए आवश्यक होगी। इस गणना के आधार पर भारत में लगभग पचास लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता प्रत्येक वर्ष होगी। अब हमें देखना होगा कि कृषि योग्य इतनी सारी भूमि क्या हमारे देश में बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुरूप उपलब्ध हो सकेगी। दो दशक पूर्व लगभग कुल 1400 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि उपलब्ध थी जो 0.34 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति

औसतन आंकी गई थी। आज भी कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल लगभग उतना ही है जबकि जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि घटकर केवल 0.20 हेक्टेयर के आसपास पहुँच गई है। सन् 2015 तक इस भूमि के पुन: सिमटकर 0.12 हेक्टेयर रह जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

इस विकट परिस्थिति में सघन कृषि प्रणाली को अपनाकर कृषि उत्पादकता की वृद्धि की जा सकती है। "हरित-क्रांति" के सफल क्रियान्वयन द्वारा भारत की कृषि उत्पादन क्षमता लगभग तीन गुना बढ़ी है। कृषि उत्पादकता की वृद्धि के लिए कई महत्वपूर्ण कारकों का समन्वय आवश्यक माना गया है। जैसे उन्नत बीज, सिंचाई, उर्वरक, पीड़कनाशी रसायन, मृदा आदि। इन कारकों में मृदा की भूमिका सभी फसलों के आधार के रूप में निर्विवाद स्वीकार की गई है। महान दार्शनिक अरस्तू ने तो मृदा को "फसलों के पेट" की संज्ञा दी है, क्योंकि फसलों का पोषण मृदा माध्यम द्वारा ही संभव है।

मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों के आधार पर फसलों के पोषण के लिए आवश्यक तत्वों की उपलब्धि होती है। इन्हीं पोषक तत्वों की समुचित उपलब्धि फसल के जीवन-चक्र में पौधों की अवस्था के अनुसार संतुलित मात्रा में मृदा द्वारा प्राप्त होती है। अत: पौधों के लिए मृदा की यह पोषण-क्षमता ही मृदा की उर्वरता कहलाती है। मृदा की उर्वरता क्षीण हो तो खाद्य पदार्थों के पैदावार में कमी आ जाती है। यदि मृदा की उर्वरा शक्ति को समुचित रूप से संतुलित रखने का प्रयास न किया गया तो कालांतर में निश्चित रूप से मृदा ऊसर या बंजर भूमि में परिवर्तित हो जाएगी। फसलों की वृद्धि एवं जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों, यथा - नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, गंधक, मैग्नीशियम तथा कुछ सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की आपूर्ति मृदा के माध्यम द्वारा की जाती है। सूक्ष्ममात्रिक तत्वों में प्राय: लोहा, तांबा, मैंगनीज, बोरॉन, मॉलिब्डेनम, क्लोरीन, निकेल आदि की आवश्यकता पौधों की

वृद्धि एवं विकास के लिए निर्धारित की गई है। मृदा की रासायनिक संरचना में ये सभी आवश्यक तत्व विद्यमान होते हैं।

प्रत्येक पौधे को उखाड़ कर यदि हम उसका रासायनिक विश्लेषण करें तो ये सभी आवश्यक तत्व उसमें उपस्थित रहते हैं। कुछेक तत्वों की मात्रा अधिक पाई जाती है जिन्हें "मुख्य" तत्व कहा जाता है, यथा - नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश। इनमें भी नाइट्रोजन की सर्वाधिक मात्रा फसलों के लिए आवश्यक होती है। प्रत्येक दस किलोग्राम उत्पादन के लिए प्रायः एक किलोग्राम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। अगर मान लिया जाए कि एक हेक्टेयर भूमि पर प्रतिवर्ष दो या तीन फसलों का कुल उत्पादन 100 क्विंटल हो तो इस गणना के अनुसार लगभग 10 क्विंटल नाइट्रोजन की आवश्यकता प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष निर्धारित की जाएगी।

विश्वविख्यात मृदा विज्ञानी डॉ. नीलरत्न धर कहा करते थे कि मृदा से उर्वराशक्ति और पोषक तत्वों की उपलब्धि किसी बैंक में खाता खोलने के सदृश्य है। बैंक से यदि मात्र रुपया निकालने की प्रक्रिया चलती रहे तो कुछ समय बाद संचित राशि घटकर एक न्यूनतम सीमा तक पहुंच जाएगी और उस स्थिति में बैंक रुपए देने से मना कर देगा। अतः खाते को विधिवत कारगर रखने के लिए समय-समय पर रुपए जमा करना भी अत्यंत आवश्यक है। ठीक इसी प्रकार मृदा बैंक से विभिन्न पोषक तत्व फसलों के उत्पाद के अनुरूप अवशोषित होकर निकल जाते हैं। फसलों को उगाने का अर्थ होता है मृदा माध्यम से पोषक तत्वों का ह्रास और पोषक तत्वों के लगातार निकलते रहने से मृदा की संचित उर्वराशक्ति क्षीण होती जाती है। अतः मृदा की उर्वराशक्ति के संतुलन को कायम रखने एवं पोषक तत्वों की वृद्धि के लिए कुछ न कुछ करना आवश्यक होगा, जिससे बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन-पोषण तथा पशुओं को चारा उपलब्ध कराने की समुचित व्यवस्था की जा सके।

भारत सरकार इस दिशा में "सस्टेनबल एग्रीकल्चर" यानि "टिकाऊ

खेती" को अपनाने का योजनाबद्ध कार्यक्रम संस्तुत कर रही है ताकि कृषि उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ संरक्षण एवं पर्यावरण की सुरक्षा भी हो सके।

मृदा उर्वरता, आवश्यक तत्वों की उपलब्धि पर निर्भर करती है। साधारणतया फसलों के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश (एन. पी.के.) की आवश्यकता अन्य तत्वों की अपेक्षा अधिक होती है, जिसकी उपलब्धि प्रायः मृदा की कुल मात्रा की लगभग एक-तिहाई के आस-पास होती है। इन मुख्य तत्वों की उपलब्धि मृदा की रासायनिक, भौतिक एवं जैविक गुणों पर आधारित होती है।

सम्भवतः मृदा अभिक्रिया एक अत्यंत महत्वपूर्ण गुण है, जिसके ऊपर पोषक तत्वों की उपलब्धि बहुत कुछ निर्भर करती है। मृदा अभिक्रिया मृदा की क्षारकता या अम्लता की माप है, जिसे पी-एच द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तथा जो हाइड्रोजन आयन की सक्रियता का ऋणात्मक लघुगुणक होता है। उदासीन मृदा का पी.एच. 7.0 के लगभग और क्षारीय मृदा का पी-एच 7.0 से अधिक होता है जबकि अम्लीय मृदा का पी-एच 7.0 से कम होता है। मृदा वैज्ञानिकों ने उदासीन मृदाओं की अभिक्रिया की सीमा पी-एच 6.5 और 7.5 के बीच अच्छी तरह उगते हैं। इससे अधिक और कम दोनों मान पादप-वृद्धि पर अच्छा प्रभाव नहीं डालते, क्योंकि पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक अम्लीय अथवा क्षारीय दशाओं में कम या ज्यादा हो जाती है। अधिक मात्रा में उपलब्ध कुछ तत्व पौधों में विषैला प्रभाव छोड़ते हैं और जब किसी तत्व की उपलब्धता में कमी होती है तो पौधों में उनकी कमी के कारण पादप-वृद्धि रुक जाती है। अतः मृदा को उदासीन सीमा में रखने के लिए मृदा सुधारक पदार्थों का प्रयोग मृदा की उर्वराशक्ति की वृद्धि के लिए आवश्यक है। क्षारीय मृदा को सुधारने के लिए प्रायः जिप्सम, पाइराइट आदि का प्रयोग किया जाता है जबकि अम्लीय मृदा के लिए चूना का प्रयोग मृदा सुधारक के रूप में किया जाता है।

मृदा के रासायनिक, भौतिक एवं जैविक गुणों का आधार मृदा में उपस्थित कार्बनिक तत्व पर निर्भर करता है। इस कार्बनिक पदार्थ मात्रा से मृदा की उर्वरता का आभास होता है, जिसे कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात की संज्ञा दी जाती है। खरपतवार, पत्तियों तथा पौधों के द्वारा प्राप्त सभी कार्बनिक पदार्थों का मृदा में समुचित दशा में सड़ने की प्रक्रिया से जीवांश का निर्माण होता है। कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से खाद के रूप में या गोबर डालने से मृदा की भौतिक स्थिति में सुधार होता है। जीवांश को बनाए रखने और उसे पूरा करने में मृदा में विद्यमान सूक्ष्म जीवों के लिए अनुकूल दशा उत्पन्न होती है। कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से उनमें निहित पोषक तत्व भी धीरे-धीरे मृदा में संचित होने लगते हैं। कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात मृदा की उर्वराशक्ति का परिचायक है। सामान्य उर्वरता वाली मृदा का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात 10:1 माना गया है। भारत की अधिकांश मृदाओं में कार्बन और नाइट्रोजन की मात्रा कम पाई जाती है। डॉ. धर मृदा उर्वरता का स्रोत कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति कार्बन के रूप में स्वीकार करते थे। कुछ फसलों को हरी-खाद के लिए प्रयोग किया जाता है। कम्पोस्ट, गोबर, हरी खाद कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से मृदा की उर्वरता में वृद्धि संभावित है। गोबर गैस संयंत्रों द्वारा प्राप्त स्लरी (कचरे) का प्रयोग भी मृदा की उर्वराशक्ति की वृद्धि में सहायक माना गया है। मृदा के कार्बनिक अथवा जैविक पदार्थ का अधिकतर भाग पौधों के अवशेष और उनके सड़ने से पैदा होने वाले पदार्थों से बना होता है। पौधों की आवश्यकता के लिए अधिकांश तत्व "ह्यूमस" द्वारा प्राप्त होते हैं। मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव (प्राणी और वनस्पति) अपनी खुराक प्राप्त करने तथा अपनी वंश-वृद्धि की प्रक्रिया में धीरे-धीरे जीवांश का विघटन करते हैं तथा कार्बनिक पदार्थों के पुनः डालने से कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात पुनः स्थिरता प्राप्त कर लेता है।

वर्तमान में भूमि-संरक्षण कार्यक्रमों को अपनाकर मृदा अपरदन को कम करने का प्रयास आवश्यक माना गया है। मृदा की ऊपरी पर्त का धीरे-धीरे क्षरण तेज बारिश और तूफानी हवाओं के प्रभाव द्वारा

होता है। मृदा के कणों के स्थानांतरण के साथ-साथ उनमें निहित उपजाऊ तत्वों की भी कमी हो जाती है। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कृषि विज्ञानी, डॉ. स्वामीनाथन के अनुसार प्रतिवर्ष भारत में अपरदन से लगभग 25 लाख टन नाइट्रोजन, 33 लाख टन फास्फेट और 25 लाख टन पोटाश के समकक्ष उर्वरकों की क्षति आंकी गई है। इन आंकड़ों के आधार पर मृदा-संरक्षण की आवश्यकता मृदा को स्थायी रूप से उपजाऊ रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें संदेह नहीं कि भूमि संरक्षण के अभाव में धरती की हरीतिमा धीरे-धीरे लुप्त हो जाएगी और चारों ओर बंजर और ऊसर भूमि का विस्तार होगा। वृक्षारोपण, जलाशयों के निर्माण, जल-निकास की व्यवस्था, भूमि के ढलान को कम करने के लिए टेरेसिंग, कन्टूरिंग आदि कार्यक्रमों को अपना कर मृदा संरक्षण संभव है। उचित ढंग से फसल-चक्र का प्रयोग करने से अपरदन कम किया जा सकता है। क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं का सुधार करना भी मृदा संरक्षण कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण अंग है। मृदा प्रदूषण की संभावना से मृदा को मुक्त रखना मृदा संरक्षण कार्यक्रम का आवश्यक अंग है। औद्योगिक कूड़े-कचरे, सीवेज-सलज में पाए जाने वाली भारी तत्व, अकार्बनिक विषैले यौगिक, कार्बनिक अनुपयोगी पदार्थ, कार्बनिक कीटनाशी तथा रेडियोसक्रिय अपशिष्ट पदार्थ मृदा को प्रदूषित करते हैं। मृदा को प्रदूषणमुक्त बनाने के लिए अनेक वैज्ञानिक इस दिशा में शोधकार्य कर रहे हैं। जैव विच्छेदन की क्रिया मृदा को प्रदूषणमुक्त रखने में काफी सहायक सिद्ध हुई है।

कृषि उत्पादन की सर्वप्रथम आवश्यकता पानी है, क्योंकि पौधों का लगभग नब्बे प्रतिशत भाग जल से बना होता है जो मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के वाहक का कार्य करता है। पौधों के प्रायः सभी क्रियाकलापों में जल की आवश्यकता होती है। अतः मृदा में समुचित मात्रा में आर्द्रता का होना अत्यंत आवश्यक माना गया है। वाष्पोत्सर्जन तथा वाष्पीकरण द्वारा मृदा से निरंतर जल का ह्रास होता रहता है। मृदा में अधिक एवं कम नमी दोनों ही मृदा गुणों तथा पौधों

की वृद्धि के लिए हानिकारक हैं। सिंचाई की विधि का चुनाव भूमि की विशेषताओं, बोई जाने वाली फसलों, सिंचाई के नालियों की क्षमता, सिंचाई स्रोतों का आकार, सिंचाई जल के गुण तथा जलवायु की परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है। सिंचाई के लिए सबसे उपयुक्त विधि वही मानी जाती है, जिसमें जल का ह्रास कम से कम हो तथा जल पर नियंत्रण रखा जा सके। शुष्क क्षेत्रों में जहां सिंचाई का कोई साधन उपलब्ध न हो, वहां मृदा की नमी सुरक्षित रखने के लिए प्राय: खरपतवारों को उखाड़कर उन्हें 'मल्च' के रूप में प्रयोग करते हैं। जल निकास उचित न होने पर मृदा में उपस्थित पोषक पदार्थों का निक्षालन हो सकता है और जल का आधिक्य होने से उचित वायु संचार नहीं हो सकता। वायु की कमी होने से कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे पौधों की जड़ों की वृद्धि रुक जाती है तथा वायु-संचार की वृद्धि होती है। लगातार जुताई करने से मृदा की संरचना खराब हो जाती है। अत: अधिक जुताई से मृदा की उर्वरता पर हानिकारक प्रभाव भी पड़ सकता है।

मृदा परीक्षण के द्वारा मृदा में उपस्थित कुल एवं उपलब्ध पोषक तत्वों का मूल्यांकन फसलों के आधार पर करने के पश्चात् उर्वरकों का प्रयोग संतुलित मात्रा में करना उचित होता है। मनमाने ढंग से उर्वरकों की आवश्यकता के अनुसार मृदा में उचित प्रकार के उर्वरक का उचित मात्रा में प्रयोग करना ही श्रेयस्कर है। मृदा उर्वरता के निर्धारण के लिए आदर्श विधि वह है, जिससे उचित समय पर इस बात का अनुमान हो सके कि पोषक तत्वों की कितनी मात्रा मृदा विशेष से प्राप्त हो सकती है और फसल के पकने तक पौधों को निरंतर उचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते रहेंगे या नहीं। उर्वरकों में उपस्थित पोषक तत्वों के द्वारा मृदा में पारस्परिक प्रभाव के कारण, ऋणात्मक अनुक्रिया के फलस्वरूप, फसलों के उत्पादन में कमी आ सकती है। उर्वरकों के अधिक मात्रा में डालने से मृदा प्रभाव देखा गया है, विशेष रूप से सूक्ष्ममात्रिक उर्वरकों द्वारा। इसलिए उर्वरकों के प्रयोग में सतर्कता बरतना अत्यंत आवश्यक है।

सुविख्यात अर्थशास्त्री माल्थस ने बहुत पहले ही सन् 1803 में जनसंख्या वृद्धि की समस्या से विश्व को अवगत कराने का प्रयास किया था। अपने सिद्धांत में उन्होंने प्रतिपादित किया कि भोज्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि समान्तर अनुपात में संभव है जबकि जनसंख्या में वृद्धि गुणोत्तर अनुपात में होती है। कृषि उत्पादकता मूलत: मृदा उर्वरता पर निर्भर करती है, जिसकी उत्पादन क्षमता एक निश्चित स्तर तक प्रभावी हो सकती है। "ह्रासमान प्रतिफल नियम" के अनुसार भी कृषि उत्पाद की अधिकतम उपज पाने के पश्चात अन्य किसी प्रकार के साधनों के प्रयोग के द्वारा और वृद्धि संभव नहीं है।

मृदा उर्वरता के साथ-साथ हमें मृदा अपरदन (कटाव या क्षरण) पर भी ध्यान देना होगा। मिट्टी या मृदा एक ऐसा संसाधन है जिसकी क्षतिपूर्ति या पुनर्निर्माण करना अत्यंत कठिन है। चूंकि मनुष्य अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मिट्टी पर निर्भर रहता है। अत: मानव जाति के अस्तित्व के लिए तथा किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए मिट्टी अत्यंत मूल्यवान है। भूमि की ऊपरी सतह के अपरदन होने के परिणाम किसी भी देश तथा मानव जाति के लिए भयंकर हो सकते हैं। हमारे देश में मिट्टी अपरदन द्वारा प्रतिवर्ष अरबों रुपए के बराबर आर्थिक हानि हो रही है तथा समूचे राष्ट्र को पर्यावरणीय दुष्परिणाम भी भुगतने पड़ रहे हैं। जलवायु की समुचित दशाओं तथा अच्छे वनस्पति आवरण होने पर प्रकृति को एक इंच मोटी परत बनाने में लगभग 800-1000 वर्ष लगते हैं किंतु एक ही आंधी या बाढ़ में यह मिट्टी बह सकती है। हमारे देश में प्रकृति द्वारा अनेक प्रकार की उपजाऊ मिट्टी प्रदान की गई है किंतु उचित भू-प्रबंध नहीं होने के कारण तथा जलग्रहण क्षेत्रों की दोषपूर्ण प्रबंध व्यवस्था होने के कारण इन उपजाऊ मिट्टियों का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। मिट्टी अपरदन हमारे राष्ट्र की इतनी गंभीर समस्या है कि इसके निरंतर बढ़ते रहने से हमारे देश में भविष्य में भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। जिस प्रकार युद्ध से किसी भी राष्ट्र का शीघ्र पतन होता है उसी प्रकार मिट्टी अपरदन तथा मिट्टी की

उर्वरता पर नियंत्रण न रखने से शीघ्र ही राष्ट्र का विनाश हो सकता है। यदि हमें भविष्य में आने वाली अपनी सन्तानों की और उनके भोजन की समस्या की थोड़ी भी चिंता है तो नि:संदेह हमें मिट्टी की रक्षा का दृढ़ संकल्प लेना होगा।

दीर्घकालीन उर्वरक प्रयोग परीक्षणों के अनुभव

विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों की विभिन्न फसल-चक्र प्रणालियों में एक निश्चित स्थान पर चलायी जा रही दीर्घकालीन उर्वरक प्रयोग परीक्षण पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना का उद्देश्य न केवल उर्वरक तथा कार्बनिक स्रोतों से प्राप्त पोषक तत्वों के लगातार प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादकता पर प्रभाव को ही देखना है बल्कि जमीन की दशा में एवं पर्यावरण में सुधार हेतु उचित उर्वरक प्रयोग प्रबंध हेतु नीति निर्धारण करना है। इन परीक्षणों का प्रमुख उद्देश्य उत्पादकता बढ़ाना, उत्पादन में स्थिरता एवं पर्यावरणीय सुरक्षा है। ये परीक्षण पिछले 25 वर्षों से लगातार चल रहे हैं। इनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलकर सामने आए हैं :

1. उर्वरक फसल उत्पादकता बढ़ाने में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। उर्वरकों के बिना लगातार उच्च उत्पादन लेना संभव नहीं है।
2. अकेले नाइट्रोजन उर्वरकों के लगातार प्रयोग से निरंतर टिकाऊ उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता है।
3. लगातार उच्च उत्पादकता प्राप्त करने के लिए मिट्टी परीक्षण के आधार पर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का संतुलित एवं इष्टतम प्रयोग आवश्यक है।
4. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के लगातार अधिक प्रयोग से कुछ साल बाद सूक्ष्म व द्वितीयक पोषक तत्वों की कमी आ जाती है और उच्च उत्पादन प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

5. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की इष्टतम मात्रा में एवं गोबर की खाद के समन्वित प्रयोग से अच्छा एवं उच्च उत्पादन तो प्राप्त होता ही है, साथ ही सूक्ष्म व द्वितीयक पोषक तत्वों की कमी एवं मृदा अम्लता में सुधार होता है।

अध्याय-3

आवश्यक पोषक तत्व

पौधों को अपने पोषण के लिए अनेक तत्वों की आवश्यकता होती है। पौधों का रासायनिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि पौधों में अनेक ऐसे तत्व पाए जाते हैं जो वास्तव में पौधों की संतुलित वृद्धि के लिए आवश्यक नहीं होते हैं। आवश्यक पोषक तत्वों में केवल वही तत्व सम्मिलित किए जा सकते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पौधों में कोई विशिष्ट कार्य करते हों तथा इनकी कमी का पौधे की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। किसी तत्व की पौधों के लिए आवश्यकता को निर्धारित करने के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किए गए हैं।

पौधों के लिए पोषक तत्व की आवश्यकता के मानक

वैज्ञानिक आरनन (1954) ने पौधों के लिए पोषक तत्वों की अनिवार्यता निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत प्रस्तुत किए:

1. पौधे में तत्व का विशिष्ट दैहिक अथवा उपापचय कार्य हो। बाद में वैज्ञानिक निकोलस (1965) ने उपरोक्त आधार में संशोधन करके यह निर्धारित किया है कि अनिवार्य तत्व का पौधों में विशिष्ट कार्य होना चाहिए एवं पौधे में कमी होने पर पौधा अपना जीवन-चक्र पूरा न कर सके।

2. पौधे में आवश्यक पोषक तत्व की कमी से वानस्पतिक अथवा जनन अंग की वृद्धि रुक जाती है और पौधे अपना जीवन-चक्र पूरा नहीं कर पाते हैं।

3. आवश्यक पोषक तत्वों की कमी की अवस्था में पौधों पर पोषक तत्वों की न्यूनता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं जो केवल उसी तत्व की आपूर्ति करके ठीक किया जा सकता है।

पौधों के पोषक तत्व से तात्पर्य उन सभी ऐसे तत्वों से है जो पौधों की वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पौधे इन तत्वों को वायु, जल और मिट्टी के माध्यम से ग्रहण करते हैं। रासायनिक विश्लेषण के आधार पर यह ज्ञात हो सका है कि पौधों में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, क्लोरीन, ब्रोमीन, सिलिकन, लीथियम, रुबिडियम, स्ट्रांशियम, बैरियम, जस्ता, मरकरी (पारा) ऐल्युमिनियम, थैलियम, टिटैनियम, टिन, लैड, आर्सेनिक, मैंगनीज, कोबाल्ट, निकेल, तांबा, क्रोमियम, वैनेडियम आदि तत्व न्यूनाधिक मात्रा में पाए जाते हैं। पौधों में इन तत्वों की उपस्थिति का अर्थ यह नहीं है कि ये सभी तत्व पौधों के लिए आवश्यक हैं अथवा वे पौधों के विकास और पुनर्जनन में सहायक होते हैं। पौधों में पाए जाने वाले इन तत्वों में से 17 तत्व ऐसे हैं जो पौधों की वृद्धि और जनन के लिए आवश्यक माने गए हैं और शेष लाभकारी समझे जाते हैं। कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस और गंधक जीवद्रव्य के निर्माण में सहायक होते हैं। इन तत्वों के अतिरिक्त 15 तत्व और हैं जो पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक माने जाते हैं। ये तत्व हैं: पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, मैंगनीज, मॉलिब्डेनम, तांबा, बोरॉन, जस्ता, क्लोरीन, सोडियम, कोबाल्ट, निकेल, वैनिडियम और सिलिकन। यहां पर यह भी बताना महत्वपूर्ण है कि ये 17 तत्व समस्त पौधों के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं होते। पहले बताए गए छः तत्वों में फॉस्फोरस, गंधक तथा शेष 14 तत्व अर्थात् कुछ मिलाकर 17 तत्व पादप-राख या भस्म के नाम से जाने जाते हैं। जीवद्रव्य में भाग लेने वाले शेष 4 तत्व-कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन जलने पर गैस रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, जबकि शेष तत्व खनिज रूप

में अवशेष रह जाते हैं।

पादप विशेष के वातावरण में किसी भी तत्व की कमी हो जाने पर उनकी कोशिकाओं में उस तत्व की कमी हो जाती है, जिससे चयापचयी क्रियाओं में गड़बड़ी आ जाती है, जिसके कारण पौधों में न्यूनता के लक्षण, वृद्धि में कमी, पत्तियों का पीला या बैंगनी होना आदि दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ये लक्षण पादप-वातावरण में तत्व विशेष के अभाव के कारण ही प्रकट होते हैं और पौधों की किस्म विशेष के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। इसके विपरीत पादप-वातावरण में तत्व विशेष का अतिबाहुल्य हो जाने पर विषालुता के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। तत्व विशेष की न्यूनता और विषालुता के ये लक्षण पौधों की चयापचयी क्रियाओं में विभिन्न पोषक तत्वों की भूमिका के महत्व को स्वयं ही स्पष्ट कर देते हैं।

कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन-जैसे तत्व पौधों में पाए जाने वाले विशिष्ट यौगिकों के अंग हैं, जिनसे इन सजीव पौधों का निर्माण हुआ है। हरे पौधों का लगभग 95 प्रतिशत केवल इन्हीं 5 तत्वों से निर्मित रहता है। शेष भाग का निर्माण अन्य आवश्यक पोषक तत्वों द्वारा होता है। जहां तक पौधों की जीवन-क्रियाओं के सम्पन्न होने का प्रश्न है, उल्लेखनीय है कि सभी आवश्यक पोषक-तत्वों का एक समान महत्व है। पौधों को कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन की पूर्ति कार्बन डाइ-ऑक्साइड और जल के माध्यम से होती है। ये तीनों तत्व खनिज पोषक तत्वों की श्रेणी में नहीं माने जाते, इसलिए इनकी पूर्ति कृत्रिम साधनों से नहीं की जा सकती। अन्य आवश्यक पोषक तत्व खनिज पोषक तत्वों की श्रेणी में नहीं माने जाते, इसलिए इनकी पूर्ति कृत्रिम साधनों से नहीं की जा सकती। अन्य आवश्यक पोषक तत्व खनिज पोषक तत्वों की श्रेणी में आते हैं और इनकी पूर्ति कृत्रिम साधनों द्वारा करनी पड़ती है।

सारणी 3.1: पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की खोज का विवरण

तत्व	तत्वों के अन्वेषक (वैज्ञानिक)	अन्वेषण वर्ष
कार्बन हाइड्रोजन	पादप-पोषण में जल का महत्व आदिकाल से ज्ञात।	
ऑक्सीजन	1800 ई. में प्रीस्टले तथा उनके सहयोगियों ने पादप पोषण में वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड की आवश्यकता संबंधी पुष्टि की।	
नाइट्रोजन	थ्यौडोर डे सासर	1804
फॉस्फोरस पोटैशियम मैग्नीशियम गंधक	सी. स्प्रैंगेल	1839
लोहा	ई. ग्रिम	1844
मैंगनीज	जे.एस. मैकहार्ग	1922
जस्ता	ए.एल. सोमर तथा सी.वी. लिपमैन	1926
तांबा	ए.एल. सोमन, सी.पी. लिपमैन और जी. मैक किनी	1931
मॉलिब्डैनम	डी.आई. ऐर्नन और पी.आर. स्टाउट	1939
सोडियम	पी.एफ. ब्राऊनेल और जे.डब्ल्यू. वुड	1957
कोबाल्ट	ए. अहमद और एच.जे. इवान्स	1959

केवल बड़े पौधों के लिए आवश्यक तत्व

कैल्शियम	सी. स्प्रैंगेल	1839
बोरॉन	के. वारिंगटन	1923
क्लोरीन	टी.सी. ब्रोयर और उनके सहयोगी	1954

उपरोक्त सारणी में वर्णित आवश्यक पोषक तत्वों के अतिरिक्त छह तत्व ऐसे हैं जो विशेष पौधों की किस्मों के लिए ही आवश्यक होते हैं। इन तत्वों का उल्लेख सारणी 3.2 में किया जा रहा है।

सारणी 3.2: कुछ विशेष पौधा किस्मों के लिए आवश्यक पोषक-तत्व

तत्व	पौधा किस्म	तत्वों के अन्वेषक (वैज्ञानिक)	अन्वेषण वर्ष
वैनेडियम	सेनेडेस्मस ऑबिलकस	डी.आई. ऐर्नन और जी. वैसेल	1953
सिलिकन	डायएटम	जी.सी. लैविन	1962
आयोडीन	पॉलीसिफोनिया	एल. फ्राइज	1966
सेलेनियम	ऐस्ट्रगैलस प्रजाति	एस.एफ. ट्रेलीज और एच.एच. ट्रेलीज	1938
गैलियम	काली फफूंद	आर.ए. स्टीनवर्ग	1938
ऐल्युमिनीयम	फर्न	के. टौबक	1942

पोषक तत्वों के कार्य और कमी के लक्षण

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व मुख्यतया निम्नलिखित कार्य संपन्न करते हैं :

1. पोषक तत्व कोशिका-अवयवों तथा उपापचय क्रियाओं को जागृत करने वाले यौगिकों के आवश्यक अंग होते हैं।
2. ये कोशिकीय अवयवों को सुव्यवस्थित बनाए रहते हैं।
3. ऊर्जा-स्थानांतरण में सहायक होते हैं।
4. एंजाइम अभिक्रियाओं को उत्तेजित करने में सहायक होते हैं।

पादप पोषण हेतु आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों के महत्वपूर्ण कार्यों तथा उनके अभाव व विषालुता के लक्षणों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

कार्बन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन

पौधे अपनी आवश्यकतानुसार, कार्बन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन की प्राप्ति वायु और जल के माध्यम से करते हैं। ये तत्व, पौधों के निर्माण में भाग लेने वाले विभिन्न जैविक-रासायनिक यौगिक के प्रमुख अवयव हैं। ये यौगिक विभिन्न उपापचय-क्रियाओं में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक ऊर्जा का अधिकांश भाग प्रकाशीय श्वसनक्रिया के समय कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप प्राप्त होता है। वायुमंडलीय कार्बन डाइ-ऑक्साइड और मृदा जल का शर्करा और स्टार्च के संश्लेषण में विशेष महत्व है।

नाइट्रोजन

कार्य

कार्बन और जल के तत्वों (हाइड्रोजन व ऑक्सीजन) के बाद पौधों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाने वाला तत्व नाइट्रोजन ही है। पादप प्रोटीन में लगभग 14 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है। यह ऐमीनो-अम्ल, न्यूक्लियोटाइड और कोएन्जाइम का संघटक है। वैसे तो यह नाइट्रेट रूप में पौधों द्वारा ग्रहण किया जाता है परंतु अवकरण के बाद यह तमाम जैविक-यौगिकों का अवयव बन जाता है।

नाइट्रोजन क्लोरोफिल के संश्लेषण में भाग लेता है। यही कारण है कि नाइट्रोजन के अभाव में पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। प्रोटीन, प्यूरिन, पाइरीमिडिन के अलावा तमाम कोएन्जाइम का अवयव होने के कारण, इस तत्व के अभाव में प्रोटीन-संश्लेषण और पादप-वृद्धि पर कुप्रभाव पड़ता है। नाइट्रोजन के अभाव में प्रकाश संश्लेषण में भी कमी आ जाती है। पौधों में न केवल आवश्यक ऐमीनो-अम्लों की ही कमी हो जाती है वरन् आवश्यक कार्बोहाइड्रेट संश्लेषण से संबंधित प्रक्रम शिथिल पड़ जाता है। अमोनियम-आयन की विषालुता की स्थिति में क्लोरोप्लास्ट की संरचना भी प्रभावित होती है। प्लास्टिड की आंतरिक रचना में अत्यधिक परिवर्तन हो जाता है।

अभाव के लक्षण

पौधों में नाइट्रोजन की कमी के लक्षण बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रकट होते हैं। पत्तियों का पीला पड़ना, पौधों की वृद्धि में कमी, पौधों का तकुआकार होना आदि प्रमुख लक्षण हैं। फलों का रंग इस तत्व की कमी के बावजूद भी सामान्य रहता है।

नाइट्रोजन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर प्रकट होते हैं, क्योंकि एक गतिशील तत्व होने के कारण यह पुरानी पत्तियों से नयी पत्तियों को स्थानांतरित हो जाता है। पत्तियों में पीलापन आमतौर पर मध्य शिरा से प्रारंभ होकर पत्तियों के निचले भाग की ओर क्रमागत बढ़ता जाता है। अत्यधिक कमी की स्थिति में पीली पत्तियां भूरे रंग की हो जाती हैं और अंत में सूखकर गिर जाती हैं।

फॉस्फोरस

कार्य

पौधों द्वारा ऋणायन-रूप में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में ग्रहण किए जाने वाले तीन तत्वों में फॉस्फोरस एक प्रमुख पोषक तत्व है। शेष दो तत्व हैं–नाइट्रोजन (नाइट्रेट) और गंधक (सल्फेट)। इन दोनों

तत्वों की भांति फॉस्फेट आयन का पुनः अवकरण पादप कोशिका में नहीं हो पाता। पादप-जीवन में ऊर्जा उपापचय में फास्फोरस की प्रमुख भूमिका रहती है। एडिनोसिन ट्राइफास्फेट का अंग होने के कारण यह समस्त पादप-प्रजातियों को जीवित कोशिकाओं के सर्वत्र उपयोगी ऊर्जा भंडार का अभिन्न अंग है। फॉस्फोरस फास्फोलिपिड के अलावा शुगर फॉस्फेट, न्यूक्लियोटाइड और कोएन्जाइम में भी पाया जाता है। यह फाइटिक अम्ल, फाइटिन के रूप में बीजों में भंडारित रहता है।

फास्फोरस तमाम एन्जाइम प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। ए.डी.पी. का ए.टी.पी. में फास्फोरिलीकरण इस तत्व की सांद्रता पर निर्भर करता है। कुछ एन्जाइमों की क्रियाशीलता भी फास्फोरस की उपस्थिति में बढ़ जाती है। यह तत्व उपापचय तथा जैविक संश्लेषण अभिक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एन.ए.डी. तथा अन्य अनेक फास्फोरिलीकृत यौगिकों के संश्लेषण में आवश्यक समझा जाता है। यही कारण है कि फॉस्फोरस के अभाव में उपापचयन और विकास संबंधी गड़बड़ियां उत्पन्न हो जाती हैं।

फॉस्फोरस पौधों द्वारा मॉलिब्डेट के अवशोषण को प्रोत्साहित करता है। रासायनिक दृष्टि से ऐसा समझा जाता है कि यह दोनों आयनों के बीच पारस्परिक प्रतियोगिता के कारण होता है। इस प्रकार दो आयनों के बीच प्रतियोगिता के कारण एक आयन की गतिशीलता बढ़ जाती है। फॉस्फोरस के अभाव में पौधों के क्लोरोप्लास्ट में असामान्यता आ जाती है।

फॉस्फोरस पौधों की जड़ों के विकास में सहायक होता है। यह पार्श्वीय तथा तंतुमय दोनों ही प्रकार की जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करता है, जिससे पौधों द्वारा पोषक तत्वों का शोषण अधिक होता है। इसके विपरीत फॉस्फोरस अभावग्रस्त पौधों के जड़-तंत्र का विकास रुक जाता है। परिणाम उनका पोषण-मंडल भी कट जाता है।

फॉस्फोरस की उचित पूर्ति की दशा में अनाज वाली फसलों में

दौजियों की संख्या में वृद्धि होती जाती है जिससे बालियों और दानों की संख्या भी बढ़ जाती है जिसका सीधा प्रभाव उपज पर पड़ता है।

फॉस्फोरस दानों के निर्माण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। यही कारण है कि फॉस्फोरस के अभाव में फसलें देर से पकती हैं। फॉस्फोरस की कमी का चारे वाली फसलों के गुणों पर कुप्रभाव पड़ता है। फॉस्फोरस तने को शक्ति प्रदान करके फसलों को गिरने से बचाता है।

यह अनाज वाली फसलों में दाने-भूसे का अनुपात बढ़ा देता है और पौधों में रोग-प्रतिरोधिता उत्पन्न करने में सहायक होता है।

दलहनी फसलों में फॉस्फोरस के अभाव में नाइट्रोजन का भी अभाव हो जाता है, क्योंकि फॉस्फोरस की कमी होने पर पौधों की जड़-ग्रंथियों में पाए जाने वाली जीवाणुओं की क्रियाशीलता कम हो जाती है, जिससे नाइट्रोजन-यौगिकीकरण कम होता है।

अभाव के लक्षण

पौधों की अनेक प्रजातियों में फॉस्फोरस के अभाव में पत्तियां गहरी हरी या नीली-हरी हो जाती हैं। पत्तियों की शिराओं के मध्य का भाग प्राय: लाल बैंगनी या भूरे रंग का हो जाता है और अंत में पत्तियां झड़ जाती हैं। पौधों के साथ ही जड़ों की भी वृद्धि रुक जाती है। अत्यधिक कमी की स्थिति में पौधा बौना दिखाई देने लगता है।

फॉस्फोरस की कमी वाले फलों का रंग भूरा-हरा, फल अधिक मुलायम तथा गूदेदार, स्वाद में खट्टे अधिक समय तक न टिकने वाले होते हैं।

पोटैशियम

पोटैशियम यद्यपि पौधों के अंदर पाए जाने वाले किसी भी जैविक

यौगिक की संरचना में भाग नहीं लेता है, फिर भी इसकी उपस्थिति अन्य पोषक तत्वों के अवशोषण तथा पौधों में उनके संचालन के लिए आवश्यक होती है। कोशिका-द्रव्य में उपस्थित पोटैशियम-आयन कोशिका को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए आवश्यक परासरणी सांद्रता बनाए रहता है। यह पौधों में अन्य पोषक तत्वों की गतिशीलता को भी प्रभावित करता है। इसके साथ ही यह अनेक रोगों तथा हानिकारक कीड़े-मकोड़ों से बचने की शक्ति प्रदान करता है। यही नहीं, पोटैशियम तमाम शरीर-क्रियात्मक प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कार्य

एंजाइम अभिक्रिया

पोटैशियम की उपस्थिति में कार्बोहाइड्रेट तथा न्यूक्लिक अम्ल के उपापचय में भाग लेने वाले अनेक एन्जाइम, जैसे पाइरुविक काइनेस, फ्रक्टोकाइनेस, फास्फोग्लूको काइनेस, फार्मिलेस और फास्फोन्यूक्लियोटाइड फास्फोरिलेस आदि की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

उपापचय

पौधों के अंदर संपन्न होने वाली अनेक उपापचय क्रियाओं में पोटैशियम का महत्वपूर्ण योगदान है। इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

(क) प्रोटीन उपापचय

पोटैशियम विभिन्न प्रकार के पौधों में नाइट्रोजन अथवा प्रोटीन के उपापचय में सहायता करता है। पेप्टाइड के निर्माण में सहायक होने के कारण प्रोटीन-संश्लेषण में इसका योगदान स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है। पोटैशियम के अभाव में प्यूट्रेसिन तथा अग्नेटाइन-जैसे विषैले पदार्थों का निर्माण होता है। पोटैशियम के अभाव में बगीचों की घासों में

ऐस्पेरिजिन, फ्लैक्स के पौधों में अर्जिनीन तथा पौधों की अन्य जातियों में लाइसीन, आर्जिनीन, प्लाइसिन, ल्यूसिन, टाइरोसिन और फेनाइल अलेनिन का बाहुल्य होता है। पोटैशियम के प्रयोग द्वारा दानों में प्रोटीन वृद्धि के अनगिनत प्रमाण उपलब्ध हैं।

(ख) कार्बोहाइड्रेट उपापचय

प्रकाश-संश्लेषण तथा पोटैशियम सांद्रता में एक धनात्मक संबंध देखा गया है। यह तत्व पत्तियों की कार्बन डाइऑक्साइड परिपाचय क्षमता में वृद्धि करता है। साथ ही यह जड़ वाली फसलों के स्टार्च तथा शर्करा की मात्रा में वृद्धि करता है। पोटैशियम के अभाव में श्वसन-दर में वृद्धि हो जाती है।

(ग) वसा उपापचय

देश में किए गए प्रयोगों से ज्ञात होता है कि पोटैशियम के प्रयोग से सोयाबीन के दानों में तेल की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। पोटैशियम वसा पैदा करने वाले एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ाता है।

शरीर प्रक्रियाओं में पोटैशियम का योगदान

पोटैशियम एक अत्यंत गतिशील तत्व होने के कारण नए विभाजी (मेरिस्टेमेटिक) के कोशिका विभाजन में विशेष सहायक होता है। पोटैशियम के अभाव में जड़ों की क्रियाशीलता घट जाती है, जिसके फलस्वरूप सामान्य पौधों की तुलना में पोटाश के अभाव में प्रभावित पौधों के तना-जड़ का अनुपात दुगना हो जाता है। यह तत्व कोशीय संघटन, विद्युत् आवेश संतुलन, जलयोजन एवं पारगम्यता बनाए रखने में मदद करता है। पोटैशियम पौधों में लिग्निन तथा सेलुलोस की मात्रा में वृद्धि करता है। शोध-परिणामों से यह भी ज्ञात हुआ है कि पोटैशियम गन्ने के रस के गुणों में वृद्धि करता है। पौधों को गिरने से बचाता है। टमाटर के फलों के गुण तथा सुगंध में वृद्धि के साथ

ही फसलों को फटने से बचाता है।

रोग प्रतिरोधिता

पोटैशियम पौधों को हानिकारक सूक्ष्म जीवों तथा रोगों से बचने की शक्ति प्रदान करता है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि पोटाश के अभाव में धान के पौधे तना-सड़न बीमारी द्वारा प्रभावित हो जाते हैं। पोटाश के प्रयोग द्वारा मक्के की मृत केंद्र कोथगलन नामक बीमारी कुछ हद तक नियंत्रित की जा सकती है।

सूखे के प्रति सहनशीलता

प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि पोटाश के प्रयोग द्वारा पौधों में सूखे के प्रति सहनशीलता में वृद्धि होती है।

नाइट्रोजन उपयोग में वृद्धि

पोटाश के प्रयोग में नाइट्रोजन का भूमि में यौगिकीकरण कम हो जाता है और यौगिकीकृत नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ जाती है। स्पष्ट है कि पोटाश पौधे द्वारा नाइट्रोजन के उपयोग में महत्वपूर्ण कार्य करता है।

जैविक क्रियाओं में योगदान

पोटाश प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी में पाए जाने वाले जीवाणुओं को क्रियाशीलता को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार विभिन्न जैविक क्रियाओं जैसे अमोनीकरण, नाइट्रीकरण और नाइट्रोजन यौगिकीकरण में पोटाश महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

अभाव के लक्षण

पौधों में पोटैशियम के अभाव के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। फिर ये लक्षण धीरे-धीरे नई पत्तियों की ओर बढ़ते जाते हैं। पोटैशियम की कमी में पत्तियों के किनारे झुलसे हुए

दिखाई पड़ते हैं। इस तत्व की अधिक कमी होने पर वृक्षों में शीर्षरंभी-क्षय (डाइबैक) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। सर्वप्रथम पत्तियों के किनारों की ओर शिराओं के मध्य भाग में हरिमाहीनता हो जाती है अर्थात् पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और अंत में सूख जाती हैं। पोटैशियम के अभाव में पत्तियों का सूखना प्यूट्रेसिन नामक पदार्थ के अधिक मात्रा में एकत्र हो जाने के कारण होता है। दलहनी फसलों में पोटैशियम के अभाव में पत्तियों के किनारों पर सफेद दाने पड़ जाते हैं।

पौधों की अनेक प्रजातियों में पोटैशियम के अभाव में फास्फोरस की कमी की ही तरह पत्तियां गहरी हरी या नीली हरी हो जाती हैं, उन पर ऊतकक्षयी धब्बे बन जाते हैं, पौधों की वृद्धि सामान्य से कम हो जाती है और अधिक कमी की स्थिति में शीर्ष तथा पार्श्व कलिकाएं मर सकती हैं।

कैल्शियम

कार्य

जड़ों के विकास में कैल्शियम का विशेष महत्व है। इसलिए इस तत्व के अभाव में जड़ों पर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, जड़ों की वृद्धि रुक जाती है, वे असंगठित हो जाती हैं, उनका रंग उड़ जाता है और कमी की उग्रता के कारण मर भी जाती है। फूलों तथा फलों में कैल्शियम की कमी को पुष्पमंजरी सड़न के नाम से पुकारते हैं। कैल्शियम पराग के अंकुरण तथा परागनाल की वृद्धि के लिए नितांत आवश्यक है। साथ ही कोशिका-भित्ति में पाए जाने वाले पदार्थों के संश्लेषण में कैल्शियम का विशेष महत्व है। यह कोशिका कला को क्रियाशील बनाए रखने में प्रमुख भूमिका निभाता है।

पत्तियों में पाए जाने वाले कुल कैल्शियम का 60 प्रतिशत भाग क्लोरोप्लास्ट में पाया जाता है। कैल्शियम एक अति आवश्यक सहकारक

के रूप में अनेक एन्जाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाने में सहायक होता है।

कैल्शिमय प्रत्यक्ष रूप से नाइट्रोजन यौगिकीकरण में भाग न लेकर दलहनी फसलों की जड़-ग्रंथियों पर पाए जाने वाले राइजोबियम की जीवाणु की क्रियाशीलता को प्रभावित कर इस प्रक्रिया में सहायता करता है।

अभाव के लक्षण

कैल्शियम के अभाव के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियां, तनों तथा जड़ों के बढ़ने वाले भागों पर दिखाई पड़ते हैं। नई पत्तियां विरूपित हो जाती हैं, पत्तियों का अग्रभाग पीछे की ओर मुड़कर हुक की तरह दिखाई देने लगता है, उनके किनारे भी ऊपर या नीचे की ओर मुड़ जाते हैं, वे विकृत तथा खुरदरी-सी हो जाती हैं उनके किनारे झुलस से जाते हैं और जड़ों का विकास रुक जाता है तथा वे चिपचिपी हो जाती है। पत्तियों के अग्रभागों का मुड़ना अग्र हुकिंग कहलाता है।

मैग्नीशियम

कार्य

पौधों के पर्णहरित में मैग्नीशियम का एक अणु एक स्थिर अवयव के रूप में पाया जाता है। इसे मैग्नीशियम पोरफाइरिन कहते हैं। यद्यपि अणुभार का लगभग 2.7 प्रतिशत ही मैग्नीशियम के रूप में पाया जाता है, किंतु पर्णहरित में मौजूद मैग्नीशियम पत्तियों में पाए जाने वाले कुल मैग्नीशियम का केवल 10 प्रतिशत ही होता है। पत्तियों में मौजूद कुल मैग्नीशियम का आधा या उससे भी अधिक भाग क्लोरोप्लास्ट में पाया जाता है। प्लास्टिड में मैग्नीशियम की मात्रा कभी-कभी पत्तियों में पाए जाने वाले मैग्नीशियम के अतिरिक्त होती है।

पर्णहरित का अवयव तथा फॉस्फोरस स्थानांतरण को प्रभावित करने वाले तमाम एन्जाइम का प्रेरक होने के कारण मैग्नीशियम के अभाव

में पौधों की उपापचय क्रियायें प्रभावित होती हैं। इस तत्व के अभाव में पर्णहरित तथा प्रकाश संश्लेषण क्रिया में ह्रास होता है। मैग्नीशियम क्रोमोसोम का भी एक मुख्य अवयव है इसलिए वंशानुगत गुणों को भी नियंत्रित करता है।

एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ाने में अन्य तत्वों की तुलना में मैग्नीशियम का सर्वाधिक महत्व है। कुछ महत्वपूर्ण एन्जाइम, जैसे पाइरोफास्फेटस मैग्नीशियम की अनुपस्थिति में निष्क्रिय हो जाते हैं। उच्च कुल के पौधों में एन्जाइम की क्रियाशीलता के लिए मैग्नीशियम एक अति आवश्यक तत्व माना जाता है। बहुत से सूक्ष्म एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ाने में मैग्नीशियम सहायक होता है।

अभाव के लक्षण

कैल्शियम के विपरीत मैग्नीशियम एक गतिशील तत्व है, इसलिए इसके अभाव के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। ज्ञातव्य है कि पुरानी पत्तियों का मैग्नीशियम नई पत्तियों को स्थानांतरित हो जाता है। बाद में नई पत्तियां भी प्रभावित हो जाती हैं। सामान्य रूप से पत्तियों के किनारों पर हरिमाहीनता के लक्षण दिखाई देते हैं, उनका रंग हल्का हो जाता है, किंतु शिराएं हरी बनी रहती हैं। अत्यधिक कमी की स्थिति में ऊतकक्षय हो जाता है। अपरिपक्व पत्तियां भी गिरने लगती हैं। तंबाकू में कभी-कभी पूरी पत्ती सफेद दिखती है। इसके कारण इसका बाजार मूल्य घट जाता है। इसे सैंड ड्राउन रोग कहते हैं।

गंधक

कार्य

पौधों द्वारा गंधक का अवशोषण मुख्य रूप से सल्फेट आयन के रूप में होता है। यही अवकरण के बाद जैविक यौगिकों में सन्निहित हो जाता है। यह सिस्टीन, सिस्टाइन और मिथियोनीन-जैसे एमीनो अम्लों

का अवयव है। थायमीन, बायोटिन और को-एन्जाइम "ए" में भी गंधक पाया जाता है।

प्रोटीन एक ऐसा यौगिक है, जिसमें पादप ऊतकों का अधिकांश नाइट्रोजन और गंधक सन्निहित रहता है। पौधों में नाइट्रोजन और गंधक एक निश्चित अनुपात में पाया जाता है। पौधों में आमतौर पर नाइट्रोजन की 1.5 प्रतिशत तथा गंधक की 0.1 प्रतिशत मात्रा पर्याप्त समझी जाती है। इस सांद्रता पर नाइट्रोजन और गंधक अणु 34.1 अनुपात में पाए जाते हैं।

गंधक कुछ एन्जाइमों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। कार्यविशेष के लिए यह फास्फोरस का विकल्प हो सकता है। गंधक की कमी के कारण प्रकाश-संश्लेषण कम होता है और कार्बोहाइड्रेट की मात्रा में भी कमी आ जाती है। यौगिकीकृत घुलनशील नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है, क्योंकि गंधक की कमी के कारण प्रोटीन-संश्लेषण में नाइट्रोजन युक्त जीवाधार का उपयोग नहीं हो पाता।

अभाव के लक्षण

पौधों में गंधक की कमी के लक्षण नाइट्रोजन की कमी के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं फिर भी इतना अंतर अवश्य होता है कि गंधक की कमी से सर्वप्रथम नई पत्तियां प्रभावित होती हैं जबकि नाइट्रोजन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों के आकार का छोटा होना तथा पीला पड़ना, गंधक के अभाव के सामान्य लक्षण हैं। यदि पौधे में गंधक के साथ ही नाइट्रोजन की कमी हो जाए तो ऐसी स्थिति में पूरा पौधा ही पीला दिखाई देने लगता है।

गंधक की अत्यधिक कमी की स्थिति में नई पत्तियों के अग्रभाग तथा किनारों का झुलसना, तने की पोरी का छोटा होना, पार्श्विक कलियों के अपूर्ण विकास, अग्रभाग वाली मृत अनेक शाखाओं की उत्पत्ति, प्ररोह पश्चमारी आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कार्य

धातु एन्जाइम का अंग

जस्ता अनेक धातु एन्जाइमी का अंग स्वरूप है। उदाहरणार्थ यह कई डिहाइड्रोजिनेसो-एल्कोहल डिहाइड्रोजिनेस, लैक्टिक डिहाइड्रोजिनेस, प्रोटीनेसों और पेप्टाइडों में पाया जाता है।

जस्ता फास्फेट एस्टर एन्जाइम-हेक्साकाइनेस को संक्रियित करने, एनीलेस एन्जाइम की क्रियाशीलता में वृद्धि करने, ग्लूकोस के फास्फोरिलीकरण तथा एन्डोल एसिटिक अम्ल का संश्लेषण करने में सहायक है। शोध परिणामों में इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि जस्ते का सीधा संबंध ट्रिप्टोफेन के संश्लेषण से रहता है जो एन्डोल एसिटिक अम्ल का माना जाता है। साइटोक्रोम "ए" तथा "बी" के उत्पादन में भी जस्ता सहायक है। यह साइटोक्रोम ऑक्सीडेस को भी विशेष क्रियाशील बनाता है। सल्फाइड्रिल यौगिकों को स्थिरता प्रदान करने में भी जस्ता आवश्यक समझा जाता है। यह सिस्टीन ऐमीनो अम्ल को सिस्टाइन में आक्सीकृत कर देता है। जस्ता "आर.एन.ए." के विघटन को रोकता है। यह कोशा-संरचना को सामान्य बनाए रखने में मदद करता है। प्रोटीन संश्लेषण में भी जस्ता सहायक होता है। इस तत्व की कमी की स्थिति में प्रोटीन का संश्लेषण नहीं हो पाता। जस्ता पौधों में कार्बोहाइड्रेट के उपयोग को भी प्रभावित करता है। इस तत्व के अभाव में पौधों में जल की मात्रा कम हो जाती है जिससे पौधों के अग्रसिरों और जड़ों का प्रचूषण-दबाव बढ़ जाता है। यह लोहा और मैग्नीज के साथ संयुक्त होकर जस्ता पर्णहरित के निर्माण में मदद करता है। जस्ते के प्रयोग से टमाटर की फसल में फाइटोफ्थोरा, कपास के पौधों में फ्यूजेरियम विल्ट तथा तम्बाकू में मोजेक वायरस रोग के नियंत्रण में मदद मिली है।

अभाव के लक्षण

जस्ते की कमी के लक्षण सामान्यतया पुरानी पत्तियों पर दिखाई

पड़ते हैं, परंतु नई पत्तियां भी प्रभावित हो जाती हैं। आमतौर पर पत्तियां आकार में छोटी हो जाती है और उन पर पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तियों पर सफेद धारियां-सी पड़ जाती हैं और शिराओं के बीच के ऊतक भी मर जाते हैं। इसके अभाव से धान, मक्का, नीबू आदि में न्यूनता के कारण अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

धान का खैरा रोग जस्ते की कमी से ही होता है। इसमें रोपाई के 20-25 दिन बाद पौधों की तीसरी या चौथी पत्तियां पहले हरिमाहीनता के लक्षण प्रदर्शित करती हैं। फिर इन पर भूरे रंग के छोटे-छोटे धब्बे पड़ जाते हैं। परिणामस्वरूप पूरा पौधा ही भूरा लाल दिखाई पड़ने लगता है। अंत में पत्तियां मर जाती हैं।

मक्के में जस्ते की कमी से पुरानी पत्तियों के शिराओं के बीच के भाग में हल्की पीली धारियां पड़ जाती हैं, जो बाद में सफेद रंग धारण कर लेती हैं। नई निकली हुई पत्तियां प्राय: हल्की पीली या सफेद रंग की दिखायी देती हैं।

मैंगनीज

कार्य

एंजाइमों की सक्रियता में वृद्धि-मैंगनीज यद्यपि अनेक एंजाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाता है, परंतु उच्च कुल के पौधों से अब तक ऐसा केवल एक एंजाइम अलग किया जा सका है। वैज्ञानिकों ने मूंगफली के बीज से मैग्नीप्रोटीन मैंगनीज नामक एंजाइम अलग किया है। आर्जिनेस एंजाइम भी मैंगनीज द्वारा सक्रिय होता है। यह "क्रेब चक्र" में भाग लेने वाले मौलिक डिहाइड्रोजिनेस-जैसे एंजाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाता है।

फास्फेट-उपयोग

फास्फेट स्थानांतरण में भाग लेने वाले एंजाइमों को विशेष प्रभावी

बनाने में मैंगनीज, मैग्नीशियम का कार्य कर सकता है।

यह हैक्सोकाइनेस और कार्बोक्सीलेस एन्जाइमों का सक्रियकारी तत्व है। मैंगनीज ऑक्सीडेस की भी क्रियाशीलता बढ़ाता है। फ्लैवोप्रोटीन एन्जाइम, आर्जिनेस तथा प्रोलिडेस को क्रियाशील करने में इसका हाथ रहता है।

उपापचयन: मैंगनीज के अभाव की स्थिति में उपापचय में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। इसका प्रभाव अनेक उपापचयजों पर पड़ता है। यह तत्व नाइट्रोजन उपापचय में भी भाग लेता है।

यह क्लोरोप्लास्ट का एक प्रमुख अवयव है। यह उन क्रियाओं में भाग लेता है जिनमें ऑक्सीजन मिलती है।

प्रकाश संश्लेषण चैनी (1970) ने मैंगनीज की पहचान पौधों में प्रकाश संश्लेषण की फोटो प्रणाली (II) में की। उन्होंने बताया कि इस तत्व की कमी से 'हिल अभिक्रिया' रुक जाती है और क्लोरोप्लास्ट में मैंगनीज की मात्रा घट जाती है। मैंगनीज की अधिकता पौधों में लोहे की कमी का कारण बन जाती है। इसके विपरीत मैंगनीज की मात्रा कम होने पर पौधे के भीतर फेरिक लोहे का निक्षेपण होने लगता है। उचित लोहे-मैंगनीज अनुपात का पौधों के पोषण में विशेष महत्व है।

अभाव के लक्षण मैंगनीज के लक्षण मुख्य रूप से नयी पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। कुछ फसलों में अभाव के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर ही दिखाई देते हैं। अभावग्रस्त पत्तियों पर हरिमाहीन धब्बे पड़ जाते हैं, परंतु उनकी शिराएं हरी बनी रहती हैं। अत्यधिक कमी की स्थिति में हल्के रंग के धब्बे के स्थान पर पीले या भूरे-सफेद धब्बे पड़ जाते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है। अनाज की फसलों में मैंगनीज के अभाव के कारण पत्तियां भूरे रंग की तथा पारदर्शी हो जाती हैं। बाद में पत्तियों पर ऊतकक्षयी भाग दिखाई देने लगते हैं।

लोहा

कार्य

अनेक उपापचयजों के अणु में लोहे के परमाणु स्थिर संघटक के रूप में पाए जाते हैं। लोहा या तो कम अणुभार वाले प्रोस्थेटिक समूह या स्वयं प्रोटीन का अविभाज्य अंग होता है। लोहा पोरफाइरिन यौगिकों का एक मुख्य अवयव है। उदाहरणार्थ साइटोक्रोम, हीम, अहीम एंजाइम तथा कार्यशील धात्विक प्रोटीन-जैसे पौधों में फेरीडॉक्सिन और हीमोग्लोबिन आदि।

लोहा पर्णहरित का एक मुख्य अवयव ही नहीं, बल्कि पर्णहरित के संश्लेषण में भी योगदान देता है। परंतु अभी तक यह नहीं मालूम हो सका है कि पर्णहरित के निर्माण में लोहे का क्या कार्य है।

लोहा साइटोक्रोम की उपस्थिति से फोटोफास्फोरिलीकरण और ऑक्सीकरण क्रियाओं में प्रकाश संश्लेषण तथा श्वसन के समय ऊर्जा स्थानांतरण में सहायक होता है। यही नहीं, प्रकाश संश्लेषण के समय फेरॉडाक्सिन और साइटोक्रोम का अवयव होने के कारण, यह प्रकाश ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा (ए.टी.पी.) में परिवर्तित करता है।

लोहा विभिन्न एंजाइमों का एक अंग होने के कारण उनकी क्रियाशीलता को उत्प्रेरित करता है। हाइड्रोजिनेस तथा हाइपोनाइट्राइट रिडक्टेस एन्जाइम की उपस्थिति में प्रोटीन का निर्माण होता है।

कुछ एंजाइम, जैसे केटालेस, एरऑक्सीडेस और डिहाइड्रोजिनेस लौह पोरफाइरिन की श्रेणी में आते हैं। ऐसा समझा जाता है कि अहीम लौह प्रोटीन जैसे फेरोडॉक्सिन ऊर्जा परिवहन में भाग लेता है।

राइबोसोम क्रोमोप्रोटीन में लोहे की मात्रा 29 प्रतिशत होती है। लोहा न्यूक्लिक अम्ल में भी पाया जाता है। लोहे की कमी से न्यूक्लिक अम्ल की सांद्रता कम हो जाती है, जिससे आर.एन.ए. की सांद्रता कम

हो जाती है। पत्तियों में पाया जाने वाला अधिकांश लोहा क्लोरोप्लास्ट में मौजूद रहता है। लोहे के अभाव में क्लोरोप्लास्ट का स्वरूप ही बदल जाता है।

लोहा फेरोडॉक्सिन का अवयव होने के कारण वातीय और अवातीय जीवाणुओं और नील-हरित शैवालों की उपस्थिति में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण (यौगिकीकरण) करने में मदद करता है। यह दलहनी फसलों की जड़-ग्रंथियों में पाए जाने वाले हीमोग्लोबिन (लेगहीमोग्लोबिन) का मुख्य अवयव है जो नाइट्रोजन यौगिकीकरण में मदद करता है।

अभाव के लक्षण

पौधों में लोहे की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों में दिखाई पड़ते हैं। लोहे के अभाव में पत्तियों में पर्णहरीतिमा की कमी हो जाती है, शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है तथा पौधे छोटे और कमजोर हो जाते हैं। अनाज के पौधों की पत्तियों पर लंबी पीली-हरी या पीली धारियां बन जाती हैं, जो बाद में सफेद रंग की हो जाती हैं।

तांबा

कार्य

तांबा अनेक एंजाइमों, जैसे-ऐस्कार्बिक अम्ल ऑक्सीडेस, फेलोलेस, लेक्सेस, यूरिकेस, साइटोक्रोम, ऑक्सीडेस, टाइरोसिनेस आदि का संघटक हैं। इस धातु के आयन अनेक एंजाइमों के सहकारक भी है। अन्य तत्वों की तरह इसका भी उत्प्रेरकीय क्रियाओं में महत्व है। इसके अभाव में प्रोटीन-संश्लेषण में बाधा पड़ती है और घुलनशील नाइट्रोजन यौगिकों की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। तांबे की कमी से अपचित शर्करा की मात्रा में भी कमी आ जाती है। तांबा की उपस्थिति में लोहा ऑक्सीकरण में भी सहायक होता है। यह विटामिन-ए के निर्माण

में भी योगदान देता है। साथ ही श्वसन क्रिया को नियंत्रित करता है और कुछ पौधों में इन्डोल ऐसीटिक अम्ल संश्लेषण में सहयोग देता है।

अप्रत्यक्ष रूप में यह पर्णहरित के विकास में भी सहायक होता है। तांबे के अभाव में प्रकाश-संश्लेषण की दर कम हो जाती है। पत्तियों में पाई जाने वाली कुल तांबे की मात्रा क्लोरोप्लास्ट में सर्वाधिक होती है। यह पोरफाइरिन के निर्माण में भी सहायक सिद्ध होता है।

अभाव के लक्षण

तांबे के अभाव के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। प्रारंभ में पत्तियां गहरे हरे-नीले रंग की हो जाती है जो बाद में पीली पड़ जाती हैं, फिर भी उनकी शिराएं हल्की या गहरी हरी बनी रहती हैं। अत्यधिक कमी में पत्तियां कोमल, लचीली और हरिमाहीन होकर मुड़ जाती हैं। नई निकलती हुई पत्तियां पहले से ही मुड़ी हुई पत्तियों के बीच में फंस-सी जाती हैं। तांबे के अभाव में बढ़ रहे कल्लों और कलियों की संख्या सामान्यत: अधिक हो जाती है।

बोरॉन

कार्य

सूक्ष्ममात्रिक तत्वों में बोरॉन एक ऐसा तत्व है, जिसकी सांद्रता मिट्टी और पौधे दोनों में ही अपेक्षाकृत कम पाई जाती है। आमतौर पर इसकी एक पी.पी.एम. (मिग्रा./किग्रा.) पौधों के लिए पर्याप्त समझी जाती है। बोरॉन की अधिक मात्रा पौधों के लिए विषाक्त हो जाती हैं। विभिन्न फसलों के लिए विषालुता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती हैं। पौधे इस तत्व का अवशोषण बोरेट आयन के रूप में करते हैं। बोरॉन यद्यपि किसी भी एन्जाइम का संघटक नहीं है, फिर भी यह अनेक एन्जाइमों, जैसे - केटालेस, ऑक्सीडेस, परऑक्सीडेस और सुक्रेस की

क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन उपापचयन में भी बोरॉन का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

पौधों में बोरॉन की भूमिका के बारे में सही जानकारी अभी नहीं हो पाई है। इसका कारण है कि बोरॉन का विश्लेषण अपेक्षाकृत जटिल है, साथ ही उचित रेडियो आइसोटोप का अभाव रहता है। जल-अवशोषण, उत्स्वेदन और ऋणायनों का अवशोषण भी बोरॉन द्वारा नियंत्रित होता है। यह प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल के संश्लेषण तथा फास्फेट के उपयोग और कोशिका भित्ति में पेक्टिन पदार्थ के निर्माण में सहायक होता है।

अभाव के लक्षण

पौधों में बोरॉन की कमी के लक्षण नई निकलती हुई पत्तियों या शिराओं में दिखाई पड़ते हैं। पत्तियां मोटी होकर मुड़ जाती हैं। जड़ों का विकास रुक जाता है। मुख्य तनों की फुनगी मर जाने के कारण फूल और फल नहीं लग पाते। इसके अतिरिक्त पत्तियों में कड़ापन भी आ जाता है, झुर्रियां पड़ जाती हैं और हरिमाहीनता के धब्बे भी दिखाई देने लगते हैं। बोरॉन की कमी अधिक मुखर होने पर पत्तियां सूख जाती हैं।

मॉलिब्डेनम

कार्य

मॉलिब्डेनम तत्व की आवश्यकता की पुष्टि सर्वप्रथम दलहनी पौधों के लिए की गई। बोटेंल्स (1930) ने स्वतन्त्र रूप में पाए जाने वाले नाइट्रोजन यौगिकीकरण में सहायता करने वाले जीवाणुओं की वृद्धि में मॉलिब्डेनम के जैविक महत्व की पुष्टि की। प्रयोगों से अब तक यह स्पष्ट हो गया है कि मॉलिब्डेनम की बहुत थोड़ी-सी मात्रा दलहनी पौधों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया को विशेष प्रोत्साहित करती है।

मॉलिब्डेनम नाइट्रोजन-उपापचय में सहायक होता है। यही नहीं, यह नाइट्रेट अपचयन के लिए भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

अभाव के लक्षण

इस तत्व के अभाव के लक्षण पुरानी पत्तियों से प्रारंभ होकर अग्र सिरे की ओर बढ़ते हैं। शिराओं के मध्य भाग में चमकीले पीले, हरे अथवा पीले-नारंगी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं और पत्तियां मुड़कर प्याले के आकार की हो जाती हैं। दलहनी फसलों में मॉलिब्डेनम की कमी के लक्षण प्रारंभिक अवस्था में नाइट्रोजन की कमी के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं। मॉलिब्डेनम के अभाव में उपस्थित नाइट्रेट का उपापचय न होने से नाइट्रोजन की कमी हो जाना स्वाभाविक है।

क्लोरीन

कार्य

क्लोरीन की अनिवार्यता का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रोयर (1954) ने टमाटर के पौधों पर किए गए प्रयोग के आधार पर कराया। पौधों में क्लोरीन के कार्य की विस्तृत सही जानकारी यद्यपि अभी तक नहीं हो पाई है, फिर भी यह ज्ञात है कि प्रकाश संश्लेषण की द्वितीय प्रकाश प्रावस्था के द्वारा ऑक्सीजन विसर्जन की क्रिया में क्लोराइड की आवश्यकता पड़ती है (बौब और सहयोगी 1963)। क्लोरीन के अभाव में पत्तियों के मुरझाने के लक्षण के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि उत्स्वेदन-क्रिया में गड़बड़ी पैदा होने के कारण ही ऐसा हो जाता है।

अभाव के लक्षण

क्लोरीन की कमी के कारण यद्यपि अधिकांश स्थितियों में नहीं पाई जाती, फिर भी पोषक तत्वों के घोल में उगाए गए पौधों में जो

कमी के लक्षण दृष्टिगोचर हुए हैं, उनके आधार पर ब्रोयर और सहयोगियों (1954) ने टमाटर में क्लोरीन के अभाव के लक्षण बताए हैं। उनके अनुसार नयी पत्तियां, नीली-हरी तथा चमकीली दिखाई पड़ने लगती हैं। दिन की गर्मी में पत्तियों का अग्रभाग मुरझाकर झुक जाता है। रात में ठंडक पाकर पत्तियों की दशा में पुनः सुधार हो जाता है। धीरे-धीरे पत्तियों पर भूरे धब्बे दिखाई देने लगते हैं। वे हरिमाहीन होकर मर-सी जाती हैं। अत्यधिक कमी की स्थिति में पौधे तकुआकार और बौने हो जाते हैं। अन्य पोषक तत्वों की भांति क्लोरीन के अभाव के लक्षणों में भी फसल विशेष के अनुसार भिन्नता पाई जाती है। पातगोभी की पत्तियों का मुड़ना, बंद गोभी में गंध का अभाव होना, बरसीम की पत्तियों का मोटा तथा छोटा हो जाना, पत्तियों का किनारा कटा-फटा होना, जौ की नई पत्तियों में हरिमाहीनता का उत्पन्न होना और मक्का की पत्तियों का सूख जाना आदि क्लोरीन की कमी के लक्षण बताए गए हैं।

अध्याय-4

जैविक खादें

खाद शब्द संस्कृत भाषा के "खाद्य" से निकला है। इसका अर्थ होता है–भोजन, वह जो खाया जाए। अंग्रेजी में खाद के लिए मैनियोर शब्द का उपयोग होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है–हाथ से काम करना, खनना। इसी अर्थ में यह पहले प्रयुक्त होता था। धीरे-धीरे इस अर्थ में परिवर्तन हुआ। 17वीं और 18वीं सदी में मैनियोर का अर्थ हुआ– ऐसे पदार्थ जो मिट्टी में मिलाए जाने पर उसकी उपजाऊशक्ति में वृद्धि करे। उस समय खड़िया, चूना, मार्ल (एक प्रकार की मिट्टी (अवमृदा)और जली हुई मिट्टी मैनियोर कहलाती थी। आजकल मैनियोर उन पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है जो खेत की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते हैं। आज गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट खाद ही वास्तविक खाद है। चूना, खड़िया और अवमृदा की अब खाद में गिनती नहीं होती। इन्हें अब मृदा सुधारक या संशोधक कहते हैं।

जैविक या कार्बनिक खाद से आशय उन सभी पदार्थों से है जो पेड़-पौधों से और पशु-पक्षियों तथा अन्य जीव-जंतुओं के मल-मूत्र से प्राप्त होते हैं। अकार्बनिक पदार्थों को उर्वरक कहा जाता है। ये कारखानों या प्राकृतिक या नैसर्गिक निक्षेपों से प्राप्त होते हैं। चूंकि उर्वरक रासायनिक प्रक्रिया द्वारा तैयार किए जाते हैं अत: इन्हें रासायनिक खादें भी कहा जाता है। भूमि को उपजाऊ बनाए रखने के लिए कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों प्रकार के पदार्थों का प्रयोग किया जाता है।

जैविक या कार्बनिक खादें पोषक तत्वों की पूर्ति करने के साथ-साथ अन्य कार्य भी करती हैं, जिससे उनका महत्व अधिक है:

1. भूमि में पानी सोखने और धारण करने की क्षमता बढ़ती है। हल्की बलुई मिट्टी में प्रयोग करने से पानी रोकने व धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है। भारी मटियार भूमि हल्की तथा हवादार हो जाती है।
2. मिट्टी के लाभकारी जीवों, जैसे - केंचुआ तथा अन्य नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है।
3. जैविक खादों के मिट्टी में प्रयोग करने से अम्ल पैदा होते हैं जो भूमि को क्षारीय होने से बचाते हैं। साथ ही मिट्टी के खनिजों के अघुलनशील भाग को घुलाकर पौधे के लेने योग्य बनाते हैं।
4. मिट्टी का ताप नियन्त्रित रहता है। जाड़े के दिनों में गेहूं की विलंब से बुआई के पश्चात् जैविक खाद पाटा देकर बिखेर देने से मिट्टी का तापमान बढ़ जाता है और अंकुरण दो-चार दिन पहले हो जाता है।
5. मिट्टी के हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करती है।
6. मिट्टी की संरचना बनाए रखने में सहायक है।

जैविक खादों की श्रेणी में गोबर की खाद, कम्पोस्ट और अन्य जैविक स्रोतों से प्राप्त खाद के रूप में इस्तेमाल होने वाले सामग्रियों अर्थात् फसलों के अवशेष, मानव तथा पशु मल-मूत्र, कूड़ा-करकट, जंगल और पानी में उगे खरपतवार, मुर्गियों की बीट, भेड़-बकरियों की मेंगनी व मूत्र, रक्त व मांस का चूर्ण, मछलियों तथा हड्डियों का चूर्ण, गुआनी, विभिन्न खलियां, ऊन की छीजन, मल-मूत्र मिश्रित पानी तथा हरी खादें आदि सम्मिलित की जाती हैं।

गोबर की खाद

गोबर की खाद मुख्य रूप से पशुओं के गोबर, मूत्र तथा उनके नीचे प्रयुक्त बिछाली व बचे-खुचे चारे आदि के सड़ने से बनती है, इसलिए इसमें वे सभी तत्व न्यूनाधिक मात्रा में पाए जाते हैं, जिन्हें

पौधे अपने भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। यद्यपि हमारे देश में खाद के रूप में पशुओं के गोबर और मूत्र का उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। परन्तु वास्तविकता यही है कि लोग इन्हें न तो संभालकर जमा करते हैं और न ठीक तरीके से इस्तेमाल करते हैं। यही कारण है कि हमारे देश में तैयार गोबर की खाद उतनी अच्छी नहीं होती है जितनी होनी चाहिए।

गोबर खाद की संरचना

गोबर की खाद तैयार करने के लिए तीन प्रकार की सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है–(1) ठोस पदार्थ अर्थात् जानवरों का गोबर, (2) द्रव पदार्थ अर्थात् जानवारों का मूत्र और (3) पशुशाले में प्रयुक्त बिछौने के रूप में प्रयोग किया गया घास-फूस, पुआल या अन्य वानस्पतिक कूड़ा-कचरा। कभी-कभी बिछौने के रूप में या खाद के ढेर में राख भी डाल दी जाती है। गोबर की खाद में इन तीनों सामग्रियों की मात्रा कम अधिक होने से उनकी संरचना में अंतर पाया जाता है। इसके कोई दो नमूने रचना की दृष्टि से एक समान नहीं होते। भारत में तैयार की गई खाद में वानस्पतिक कूड़े-कचरे की मात्रा बहुत होती है। किसान पशुओं के मूत्र का भी उपयोग ठीक से नहीं कर पाते जिससे अधिकांश मूत्र बेकार चला जाता है। इस प्रकार गोबर की खाद मुख्यतया जानवरों के गोबर, पशुशाला के कूड़े-कचरे, चारे के ठूंठ आदि से ही तैयार की जाती है। इसे बाड़े की खाद भी कहा जाता है।

इस प्रकार से प्राप्त गोबर की खाद में 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.25 प्रतिशत फॉस्फोरस और 0.5 प्रतिशत पोटैशियम की मात्रा पाई जाती है।

विभिन्न पशुओं के गोबर की संरचना

सारणी 4.1 में विभिन्न पशुओं के गोबर का संघटन दिया जा रहा है।

स्पष्ट है कि मुर्गियों की बीट में पोषक तत्वों की मात्रा सर्वाधिक

होती है। घोड़े की लीद या भेड़ों की मेंगनियों में गाय या भैंस की अपेक्षा पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होती है। कम उम्र के बछड़ों या बछियों के गोबर में अधिक उम्र के बैल या गाय के गोबर की तुलना में पोषक तत्वों की मात्रा कम होती है, क्योंकि कम आयु वाले जानवर अधिकांश पोषक तत्वों का उपयोग शारीरिक बढ़वार के लिए कर लेते हैं। बेकार खड़े रहने वाले पशु के गोबर की तुलना में काम करने पशु के गोबर में पोषक तत्वों की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसी प्रकार पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा की दृष्टि से दूध न देने वाली गाय का गोबर दूध देने वाली गाय के गोबर की अपेक्षा श्रेष्ठ समझा जाता है।

सारणी 4.1: विभिन्न पशुओं के गोबर का संघटन

पशु प्रजाति	जल	कार्बनिक पदार्थ	खनिज पदार्थ	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटैशियम	कैल्शियम
घोड़ा	76.5	21.0	3.9	0.47	0.30	0.30	0.17
गाय, बैल	82.4	15.2	3.6	0.30	0.18	0.18	0.36
भैंस	81.1	12.7	5.3	0.26	0.18	0.17	0.46
भेड़	61.9	33.1	4.7	0.70	0.51	0.29	0.46
सुअर	80.7	17.0	3.0	0.59	0.46	0.43	0.09
मुर्गी	57.0	29.3	–	1.46	1.17	0.62	–

गोबर में पोषक तत्वों की मात्रा पशुओं की जाति, नस्ल, उम्र आदि के अलावा उनको दिए जाने वाले चारे-दाने की किस्म पर बहुत हद तक निर्भर करती है। जिन पशुओं को प्रोटीनयुक्त बढ़िया चारा दिया जाता है, उनके गोबर में नाइट्रोजन-जैसे पोषक तत्व की मात्रा भी अधिक होती है। जानवरों के भोजन में उपस्थित 70 से 90 प्रतिशत नाइट्रोजन व फॉस्फोरस तथा 90 से 99 प्रतिशत पोटैशियम और 50

प्रतिशत जीवांश पदार्थ मल-मूत्र के माध्यम से पुनः वापस मिल जाता है।

किंतु गोबर में पाए जाने वाले पोषक तत्व पौधों को सुलभ नहीं हो पाते, क्योंकि उसके नाइट्रोजनधारी यौगिक मुख्यतया ऐसे अघुलनशील प्रोटीनों के रूप में रहते हैं, जिसे पशु स्वयं नहीं पचा पाते। इसलिए विघटन तथा सड़ाव के पश्चात् ही वे पौधों के लिए सुलभ हो पाते हैं।

विभिन्न पशुओं के मूत्र का संघटन

गोबर की भाँति मूत्र में पोषक तत्वों की मात्रा पशुओं की किस्म व नस्ल, उम्र आदि तथा चारे-दाने के गुणों पर निर्भर करती है। सारणी 4.2 में दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट है कि गोबर की भांति भेड़ का मूत्र भी खाद के लिए अत्यंत उपयोगी है। पोषक तत्वों की मात्रा की दृष्टि से भेड़ के बाद दूसरा स्थान घोड़े के मूत्र का है। इसमें कुल खनिज सामग्री अन्य पशुओं की अपेक्षा सबसे अधिक पाई जाती है। पशुओं और सुअरों के मूत्र में पोषक तत्वों की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। पशुओं से प्राप्त मूत्र की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण पोषक तत्वों की प्रतिशत कमी की पूर्ति स्वतः हो जाती है। मूत्र में नाइट्रोजन और पोटैशियम की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है, जबकि गोबर-जैसी ठोस सामग्री में फॉस्फोरस व कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है।

बिछावन सामग्री की संरचना

आमतौर पर रात के समय पशुओं के नीचे घास-फूस, पुआल छिलका, बुरादा, मिट्टी, राख आदि सामग्री बिछा दी जाती है। पशुओं के नीचे बिछाई गई इन सामग्रियों को बिछाली कहते हैं। बिछाली से पशुओं को बैठने में आराम मिलता है, साथ ही यह पशुओं के मूत्र को भली-भांति सोख लेती है, जिससे मूत्र बहकर बेकार नष्ट नहीं हो पाता है। मूत्र के माध्यम से गोबर-जैसे ठोस पदार्थ बिछाली के साथ अच्छी तरह सन जाते हैं, जिससे इसे खाद के गड्ढों में फैलाने

तथा भरने में सुविधा हो जाती है। गड्ढे में गोबर-मूत्र से सभी बिछाली सामग्री का विघटन और उससे प्राप्त खाद के गुणों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अधिक मात्रा में बिछाली का प्रयोग करने से खाद-सामग्री का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात असंतुलित हो जाता है। परिणामस्वरूप खाद सामग्री का विघटन बहुत धीरे-धीरे होता है। खाद सामग्री के समुचित विघटन के लिए यह नितांत आवश्यक है कि गोबर, मूत्र और बिछाली को इस अनुपात में मिलाया जाए कि इन सामग्रियों का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात लगभग 35-40 के आसपास रहे।

विभिन्न फसलों से प्राप्त भूसा और पुआल आदि बिछाली के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं, क्योंकि इनमें पेशाब, पानी आदि तरल सामग्री को सोखने और संचय करने की क्षमता अधिक होती है। साथ ही भूसे में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम के अलावा पौधों के लिए आवश्यक अन्य गौण तथा सूक्ष्मपोषक तत्व भी पाए जाते हैं। भारत में पशुओं की अपेक्षाकृत अधिक संख्या और भूसे का कम उत्पादन होने के कारण इसका इस्तेमाल बिछाली के लिए नहीं किया जाता है।

सारणी 4.2: विभिन्न पशुओं के मूत्र का संघटन

पशु प्रजाति	जल	कार्बनिक पदार्थ	खनिज पदार्थ	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटैशियम	कैल्शियम
घोड़ा	89.6	8.0	8.0	1.29	0.01	1.39	0.45
गाय, बैल	92.6	4.8	2.1	1.21	0.01	1.35	0.01
भैंस	81.0	-	-	0.62	अति अल्प	1.61	-
भेड़	86.3	9.3	4.6	1.47	0.05	1.96	0.16
सुअर	96.6	1.5	1.0	0.38	0.10	0.99	0.00

हमारे देश में मूंगफली के छिलके, धान की भूसी, सूखी पत्ती आदि

को जलाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जलाने की तुलना में बिछाली के रूप में इनका इस्तेमाल विशेष उपयोगी हो सकता है।

इन पदार्थों के अलावा लकड़ी के बुरादे का प्रयोग भी बिछाली के लिए किया जा सकता है। यद्यपि इसमें पेशाब सोखने की क्षमता बहुत अधिक होती है, परन्तु लिग्निन और राल (रेजिन) की मात्रा अधिक होने के कारण इसका विघटन बहुत मंद गति से होता है। इसलिए बिछाली के रूप में ऐसी सामग्री का प्रयोग विशेष उपयुक्त नहीं रहता।

वानस्पतिक पदार्थ के अभाव में पीट तथा साधारण मिट्टी का प्रयोग भी बिछाली के रूप में किया जाता है। पीट की जल शोषण क्षमता अधिक होती है। साथ ही इसके द्वारा तुरंत अमोनिया का भी अधिशोषण कर लिया जाता है। इसी कारण बिछाली के लिए पीट सर्वोत्तम समझा जाता है। इसकी जितनी भी मात्रा उपलब्ध हो सके उसका इस्तेमाल बिछाली के रूप में किया जाना चाहिए। बिछाली के रूप में मिट्टी का प्रयोग लाभप्रद नहीं होता, क्योंकि मिट्टी की नमी शोषण क्षमता कम होती है और पोषक तत्वों की मात्रा भी कम रहती है।

बिछाली के रूप में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न सामग्रियों में प्रमुख पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा तथा उनकी जल शोषण क्षमता संबंधी आंकड़े सारणी 4.3 में दिए गए हैं।

सारणी 4.3: बिछाली के रूप में प्रयुक्त वानस्पतिक सामग्रियों की सामान्य रचना (सूखी सामग्री का प्रतिशत)

वानस्पतिक सामग्री	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	जल शोषण क्षमता* (किग्रा)
गेहूं का भूसा	0.43	0.17	0.91	220
धान का पुआल	0.40	0.27	1.16	-
जई का भूसा	0.55	0.24	1.39	-
जौ का भूसा	0.44	0.19	1.07	-
ज्वार की झाड़न	0.40	0.23	2.17	-
बाजरे की झाड़न	0.65	0.75	2.50	-
सेम का भूसा	1.57	0.74	1.62	280
सूखी घास	0.28	0.08	0.32	-
सूखी पत्तियां (मिली-जुली)	1.51	0.18	0.57	200
धान का छिलका	0.45	0.25	0.45	-
पीट	0.65	0.09	0.12	600
मूंगफली का छिलका	1.75	0.45	1.50	-
बुरादा	0.24	0.02	0.45	435
मिट्टी	0.05	0.10	0.20	50

*वानस्पतिक सामग्री को 24 घंटे पानी में रखने पर उसके द्वारा सोखे गए पानी की मात्रा

गोबर की खाद तैयार करने की विधियां

हमारे देश में आज भी गोबर की खाद तैयार करने की जिस विधि का प्रचलन है, वह बहुत अच्छी नहीं है। आमतौर पर पशुओं के गोबर तथा पशुशाला व घर के सारे कूड़े-कचरे को गांव के बाहर एक गड्ढे में डालते रहते हैं। इस ढंग से खाद तैयार करने के लिए बहुत थोड़ी मात्रा में गोबर डाला जाता है, क्योंकि अधिकांश गोबर इधर-उधर में ही खप जाता है। चरने के लिए जाने वाले पशु, जो भी गोबर करते हैं वह तो प्राय: सारा ही बेकार चला जाता है। इसके अलावा पशुशाला से प्राप्त अधिकांश गोबर से उपले बना लिए जाते हैं। इसलिए गांवों में तैयार की जाने वाली खाद में गोबर की बहुत कम मात्रा उपयोग की जाती है। गोबर के साथ ही इसमें मूत्र की भी मात्रा बहुत कम होती है, क्योंकि नियमित रूप से मूत्र एकत्रित करने का समुचित प्रयास न होने के कारण पशुओं का लगभग सारा मूत्र बेकार जाता है। आमतौर पर पशुशाला में बिछाली का समुचित प्रयोग न होने के कारण कच्ची फर्श की मिट्टी ही सारा मूत्र सोख लेती है। कहीं-कहीं पशुशाला की मोरी को नाली द्वारा खाद के गड्ढे में मिला देते हैं, जिससे पशुओं का मूत्र खाद के गड्ढे में जाता रहे, परंतु यह मूत्र ठीक ढंग से पूरी खाद-सामग्री में मिल नहीं पाता। कभी-कभी किसान कच्चे पशुशाला की फर्श की मिट्टी खोदकर खाद के गड्ढे में डाल देते हैं परंतु इससे भी यथेष्ट लाभ नहीं हो पाता। पशुओं के नीचे बिछाली का प्रयोग करके मूत्र का संरक्षण किया जा सकता है। इस प्रकार मूत्र के समुचित प्रयोग से तैयार होने वाली खाद के गुणों में काफी सुधार हो जाती है।

साधारणत: किसान पशुओं के खाने के बाद बचे हुए चारे, पुआल आदि को भी रोजाना इकट्ठा करके खाद के गड्ढे में फेंक देते हैं। इसके अलावा फसलों के अवशेष, ठूंठ, तने आदि, छिलके, धान की भूसी, खरपतवार घर की राख तथा अन्य कूड़ा-कचरा गड्ढे में भरते जाते हैं। गड्ढे में डाली गई सारी खाद सामग्री ऐसे ही पड़ी रहती

है, उसे फैलाने तक का प्रयास नहीं किया जाता। खाद के गड्ढे का भी कोई निश्चित आकार नहीं होता। कभी-कभी तो उनकी गहराई इतनी अधिक होती है कि खाद ठीक प्रकार से सड़ भी नहीं पाती। खाद सामग्री के समुचित विघटन के लिए उचित नमी का होना आवश्यक है, परंतु इसके लिए भी प्रयास नहीं किया जाता। गड्ढा प्राय: खुला होता है। धूप और पानी से बचाने के लिए छाया का भी प्रबंध नहीं होता। इसलिए वर्षा के दिनों में निक्षालन द्वारा नाइट्रोजन का छीजन होना स्वाभाविक है, साथ ही गर्मी में अधिक तापमान के कारण अमोनिया गैस के रूप में नाइट्रोजन नष्ट हो जाती है। इसलिए स्पष्ट है कि हमारे देश में खाद तैयार करने का जो प्रचलित ढंग है, वह इतना खराब है कि खाद-सामग्री का विघटन ठीक से नहीं हो पाता। साथ ही इस विधि से तैयार की जाने वाली खाद से पोषक तत्वों का छीजन भी विभिन्न तरीकों से हो जाता है, परिणामस्वरूप इस प्रकार से तैयार खाद घटिया किस्म की होती है।

गोबर की खाद तैयार करने की उन्नत गड्ढा-विधि

गोबर की उत्तम खाद तैयार करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि खाद-सामग्री को उपयुक्त आकार के गड्ढों में नियमित रूप से भरा जाए। गड्ढे की गहराई एक मीटर से अधिक नहीं चाहिए। साधारणतया गड्ढे की चौड़ाई 2-3 मीटर और लंबाई आवश्यकतानुसार तथा गोबर, मूत्र और अन्य वानस्पतिक सामग्री की उपलब्धता के अनुसार निर्धारित करनी चाहिए। खाद का गड्ढा न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा। एक बड़े और अधिक लंबे-चौड़े गड्ढे की अपेक्षा कई छोटे-छोटे गड्ढे बनाना अधिक उचित रहता है। खाद का गड्ढा हमेशा ऊंचे स्थान पर बनाना चाहिए, ताकि गड्ढे में बरसात और नदी-नाले की बाढ़ का पानी न भर सके और निक्षालन द्वारा पोषक तत्वों का छीजन न हो सके। खाद तैयार करने के लिए बनाए गए गड्ढे की दीवारें पक्की ईंट की और फर्श पक्के सीमेंट का होना चाहिए, ताकि खाद के घुलनशील पोषक तत्व निक्षालन द्वारा रिसकर नीचे न चले जाएं और न ही पानी में घुलकर बाहर निकल सकें।

खाद सामग्री अर्थात् गोबर, मूत्र और वानस्पतिक पदार्थ का अधिकाधिक मात्रा में विशेष कुशलतापूर्वक उपयोग करना चाहिए। गोबर और मूत्र खाद के मुख्य अवयव होते हैं। इनमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम-जैसे प्रमुख पोषक तत्व भी काफी मात्रा में पाए जाते हैं। इसलिए अच्छी खाद बनाने के लिए गोबर और मूत्र का अधिक से अधिक और कुशलतम उपयोग करना चाहिए। गोबर का समुचित उपयोग तभी संभव होता, जब इसका प्रयोग ईंधन बनाने में न किया जाए। बिछाली के प्रयोग द्वारा मूत्र का संरक्षण भी भली-भांति किया जा सकता है।

गोबर की खाद तैयार करने की ट्रेंच (खाई) विधि

डॉ. सी.एन. आचार्य (1951) ने गोबर की खाद तैयार करने के लिए ट्रेंच या खाई विधि की सिफारिश की थी। इसलिए इसे आचार्य की खाद तैयार करने की विधि भी कहते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस विधि से खाद बनाने के लिए खाइयाँ, अर्थात् ट्रेंचे तैयार की जाती हैं। ट्रेंचों की लम्बाई 6.5 से 10 मीटर, चौड़ाई 1 से 1.6 मीटर, और गहराई एक मीटर रखी जाती है। ट्रेंच का आकार मवेशियों की संख्या पर निर्भर करता है (सारणी 4.4)।

पशुशाला के निकट बिछाली सामग्री अर्थात् पशुओं के चारे का अवशिष्ट, खेत और घर का सारा कूड़ा-कचरा, पौधों और तरकारियों के तने, डंठल, पत्तियां, खरपतवार, कूड़ा और राख आदि एकत्रित कर लिया जाता है। प्रत्येक शाम को इस सामग्री में से लगभग 2 किग्रा./पशु के हिसाब से बिछाली के रूप में प्रयोग किया जाता है। सामान्य रूप से बिछाली ऐसी जगह डाली जाती है, जहां पशुओं का मूत्र गिरता है। प्रतिदिन सुबह मूत्र से तर बिछाली को गोबर के साथ उठाकर भली-भांति मिलाकर खाद के लिए खोदी गई खाई में डाल दिया जाता है। खाई को 1-1 मीटर की लंबाई के हिस्सों में समान

रूप से एक तरफ से भरा जाता है और भरते-भरते जब इस हिस्से के ढेर की ऊँचाई जमीन की सतह से आधा मीटर तक हो जाए तो ढेर के ऊपरी भाग को गुंबद के आकार सा बना दिया जाता है। इसके बाद ढेर के ऊपर मिट्टी और गोबर का अच्छी तरह लेप लगा दिया जाता है।

साधारणत: एक खाई 3-4 जानवरों के मल-मूत्र से 3 महीने में भर पाती है। एक खाई भरने के बाद ही दूसरी खाई की भराई आरंभ करनी चाहिए। जब तक दूसरी खाई भरती है, तब तक पहली खाई की खाद सड़कर तैयार हो जाती है। इस प्रकार 3-4 पशु रखने वाले किसान के लिए 2 खाइयां पर्याप्त होती हैं। एक जोड़ी बैल से एक वर्ष में लगभग 10-12 टन खाद तैयार हो जाती है।

गोबर की खाद तैयार करने की बॉक्स विधि

साउथ केनारा में प्रचलित गोबर की खाद तैयार करने की बॉक्स विधि का वर्णन ए.सी. सैम्सन (1914) ने किया है। इस विधि से खाद तैयार करने के लिए पशुशाला के फर्श को जमीन की सतह से 2-3 फीट नीचे रखा जाता है। इस प्रकार खाद पशुशाला में ही तैयार की जाती है। पशुओं के नीचे रोजाना बिछाली आदि बिछा दी जाती है, जिससें पशुओं का मल-मूत्र बिछाली से ढकता जाता है। यह क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक पशुशाला की फर्श जमीन की सतह के बराबर नहीं आ जाती। इस विधि से तैयार खाद में गोबर और मूत्र की पूरी मात्रा का सदुपयोग हो जाता है।

खाद तैयार करने के लिए तीन विधियों अर्थात् बॉक्स विधि, गड्ढा विधि और ढेर विधि का तुलनात्मक अध्ययन डब्लू.एच. हैरिसन (1911) द्वारा बेलारी में किया गया। दो बैलों की एक जोड़ी से प्राप्त मूत्र-मल द्वारा वर्ष भर में तैयार खाद से संबंधित ऑकड़े सारणी-4.5 में दिए गए हैं।

सारणी 4.4: मवेशियों की संख्या के अनुसार ट्रेंच का आकार

मवेशियों की संख्या	लंबाई (मी.)	चौड़ाई (मी.)	गहराई (मी.)
2-5	6.5	1.0	1.0
6-10	8.0	1.2	1.0
11-20	10.0	1.4	1.0
20 से अधिक	10.0	1.6	1.0

सारणी 4.5: विभिन्न विधियों से तैयार खाद का पोषक तत्व मूल्यांकन (पौंड प्रति गड्ढा)

विधि	तैयार खाद का भार	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटेशियम	जैव पदार्थ
बॉक्स विधि	10140	90.7	56.2	155.3	3020
गड्ढा विधि	9830	55.5	46.3	70.0	1765
ढेर विधि	6070	60.0	44.5	59.8	2168

बॉक्स विधि में खाद-सामग्री का विघटन अवायुजीवी सूक्ष्म-जीवों द्वारा होता है, इसलिए इस विधि से तैयार खाद अपेक्षाकृत अच्छी होती है। गड्ढा विधि में वर्षा के पानी से खाद को सुरक्षित न रख पाने के कारण पोषक तत्वों का छीजन होता है, परिणामस्वरूप खाद के गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पंजाब में गोबर को खुले में ढेर करके खाद बनाने की विधि और गड्ढा-विधि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। खुले ढेर की तुलना में गड्ढा-विधि से तैयार खाद की कुल मात्रा के साथ ही नाइट्रोजन की मात्रा भी अधिक पाई गई।

गोबर कूड़े की खाद में प्रमुख और सूक्ष्मपोषक तत्वों की मात्रा का उल्लेख सारणी 4.6 में किया गया है, जिससे पता चलता है कि खाद के विभिन्न नमूनों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा में काफी अंतर पाया जाता है। अधिकांश खादों की घटिया किस्म के कारण उनकी उपयोगिता और गुण में हमेशा संदेह बना रहता है।

सारणी 4.6 : गोबर-कूड़े की खाद की सामान्य रचना और उसमें विभिन्नता

तत्व	प्रतिशत मात्रा		
	न्यूनतम	अधिकतम	औसत
1. कार्बनिक पदार्थ	8.54	56.60	31.67
2. खनिज पदार्थ	54.19	91.46	73.40
3. नाइट्रोजन	0.35	1.88	0.93
4. फॉस्फोरस	0.12	2.40	1.00
5. पोटैशियम	0.17	2.42	1.31
6. कैल्शियम	1.71	11.2	5.74
7. मैग्नीशियम	0.58	2.19	1.13
8. तांबा	1.89	8.06	4.63
9. जस्ता	2.41	10.81	5.26
10. बोरॉन	0.03	0.11	0.06
11. जैविक कार्बन	1.49	30.90	11.84
12. कार्बन: नाइट्रोजन अनुपात	4.5	18.30	9.50
13. पी-एच मान कम्पोस्ट	7.20	7.90	7.36

जैविक खादों में कम्पोस्ट का महत्वपूर्ण स्थान है। कम्पोस्ट तैयार करने के लिए गांव, शहर अथवा फार्म का कूड़ा-कचरा, जानवरों का बचा हुआ चारा गोबर-मूत्र, विभिन्न प्रकार के अन्य वानस्पतिक अवशेष, आदि की आवश्यकता पड़ती है। सड़ी खाद, मानव मल-मूत्र आदि का इस्तेमाल प्रवर्तक (स्टार्टर) के रूप में तैयार किया जाता है।

हमारे देश में दो प्रकार की कम्पोस्ट खाद तैयार की जाती है- पहले प्रकार की खाद तैयार करने के लिए कृषि फार्मों पर उपलब्ध कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों को उपयोग में लाया जाता है। इनमें खरपतवार, फसलों के डंठल और तने, पशुओं की जूठन, चारा आदि पशुओं का बिछावन गन्ना, कपास, मूंगफली आदि की पत्तियों, भूसा, जलकुंभी आदि सामग्रियां सम्मिलित हैं। जैव-पदार्थों से तैयार कंपोस्ट को फार्म कंपोस्ट भी कहते हैं। दूसरे प्रकार की कंपोस्ट शहरों के मल-मूत्र नालियों तथा सड़कों के कूड़े-कचरे आदि के इस्तेमाल से तैयार की जाती हैं। इन सामग्रियों से तैयार खाद को "टाउन कंपोस्ट" या "म्युनिसिपल कंपोस्ट" कहते हैं।

कंपोस्ट तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्रियों को मुख्यतया दो वर्गों में बांटा जा सकता है।

1. कार्बनिक अवशिष्ट पदार्थ–शहरी तथा ग्रामीण कूड़ा-करकट, फसलों के अवशेष आदि।
2. प्रवर्तक (स्टार्टर) पदार्थ।

जैसा पहले बताया जा चुका है कि कम्पोस्ट के लिए प्रयुक्त खाद सामग्री का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात 30:1 से अधिक होता है तो कार्बनिक पदार्थों का किण्वन तथा सड़न ठीक प्रकार से संपन्न नहीं हो पाता। इसलिए ऐसी सामग्री में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाकर इस अनुपात को कम किया जाए ताकि किण्वन और सड़न पैदा करने वाले जीवाणुओं को समुचित मात्रा में भोजन प्राप्त हो सके और जैव-पदार्थ ठीक प्रकार से सड़ सकें। प्रवर्तक के रूप में नाइट्रोजन प्रदान करने

वाले पदार्थों, मुख्यतया पशुओं के गोबर तथा मूत्र, मानव मल-मूत्र, सीवेज-स्लज, एक्टीवेटेड स्लज, कैल्शियम सायनामाइड, अमोनिया सल्फेट, सोडियम नाइट्रेट, एडको आदि पदार्थों का प्रयोग किया जाता है।

कंपोस्ट बनाने की विधियाँ

कंपोस्ट तैयार करने के लिए निम्नांकित उन्नत विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं:

1. इन्दौर विधि
2. बंगलौर विधि
3. मायादास विधि

इंदौर विधि

कंपोस्ट तैयार करने की इस विधि का आविष्कार हावर्ड और वाड ने इंस्टीट्यूट ऑफ इंडस्ट्री में किया। इसलिए इसका नाम "इंदौर विधि" पड़ा। इस विधि में गोबर का इस्तेमाल बहुत कम मात्रा में किया जाता है।

इस विधि द्वारा कम्पोस्ट तैयार करने के लिए 9.1 × 4.30 × 0.61 मीटर आकार के गड्ढों को दो-दो के जोड़ों में बनाया जाता है तथा एक जोड़े से दूसरे जोड़े की दूरी 3.7 मीटर रखी जाती है। गड्ढे के किनारे ढालू रखे जाते हैं। चूंकि इस विधि से तैयार की जाने वाली खाद के ढेर पर सुबह-शाम दोनों समय पानी का छिड़काव किया जाता है, इसलिए पानी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भूमि की सतह से 1.21 मीटर की ऊंचाई तक एक तालाब बना लिया जाता है। इस तालाब की क्षमता 145600.0 लीटर होती है। गड्ढों को भरने के लिए सबसे पहले कूड़ा-करकट और वानस्पतिक अवशिष्ट पदार्थों की 15 सेमी. मोटी तह लगाई जाती है। इसके ऊपर मूत्र से सनी मिट्टी और लकड़ी की राख का मिश्रण समान रूप से छिड़क

कर नम कर दिया जाता है। कूड़ा-करकट, मूत्र से सनी मिट्टी तथा लकड़ी की राख और गोबर की पर्त बिछाने का यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक ढेर की ऊंचाई जमीन की सतह से ऊपर न हो जाए। उपयुक्त नमी के लिए ढेर पर सुबह-शाम दोनों समय पानी के बाद ढेर धीरे-धीरे दब जाता है। किण्वन की क्रिया प्रारंभ होने के बाद ढेर धीरे-धीरे दब कर जमीन की सतह के बराबर आ जाता है। अब गड्ढे में प्रतिदिन पानी छिड़कने के बजाए सप्ताह में एक बार पानी छिड़का जाता है।

इस विधि से खाद तैयार करने के लिए खाद सामग्री की तीन बार पलटाई की जाती है। पहली पलटाई गड्ढा भरने के तीन सप्ताह बाद की जाती है। दूसरी पलटाई पहली के दो सप्ताह बाद की जाती है और दूसरी पलटाई के दो माह बाद तीसरी पलटाई की जाती है। पलटाई करते समय पूरी खाद सामग्री को अच्छी तरह मिला देना चाहिए। पलटाई करने से जीवाणुओं को उचित वायु मिल जाती है। उचित नमी बनाए रखने के लिए प्रत्येक पलटाई के समय खाद पर पानी अवश्य छिड़क देना चाहिए।

यदि खाद का सड़ना शीघ्र आवश्यक हो तो उसे गड्ढे से निकाल कर ढेर के रूप से इकट्ठा कर लेते हैं। ढेर का आकार 3.04 × 3.40 मी. का होता है और चोटी 2.74 × 2.74 मी. की होती है। ढेर की ऊंचाई 0.762 मी. से अधिक नहीं रखते। इस प्रकार लगभग एक माह के बाद सड़-गल कर खाद तैयार हो जाती है। इस अवधि में जीवाणुओं द्वारा वायुमंडल की नाइट्रोजन का भी यौगिकीकरण हो जाता है। वर्षा के दिनों में खाद-सामग्री की सुरक्षा के लिए छप्पर आदि का प्रबंध आवश्यक होता है। इस विधि द्वारा खाद तैयार करने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है और गोबर की आवश्यकता भी कम पड़ती है।

बंगलौर विधि

कंपोस्ट तैयार करने की इस विधि का विकास सी.एन. आचार्य

ने इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज, बंगलौर में किया और स्थान के नाम के आधार पर ही इस विधि को बंगलौर विधि कहते हैं। इस विधि द्वारा मुख्यतया टाउन या म्युनिसिपल कंपोस्ट तैयार की जाती है। इस विधि का कंपोस्ट तैयार करने के लिए भी किया जा सकता है। इंदौर विधि की तुलना में बंगलौर विधि द्वारा कंपोस्ट तैयार करना आसान होता है। इस विधि में प्रारंभ से अंत तक खाद-सामग्री गड्ढों के अंदर ही रहती है, इसलिए खाद को पलटने आदि की समस्या नहीं रहती। चूंकि खाद की पलटाई नहीं की जाती है, इसलिए बार-बार पानी छिड़कने की भी आवश्यकता नहीं होती है।

खाद बनाने की यह विधि शहरी क्षेत्रों में प्रयोग की जाती है। गड्ढे बनाते समय यह ध्यान देना चाहिए कि गड्ढों का स्थान आबादी से दूर पर हो ताकि कंपोस्ट की दुर्गंध का मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव न पड़े। इसके लिए यह भी आवश्यक होता है कि गड्ढे आबादी के पश्चिमी ओर न बनाए जाएं, क्योंकि साल में अधिकतर हवा पश्चिम से पूर्व की तरफ चलती है। गड्ढों का आकार शहर की आबादी पर निर्भर करता है। जनसंख्या के आधार पर गड्ढों के आकार निर्धारित किए गए हैं। संबंधित विवरण सारणी 4.7 में दिया गया है।

सारणी 4.7: बंगलौर विधि द्वारा कम्पोस्ट तैयार करने के लिए गड्ढों का आकार (मीटर)

जनसंख्या (हजारों में)	लंबाई	चौड़ाई	गहराई
10 से कम	4.5	1.5	1.0
10 से 20	6.1	2.0	1.0
20 से 50	9.0	2.04	1.0
50 से अधिक	10.0	2.5	1.0

आवश्यकतानुसार उपयुक्त आकार के गड्ढे एक ही कतार में 1.5 से 2.0 मीटर की दूरी पर समानांतर रूप में तैयार किए जाते हैं। गड्ढों की भराई के लिए सबसे पहले 15 सेमी. मोटी कचड़ा तथा वानस्पतिक अवशेषों की एक तह लगाई जाती है। इसके ऊपर मानव मल की 5 सेमी. मोटी तह लगाई जाती है। यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक खाद-सामग्री की पर्त जमीन की सतह से 3.1 सेमी. ऊंची न हो जाए। यदि मूत्र-सनी मिट्टी उपलब्ध हो तो प्रतिदिन मल की तह के ऊपर इस मिट्टी की एक पतली पर्त लगा देनी चाहिए। मिट्टी की इस पर्त के कारण हानिकारक गैसों और दुर्गंध का निकलना रुक जाता है। इस प्रकार नमी और नाइट्रोजन की हानि भी नहीं हो पाती है। पूरा गड्ढा भर जाने पर इसे अच्छी तरह मिट्टी अथवा गोबर से लिपाई करके बंद कर दिया जाता है। गड्ढे के ऊपरी भाग को गुम्बद की शक्ल का कर देना चाहिए ताकि पानी के माध्यम से घुलनशील तत्वों की हानि न हो सके। इस विधि द्वारा कम्पोस्ट तैयार करने में नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थ की हानि काफी कम होती है।

प्रारंभ में इस विधि में खाद का विघटन वायुजीवी सूक्ष्मजीवों द्वारा होता है, परंतु लगभग एक सप्ताह बाद जब खाद का ताप काफी बढ़ जाता है, तब वायुजीवी और अवायुजीवी दोनों ही प्रकार के सूक्ष्मजीव विघटन क्रिया में भाग लेते हैं। इस विधि से खाद तैयार होने में 5-6 महीने लग जाते हैं।

मायादास विधि

कंपोस्ट बनाने की इस विधि का विकास उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग द्वारा किया गया। साधारणत: किसानों द्वारा यही विधि अपनाई जाती है। खाद-सामग्री के रूप में वानस्पतिक अवशेष तथा पशुओं के गोबर व मूत्र का प्रयोग किया जाता है। गड्ढे की लंबाई और चौड़ाई आवश्यकतानुसार रखी जाती है, परंतु गड्ढों में पर्तें लगाते समय इस

बात का ध्यान रखा जाता है कि ढेर की ऊंचाई 0.91 मीटर से अधिक न हो। यदि कम्पोस्ट बनाने के लिए वनों वाले कोमल पौधों का प्रयोग किया जाता है तो खाद-सामग्री की पलटाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसके विपरीत लिग्निनयुक्त कार्बनिक पदार्थों का खाद सामग्री के रूप में प्रयोग करने पर कंपोस्ट की पलटाई आवश्यक हो जाती है। कंपोस्ट तैयार करने की इस विधि में अगल-बगल दो गड्ढे तैयार किए जाते हैं। एक गड्ढा जिसमें खाद बनाई जाती है, काफी बड़ा होता है। बगल में एक-एक छोटा गड्ढा होता है, जिसका संबंध बड़े गड्ढे से होता है। छोटे गड्ढे से बड़े गड्ढे में वायु का संचार होता रहता है। इस विधि में 6 से 8 महीने में खाद बन कर तैयार हो जाती है।

संश्लेषित कंपोस्ट

यांत्रिक फार्मों पर बड़ी मात्रा में उपलब्ध जैविक सामग्री के विघटन के लिए गोबर या तो बिल्कुल नहीं मिलता अथवा अत्यंत थोड़ी मात्रा में उपलब्ध होता है। उन फार्मों के लिए अजैविक नाइट्रोजन सामग्री अर्थात् नाइट्रोजनधारी रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल किया जाता है। नाइट्रोजनधारी उर्वरकों को मिलाकर जैव-सामग्री का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात 30:1 के करीब कर लिया जाता है, जो विघटन के लिए विशेष उपयुक्त माना जाता है। संश्लेषित कम्पोस्ट तैयार करने की हचिंसन तथा रिचर्ड्स द्वारा विकसित "एडको विधि" इसी सिद्धांत पर आधारित है।

संश्लेषित कंपोस्ट निम्नलिखित दो विधियों से तैयार की जाती है :

(क) अम्ल विधि

(ख) एक्टीवेटेड कंपोस्ट विधि

अम्लविधि

ऐसी खाद सामग्री जिसमें कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात साधारणतया

अधिक हो, उसका उपयोग इस विधि द्वारा खाद बनाने में किया जाता है। ऐसी खाद सामग्री में "एडको विधि" के अंतर्गत अमोनियम सल्फेट या यूरिया-जैसे नाइट्रोजनधारी उर्वरक मिलाने के बाद ही इन्हें गड्ढों में भरा जाता है। ये उर्वरक खाद सामग्री के कार्बन-नाइट्रोजन के अनुपात को कम करते हैं, जिससे इस खाद-सामग्री के विघटन की क्रिया में भाग लेने वाले सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। फलस्वरूप खाद-सामग्री का विघटन तेजी से होता है।

ज्ञातव्य है कि सूक्ष्म जीवों को अपने पोषण के लिए एक भाग नाइट्रोजन पर 30 भाग कार्बन की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए खाद-सामग्री के समुचित विघटन के लिए यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि उसमें कार्बन-नाइट्रोजन का अनुपात लगभग 30 हो। आमतौर पर 26 से 35 के मध्य का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयुक्त माना जाता है। इस अनुपात का मान आवश्यकता से कम होने पर अमोनिया के रूप में नाइट्रोजन ह्रास की संभावना बढ़ जाती है। इसके विपरीत कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात अधिक होने पर खाद सामग्री के विघटन में अधिक समय लगता है।

ऐसी खाद सामग्री, जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा कम हो उनका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात अधिक होता है जैसे गेहूं, धान, ज्वार, बाजरा के अवशेष, गन्ने की खोई, कपास और जूट के डंठल, बुरादा इत्यादि।

खाद सामग्री के समुचित विघटन के लिए उसमें नाइट्रोजन की मात्रा 1 से 2 प्रतिशत होनी चाहिए। साधारणतया भूसे आदि में नाइट्रोजन की मात्रा लगभग 0.4 प्रतिशत होती है, इसलिए शेष नाइट्रोजन की पूर्ति उर्वरकों के माध्यम से की जाती है। अम्लीय उर्वरक मिलाने से अम्लता उत्पन्न होने की संभावना रहती है, जिसे समाप्त करने के लिए 5 प्रतिशत की दर से चूना फैला दिया जाता है। सर्वप्रथम खाद-सामग्री को गड्ढों अथवा ढेरियों में फैला दिया जाता है। खाद में फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ाने के लिए सुपरफास्फेट (कभी-कभी हड्डी का चूरा या रॉकफास्फेट भी) का प्रयोग किया जाता है। खाद सामग्री लगभग चार महीने की अवधि में सड़-गल कर कम्पोस्ट बन जाती है।

एक्टीवेटेड कम्पोस्ट विधि

कम्पोस्ट तैयार करने की इस विधि के विकास के लिए फाउलर और रोगे ने सन् 1922 में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेस, बंगलौर में अपना कार्य प्रारम्भ किया। बाद में यह कार्य हरकोर्ट बटलर टेक्नालॉजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर में आगे बढ़ा। इस विधि द्वारा खाद तैयार करने के लिए प्रवर्तकों का इस्तेमाल किया जाता है। फाउलर का कहना है कि प्रवर्तकों में भारी संख्या में वे जीवाणु होने चाहिए जो खाद का विघटन करते हैं। गोबर, मूत्र, विष्ठा, सीवेज, एक्टीवेटेड स्लज आदि अच्छे प्रवर्तक माने जाते हैं।

प्रवर्तक तैयार करने की विधि

प्रवर्तक तैयार करने के लिए गाय के 38 किलोग्राम ताजे गोबर का पानी में पतला 'घोल' तैयार करते हैं। इस घोल से कूड़े-करकट के ढेर को गीला करते हैं और यह क्रिया तब तक जारी रखते हैं जब तक ढेर का ताप एक बार अधिकतम होकर नीचे न गिर जाए साधारणतया कूड़-करकट का ढेर 182 सेमी. लंबा और 60 सेमी. ऊंचा बनाया जाता है। कभी-कभी बीच-बीच में ढेर की पलटाई भी कर देते हैं। गोबर के घोल से ढेर में किण्वन प्रारंभ हो जाता है। सड़ने के बाद ढेर की सामग्री भुरभुरी तथा भूरे रंग की हो जाती है। इस प्रकार तैयार किए हुए विघटित पदार्थ को ही प्रवर्तक कहते हैं। इस प्रवर्तक का प्रयोग कंपोस्ट तैयार करने में किया जाता है। इसमें जीवाणुओं की संख्या भी काफी अधिक होती है।

रॉक फास्फेट और सूक्ष्मजीवों की भूमिका

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की 'जीवांश पदार्थ के विघटन' योजना के अंतर्गत किए गए अनुसंधान कार्य से पता चला है कि कंपोस्ट सामग्री में देशी रॉक फास्फेट मिलाने और नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने वाले एजोटोबैक्टर तथा फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने वाले

जीवाणुओं को प्रविष्ट करने (टीका लगाने) से खाद के ढेर में जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होने के साथ ही खाद में नाइट्रोजन की प्रतिशत मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। गौड़ (1978) द्वारा रिपोर्ट किए गए आंकड़े सारणी-4.8 में दिए गए हैं। यह वृद्धि 36 प्रतिशत तक होती है।

आमतौर पर शहरी कम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा ग्रामीण कम्पोस्ट की तुलना में अधिक पाई जाती है। शहरी कम्पोस्ट में सूक्ष्मपोषक तत्वों की मात्रा संबंधी आंकड़े सारणी-4.9 में दिए गए हैं। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि इन खादों का गुण आमतौर पर भलीभाँति तैयार की गई गोबर-कूड़े की बढ़िया खाद के गुणों के बराबर ही होता है।

सारणी 4.9: शहरी कम्पोस्ट खाद में सूक्ष्मपोषक तत्वों की मात्रा (सूखी सामग्री में पी.पी.एम. में)

सूक्ष्म पोषक तत्व	न्यूनतम मात्रा	अधिकतम मात्रा	औसत
तांबा	5.44	111.60	29.47
जस्ता	2.13	11.99	6.34
मैंगनीज	25.52	102.20	58.74
बोरॉन	0.04	0.27	0.13

खाद सामग्री का विघटन

खाद सामग्री अर्थात् गोबर, मूत्र और बिछाली का इस्तेमाल सीधे खाद के रूप में नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनमें अधिकांश पोषक तत्व ऐसे रूप में उपस्थित होते हैं, जिसे पौधे ग्रहण नहीं कर सकते। हां, मूत्र में उपस्थित पोषक तत्व पौधों को सुलभ होने की स्थिति में

85

सारणी 4.8: कृषि उपजातों से तैयार कम्पोस्ट खाद की रचना (प्रतिशत)

खाद सामग्री	जैविक सामग्री	राख	नाइट्रोजन	फास्फोरिक अम्ल	पोटाश	चूना	जैविक कार्बन	कार्बन नाइट्रोजन अनुपात
इंदौर विधि								
फार्म का मिश्रित कूड़ा-कचरा चूना, मिले-जुले सूखे वनस्पति अवशेष	28.64	71.35	0.87	0.59	2.22	1.62	12.89	14
इंदौर विधि:								
कपास की डंडिया	29.13	79.86	0.90	0.45	1.95	–	–	11
इंदौर विधि								
फार्म कम्पोस्ट	33.91	66.08	1.61	0.48	3.38	–	–	16
बंगलौर विधि:								
रागी का कूड़ा	78.52	–	1.24	–	–	–	37.32	26
सूखी पत्तियां	28.78	–	0.74	–	–	–	17.04	23

अवश्य होते हैं, परंतु अकेले मूत्र का प्रयोग व्यावहारिक दृष्टि से उतना सुगम नहीं प्रतीत होता। गोबर तथा बिछाली या अन्य प्रकार के कूड़े-कचरे का खाद के रूप में प्रयोग करने के लिए उनका सही रूप से विघटित होना आवश्यक होता है। खाद-सामग्री को खाद के गड्ढों या ढेरों में एकत्रित करने के बाद विघटन की क्रिया प्रारंभ हो जाती है। खाद-सामग्री में साधारणतया विलेय जैव-पदार्थ हेमीसेलुलोस, सेलुलोस, पेन्टोसान, स्टार्च, मोम, वसायुक्त पदार्थ, प्रोटीन आदि विभिन्न अनुपात में सम्मिलित रहते हैं। इन सामग्रियों की प्रकृति और संरचना का इनके विघटन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा विघटन की क्रिया नमी, हवा, तापमान, पी-एच. मान, सूक्ष्मजीवों की प्रकृति द्वारा विशेष रूप से प्रभावित होती है।

उल्लेखनीय है कि गोबर, मूत्र और बिछाली सामग्री में विलेय जैव-पदार्थ, हेमीसेलुलोस, पेन्टोसान, स्टार्च, मोम और वसायुक्त पदार्थ, प्रोटीन आदि विभिन्न मात्रा में पाए जाते हैं। खाद सामग्री के विघटन के दौरान उसके वसायुक्त पदार्थ और कार्बोहाइड्रेट खंडित होकर विलीन हो जाते हैं और नाइट्रोजनकारी यौगिक (प्रोटीन) खनिज तत्वों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। सबसे पहले विभिन्न अवयवों में से जल विलेय पदार्थों पर सूक्ष्मजीवों का आक्रमण होता है, इसके बाद क्रमशः हेमीसेलुलोस, पेन्टोसान और सेलुलोज का विघटन होता है। लिग्निन, मोम, रालें तथा कुछ प्रोटीनों पर सूक्ष्मजीवों का आक्रमण आंशिक रूप से ही हो पाता है। इन तमाम अवयवों में से शर्कराओं का विघटन सबसे पहले होता है। अन्त में कार्बन डाइऑक्साइड और जल बनते हैं। घुलनशील नाइट्रोजनधारी यौगिकों से अमोनिया, नाइट्राइट और नाइट्रेट का निर्माण होता है। प्रोटीन के जल अपघटन के फलस्वरूप उनमें से एमीनो अम्ल टूटते हैं, जिनसे बाद में अमोनिया का निर्माण होता है। वसायुक्त पदार्थ विघटित होकर कार्बनिक अम्लों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं जो बाद में कार्बन डाइऑक्टसाइड और जल में बदल जाते हैं। खाद सामग्री में उपस्थित सैलुलोस का विघटन वायुजीवी जीवाणुओं द्वारा कार्बन डॉइऑक्साइड और जल के रूप में हो जाता

है, परंतु खाद के गड्ढों के निचले हिस्सों में, जहां हवा का प्रवेश नहीं होता (अवायुजीवी अवस्था), वहां मीथेन, हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड, एसीटिक अम्ल, ब्यूटिरिक अम्ल और इसी प्रकार के अन्य पदार्थ बनते हैं। स्टार्च पर ब्यूटिरिक अम्ल और जीवाणु की क्रिया से थोड़ी मात्रा में एथिल एल्कोहल, 35 प्रतिशत ब्यूटिरिक अम्ल और 9 प्रतिशत एसीटिक अम्ल बनते हैं।

वसा और मोम का विच्छेदन दंडाणुओं, सूक्ष्म गोलाणुओं और अन्य जीवाणुओं द्वारा वातीय और अवातीय दोनों दशाओं में संपन्न होता है। इसके विघटन के फलस्वरूप ग्लिसरीन बनता है, जो कि पुनः विघटित होकर मेथिल एल्कोहल, ब्यूटिरिक, एसीटिक और फार्मिक अम्ल बनाता है।

खाद-सामग्री के विघटन के दौरान जीवाणु नए कोशिका जीवद्रव्य का संचय करते हैं और विघटन की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस आदि खनिज तत्वों का उपयोग करके अपने लिए नए नवीन ऊतक तैयार करते हैं। परिणामस्वरूप नए कार्बन और नाइट्रोजन युक्त यौगिकों का निर्माण होता है। विघटन क्रिया के फलस्वरूप खाद-सामग्री और बिछाली का सामान्य पीला या हरा रंग बदलकर भूरा हो जाता हैं अच्छी तरह सड़ी हुई खाद का रंग विशिष्ट काला होता है और भुरभुरी होती है। इसमें किसी प्रकार की दुर्गंध नहीं आती। खाद-सामग्री के विघटन के फलस्वरूप उत्पन्न काले, महीन और कोमल कोलाइडी कार्बनिक पदार्थ को ह्यूमस कहते हैं। ह्यूमस का निर्माण प्रोटीन और लिग्निन के संयोग से होता है।

खाद के निर्माण में खाद-सामग्री का एक बड़ा अंश विघटन के फलस्वरूप कार्बन डाइऑक्साइड, भाप और अन्य गैसों के रूप में परिवर्तित होकर बाहर निकल जाता है। खाद-सामग्री का पूरी तरह से विघटन हो जाने के बाद अनुमानतः 50 प्रतिशत कार्बन सामग्री कम हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त खाद का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात 20 से या इससे भी कम हो जाता है। यह साधारणतया खाद-सामग्री में

गोबर, मूत्र, बिछाली और अन्य वनस्पति सामग्रियों की रचना और मात्रा या अनुपात पर बहुत हद तक निर्भर करता है। विघटन पर सूक्ष्म जीवों की किस्म वायु संचार, नमी, ताप आदि कारकों का काफी प्रभाव पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि खाद के गड्ढों में हवा का संचार न होने की दशा में (अवातीय) खाद सामग्री का विघटन होने पर कार्बोहाइड्रेट का परिवर्तन हो जाता है। प्रोटीन से दुर्गंधयुक्त और गंधकयुक्त हाइड्रोजन, फॉस्फोरसयुक्त हाइड्रोजन, इंडोल और स्केटोल का निर्माण होता है। इसके साथ ही एमाइड, एमाइन, अमोनिया और नाइट्रेट-जैसे कुछ अन्य नाइट्रोजनी यौगिकों का अपचयन होता है, परिणामस्वरूप नाइट्रोजन गैस बनती है।

खाद के गड्ढों में हवा का संचार थोड़ी मात्रा में होने पर (आंशिक अवात परिस्थितियों में) खाद सामग्री के विघटन के दौरान विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होते हैं जो अमोनिया के साथ मिलकर अमोनिया के लवण बना देते हैं। इस प्रकार अमोनिया भाप बनकर उड़ने नहीं पाती और नाइट्रोजन की हानि घटती है। ऐसी परिस्थितियों में अमोनिया का नाइट्रीकरण नहीं हो पाता है। कार्बनिक सामग्री की हानि भी कम होती है।

उल्लेखनीय है कि वातीय दशा की तुलना में अवातीय दशा में कार्बन सामग्री और नाइट्रोजन का विघटन अधिक मात्रा में होता है। परिणामस्वरूप खाद भी अधिक मात्रा में बनती है।

गोबर की खाद या कम्पोस्ट से पोषक तत्वों की हानि

गोबर की खाद या कम्पोस्ट से होने वाली पोषक तत्वों की हानि को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. खाद तैयार करते समय होने वाली हानि।
2. खाद के भंडारण के दौरान होने वाली हानि।

खाद तैयार करते समय होने वाली हानि

जैसा कि ज्ञात है, गोबर की खाद के दो मूल अवयव होते हैं: ठोस भाग (गोबर की बिछाली) और तरल भाग (मूत्र)। नाइट्रोजन और पोटैशियम की कुल मात्रा का लगभग आधा भाग गोबर में तथा शेष आधा भाग मूत्र में पाया जाता है। लगभग संपूर्ण फॉस्फोरस (96 प्रतिशत) ठोस भाग अर्थात् गोबर में पाया जाता है। इन तीनों पोषक तत्वों के संरक्षण के लिए सर्वथा आवश्यक हो जाता है कि गोबर व मूत्र का किसी भी तरह क्षरण न होने दिया जाए और पशुओं द्वारा उत्सर्जित संपूर्ण गोबर व मूत्र का उपयोग खाद बनाने के लिए किया जाए। खाद तैयार करते समय होने वाली हानियों को निम्नांकित दो भागों में बांटा जा सकता है।

(क) खाद के द्रव भाग अथवा मूत्र की हानि

हमारे देश में पशुशालाओं की फर्श साधारणतया कच्ची होती है। इस प्रकार पशुओं द्वारा उत्सर्जित मूत्र कच्ची फर्श की मिट्टी द्वारा सोख लिया जाता है। साल के कुछ महीनों में पशुओं को खेत में बांधने की भी प्रथा है। इस प्रकार खेत में बंधे पशुओं का मूत्र खेत की मिट्टी द्वारा सोख लिया जाता है, परंतु शेष महीनों का मूत्र तो कच्ची फर्श ही पीती रहती है। इस तरह गोबर की खाद के लिए पर्याप्त मात्रा में मूत्र नहीं मिल पाता। मूत्र के समुचित संरक्षण के लिए पशुशाला की फर्श का पक्का होना आवश्यक होता है। इसके साथ ही पशुओं के नीचे रोजाना बिछाली का प्रयोग करना भी आवश्यक होता है।

मूत्र का उचित संचय न हो सकने के कारण नाइट्रोजन की गैस रूप में हानि हो जाती है। ज्ञातव्य है कि मूत्र में नाइट्रोजन यूरिया के रूप में पाया जाता है। यह यूरिया यूरिएस एन्जाइम और 'यूरोबैक्टर' जीवाणु द्वारा अमोनियम कार्बोनेट के रूप में परिवर्तित हो जाता है। चूंकि अमोनियम कार्बोनेट एक अस्थिर यौगिक है, इसलिए इसका

रूपांतरण पुनः अमोनियम हाइड्रॉक्साइड और आखिर में, अमोनिया गैस के रूप में हो जाता है। इस प्रकार यूरिया से बनी हुई अमोनिया गैस वायुमंडल में विलीन हो जाती है। इसलिए स्पष्ट है कि इस प्रकार से खाद बनाने से काफी मात्रा में मूत्र नष्ट होने से नाइट्रोजन की हानि स्वयं हो जाती है।

(ख) खाद के ठोस भाग अथवा गोबर की हानि

मूत्र की ही भांति पशुओं के गोबर की भी बहुत हानि होती है। भारत में गोबर का खाद के रूप में समुचित उपयोग न करके ईंधन के लिए कंडे या उपले बनाने में प्रयोग करते हैं। इसके अलावा पशु जब पशुशाला के बाहर चरागाह, मैदान आदि में चरने जाते हैं, तब ऐसी दशा में पशुओं द्वारा उत्सर्जित मल-मूत्र को भी एकत्रित करना प्रायः कठिन होता है, परंतु इस गोबर को एकत्रित करके यदि खाद के गड्ढों तक पहुंचा दिया जाए तो इस प्रकार होने वाली गोबर की हानि को कुछ हद तक बचाया जा सकता है।

खाद के संचयन के दौरान तत्वों की हानि

भारत में सामान्य रूप से पशुओं का गोबर, मूत्र और बिछाली आदि सामग्री प्रतिदिन सुबह पशुशाला से एकत्रित करके गांव के बाहर खाद तैयार करने के लिए बनाए गए गड्ढों में अथवा खुले मैदान में ढेरों के रूप में डाल देते हैं। इस तरह खाद-सामग्री कई महीने तक एकत्रित होती रहती है। इस अवस्था में खाद खुली रखी हुई रहती है यानि खाद को धूप और वर्षा से बचाने का कोई प्रयास नहीं किया जाता। इस प्रकार तैयार की जाने वाली खाद से पोषक तत्वों की हानि हो जाती है जैसे कि-

(क) निक्षालन द्वारा हानि

गोबर में 50 प्रतिशत नाइट्रोजन और फॉस्फोरस तथा 90 प्रतिशत पोटैशियम घुलनशील अवस्था में होता है। खाद या गोबर का ढेर बरसात

में खुला रहने के कारण निक्षालन द्वारा पोषक तत्वों की हानि हो जाती है। यह हानि तत्वों की मात्रा, भूमि के ढाल, वर्षा की मात्रा, आकार-प्रकार आदि पर निर्भर करती है। तत्वों की इस प्रकार से होने वाली हानि को पक्के गड्ढों का प्रयोग करके काफी हद तक रोका जा सकता है।

(ख) वाष्पीकरण द्वारा हानि

संचय के दौरान खाद के ढेर में मल-मूत्र में उपस्थित यूरिया या अन्य नाइट्रोजनधारी जैव-यौगिकों के विघटन के फलस्वरूप काफी मात्रा में अमोनिया गैस उत्पन्न होती है। जैसे-जैसे विघटन की प्रक्रिया में तेजी आती जाती है, उत्पन्न अमोनिया गैस की मात्रा भी बढ़ती जाती है। यह अमोनिया कार्बोनिक अम्ल के संयोग से अमोनियम कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट बनाती है। चूंकि अमोनियम कार्बोनेट एक अस्थिर यौगिक है, इसलिए अंत में इससे अमोनिया गैस की उत्पत्ति बड़ी आसानी से हो जाती है।

मूत्र और गोबर में उपस्थित यूरिया और अन्य नाइट्रोजनधारी यौगिक —सूक्ष्मजीवों द्वारा विघटन→ NH_3 अमोनिया ↑

अमोनिया के रूप में नाइट्रोजन की हानि अमोनियम कार्बोनेट की मात्रा, ताप तथा वातन दशा पर निर्भर करती है। अमोनियम कार्बोनेट का निर्माण अधिक मात्रा में होने के साथ ही अमोनियम के रूप में होने वाली नाइट्रोजन की हानि भी अधिक होती है। अधिक ताप और वातीय दशा में भी अमोनियम के रूप में नाइट्रोजन की हानि अधिक होती है।

गोबर गैस संयंत्र

भारत में गांवों की संख्या शहरों की अपेक्षा बहुत अधिक है। बहुत पुराने समय से गांवों में गोबर के उपले बनाकर ईंधन के रूप में

इस्तेमाल करने की परंपरा चली आ रही है। इसका कारण यह नहीं है कि किसान खाद के रूप में उसके महत्व को नहीं समझता, बल्कि उसके पास ईंधन के लिए अन्य कोई दूसरी सामग्री जलाने के लिए है ही नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि सारा गोबर जैविक खाद के उपयोग के रूप में इस्तेमाल होने लगे तो गांव वाले ईंधन के रूप में क्या जलाएंगे, और यदि लकड़ियां ही जलाई जाए तो देश के सीमित वनों की क्या स्थिति होगी। ये दोनों बातें ही इतनी महत्वपूर्ण और एक दूसरे से साथ जुड़ी हुई है कि एक के अभाव में दूसरी का पूरा होना कठिन लगता है। परन्तु गोबर गैस संयंत्र की योजना ने इन दोनों समस्याओं को सुगमता से हल कर दिया है। गोबर गैस संयंत्र से खाद और ईंधन दोनों बातें हल हो सकती हैं।

गोबर गैस संयंत्र एक सामान्य मशीन है। इस संयंत्र में हवा की अनुपस्थिति में जैविक अपशेषों से विशेष रूप से साग-सब्जियों की रेशेदार छीजनों से खमीर बनाकर गैस तैयार की जाती है। किसी भी प्रकार की सड़ने वाली जैविक सामग्री, जिससे खमीर तैयार हो सके, को इस संयंत्र में इस्तेमाल किया जा सकता है। गोपशुओं का गोबर, मानव-मल, मुर्गियों की बीट, रसोई घर की छीजन और कारखानों की छीजन, आदि अवायुवीय दशा में सर्वोत्तम पाई गई है।

गोबर गैस में मीथेन, कार्बन डाइऑक्साइड, कुछ नाइट्रोजन सल्फाइड और अन्य गैसें रहती हैं। बची-खुची सामग्री हल्के काले रंग की, तरल, गंधरहित और नाइट्रोजन बहुल ह्यूमस होती है। इसे खाद में इस्तेमाल किया जाता है।

गोबर गैस संयंत्र के लाभ

1. प्रचलित विधि द्वारा गोबर से खाद बनाने में लगभग 6-7 महीने का समय लगता है, जबकि गोबर गैस संयंत्र द्वारा 15-20 दिनों में खाद तैयार हो जाती है।
2. गोबर गैस संयंत्र से निकलने वाले गोबर (खाद) में 1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है, जबकि कंपोस्ट विधि द्वारा खाद में केवल 0.5 नाइट्रोजन होती है। ज्ञातव्य है कि कच्चे गोबर में भी नाइट्रोजन 0.75 प्रतिशत ही पाया जाता है। इसके अलावा गोबर गैस संयंत्र से निकले गोबर में जीवांश की मात्रा अधिक होती है। इन लाभों के अलावा गोबर गैस संयंत्र से तैयार खाद से वे सारे ही लाभ मिलते हैं, जो गोबर की खाद या कंपोस्ट से प्राप्त होते हैं।
3. गोपशुओं के गोबर से तैयार घूरे की खाद की तुलना में गोबर गैस की खाद देने से मिट्टी और फसल दोनों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। गोबर गैस के संयंत्र से प्राप्त खाद के प्रयोग से सभी फसलों से अधिक पैदावार प्राप्त होती देखी गई है। ज्ञातव्य है कि ये दोनों खादें समान मात्रा में ही दी गईं थीं।
4. गोबर गैस की खाद देने से मिट्टी में जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप मिट्टी में नाइट्रोजन का यौगिकीकरण अपेक्षाकृत अधिक होता है।
5. किसी भी अन्य खाद की तुलना में गैस संयंत्र से प्राप्त खाद के कण अधिक बारीक होते हैं, जिनका मिट्टी की भौतिक दशा पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है।
6. यह पाया गया है कि समान परिस्थितियों में, जिन फसलों में गोबर गैस प्लांट की खाद दी जाती है, अधिक सूखा बर्दाश्त करती है।

गोबर और अन्य जैव-सामग्री को गोबर गैस संयंत्र के डाइजेस्टर में डालकर सड़ाया जाता है। डाइजेस्टर एक प्रकार का छोटा और कम गहरा कुंआ होता है, जिसकी गहराई 12-20 फुट तक होती है। इस कुएं का व्यास 4-20 फुट तक हो सकता है। इसके अंदर एक दीवार होती है जो इसे अर्धचंद्राकार रूप में बांटती है। डाइजेस्टर के अंदर सीमेन्ट के दो पाइप लगे होते हैं। एक पाइप द्वारा गोबर और पानी का घोल अंदर डाला जाता है और दूसरे पाइप द्वारा सड़ा हुआ गोबर (खाद) बाहर निकलता है। खाद (स्लरी) को इकट्ठा करने के लिए गड्ढे बनाने चाहिए। गड्ढे प्रायः 4 × 3 फुट गहराई आकार के बनाए

जाते हैं। गोबर की कमी की स्थिति में पूरक सामग्री के रूप में अन्य जैविक सामग्रियों का इस्तेमाल गैस उत्पादन के लिए किया जा सकता है। सनई, ढैंचा, मूंगफली के छिलके, गन्ने की खोई-जैसी जैव-सामग्रियां, जिनमें हेमीसेलुलोस, सेलुलोस और प्रोटीन संतुलित मात्रा में हों, मीथेनबहुल गैस पैदा करने के लिए विशेष उपयुक्त होती हैं। इसके विपरीत शीरा और आलू-जैसी सामग्रियां, जिनमें शर्कराएं और मंड प्रचुर मात्रा में होते हैं अत्यधिक अम्लता पैदा करती हैं, जिससे गैस उत्पादन में बाधा पड़ती है। प्राप्त गैस में हाइड्रोजन और कार्बन डाइऑक्साइड के कैलोरी मान से काफी कम होता है। पेप्टोन और सूखे खून-जैसी सामग्री में प्रोटीन की प्रचुरता होती है। इनसे कार्बन डाइऑक्साइड के अलावा अन्य प्रकार की एक ज्वलनशील गैस पैदा होती है। संभवत: उसमें बड़ी मात्रा में नाइट्रोजन पैदा होती है। इस बात की पुष्टि करने के लिए अभी और खोज करने की आवश्यकता है।

भारत में किए गए अनुसंधान कार्यों से पता चला है कि गोबर न होने पर पूरक सामग्री के रूप में अन्य जैव-सामग्रियों का प्रयोग किया जा सकता है। एक परीक्षण में ताजे गोबर के साथ मंड, लकड़ी का बुरादा, गुलमोहर की पत्तियां, गेहूं का भूसा, मूंगफली का छिलका और गन्ने की खोई मिलाने से उसका किण्वन अच्छी तरह हुआ।

भारत में किए गए अनुसंधानों से पता चलता है कि गोबर में मौजूद कुल ठोस तत्वों में से 28 प्रतिशत चार सप्ताह में अपघटित हो जाते हैं। इस अवधि में उससे जो गैस पैदा होती है, वह प्रति किलोग्राम सूखे गोबर से 0.49 घनमीटर बैठती है। उल्लेखनीय है कि अवात अपघटन में जैविक सामग्री का लगभग 28 प्रतिशत अंश नष्ट होता है, जबकि खाद तैयार करने की सवात अपघटन विधि से उसका लगभग 50 प्रतिशत अंश नष्ट हो जाता है। इसलिए तुलनात्मक दृष्टि से गोबर गैस संयंत्र का दोहरा लाभ है। इसके जरिए अधिक मात्रा में बेहतर किस्म की खाद सुलभ होने के साथ-साथ घर में खाना पकाने के लिए ईंधन और रोशनी के लिए ज्वलनशील गैस भी प्राप्त होती है।

हरी खाद

अविच्छेदित हरे पादप अवशेषों या पौधों को मृदा की भौतिक दशा सुधारने तथा उर्वरता उन्नत करने हेतु मृदा में जोतना अथवा दबाना, हरी खाद देना कहलाता है।

भारत में सन् 1905 ई. में पूसा (बिहार) में इंपीरियल एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना के पश्चात् अनेक वैज्ञानिकों ने हरी खाद के प्रयोग पर कार्य प्रारंभ किया। सन् 1912 में वैज्ञानिक हावार्ड ने सर्वप्रथम भारतीय मृदाओं में हरी खाद प्रयोग करने की विधिवत् संस्तुति की। हरी खाद के लिए कुछ दलहनी व अदलहनी फसलों तथा हरी पत्तियों का उपयोग किया जाता है। दलहनी फसलों की जड़ों में गांठे होती हैं जिनमें एक वर्ग विशेष के जीवाणु रहते हैं जो वायुमंडल की तत्वीय नाइट्रोजन को पौधों की जड़ों में कार्बनिक नाइट्रोजन के रूप में स्थिर करने की क्षमता रखते हैं।

हरी खाद की फसलों के अंतर्गत वे फसलें आती हैं जिन्हें हरी अवस्था में ही खेत में जोतकर दबा दिया जाता है। हरी खाद से तात्पर्य उन पत्तीदार फसलों से हैं जिनकी वृद्धि शीघ्र हो तथा काफी मात्रा में हो, और इन्हें फूल-फल आने से पहले जोतकर और मिट्टी में दबा दिया जाता है जो बाद में भूमि में उपस्थित सूक्ष्म जीवों द्वारा विच्छेदित होकर ह्यूमस (कार्बनिक पदार्थ) तथा पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि करती है। इस प्रकार इन फसलों को भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाने के लिए उपयोग में लाने को 'हरी खाद देना' कहते हैं। इस विधि से मृदा की उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा स्थायित्व आता है। चूंकि गोबर की खाद पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होती तथा इसका स्थायी प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है, अत: हरी खाद के उपयोग को लवण-प्रभावित मृदाओं में अधिक महत्व दिया जाता है। हरी खादों के प्रयोग से मिट्टी में मुख्य रूप से नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है। कुछ हद तक फॉस्फोरस की उपलब्धता में भी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त क्षारीय मृदाओं

में हरी खाद के प्रयोग से पी.एच. मान में कमी आती है और मिट्टी के भौतिक गुणों पर भी लाभदायक प्रभाव पड़ता है।

हरी खाद देने की विधियां

मृदा प्रकार, हरी खाद की फसल की प्रकृति तथा जलवायु के अनुसार हरी खाद देने की विभिन्न विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं। इनमें से कुछ विधियां निम्नलिखित हैं:

हरी खाद देने की सीटू विधि

इस विधि के अंतर्गत हरी खाद की फसल को खेत में फूल आने की पूर्व अवस्था तक अथवा बाद तक उगाई जाती है तथा खड़ी फसल को उसी खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से दबा दिया जाता है। इस विधि में निम्नलिखित तकनीकें अपनाई जाती है:

ग्रीष्म ऋतु में बोई जाने वाली हरी खाद की प्रमुख फसल

इस विधि में रबी की फसल की कटाई तथा खरीफ की फसल की बुवाई के मध्यकाल से सनई, ढेंचा, पिलीपेसारा आदि दलहनी हरी खाद की फसल बोई जाती है तथा उन्हें जुलाई-अगस्त माह में वर्षा ऋतु में मिट्टी को जोतकर दबा दिया जाता है। ये फसलें धान की रोपाई से पूर्व खेत में गल-सड़ कर पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न कर देती हैं। यह विधि आंध्र प्रदेश, कनार्टक, उड़ीसा, केरल, चेन्नई, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश के धान पैदा करने वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक अपनाई जाती है।

मुख्य फसल के साथ हरी खाद की फसल बोकर

इस विधि के अंतर्गत मुख्य फसल के बाद हरी खाद की फसलें कतारों (लाइनों) में बोई जाती हैं तथा इन्हें 6-9 सप्ताह पश्चात् खेत में दबा दिया जाता है जबकि मुख्य फसल खड़ी रहती है। धान के

साथ ढैंचा, कपास तथा मक्का के साथ सनई, लोबिया, बागों अथवा गन्ने में बरसीम, मेंथी आदि फसलें हरी खाद के रूप में बोई जा सकती है। यह विधि उत्तर प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक आदि प्रदेशों में प्रयोग की जाती है।

परती भूमि पर हरी खाद की फसल बोकर

गेहूं अथवा सब्जियों वाली भूमि में खाली खेतों में सनई, ज्वार, लोबिया, ढैंचा आदि फसलें मुख्य फसलों से पूर्व बो दी जाती हैं। इस प्रकार खेतों में खरीफ की फसल नहीं बोई जा सकती है। हरी खाद की फसल को खेत में दबा देने के बाद कुछ अवधि के लिए खेत को परती के रूप में तैयार किया जाता है तथा बाद में रबी की फसल की बुआई कर दी जाती है। यह विधि पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में प्रयोग में लाई जाती है।

मुख्य फसल के रूप में हरी खाद की बुवाई

इसी विधि में ऊसर, बलुई व बेकार मृदाओं में हरी खाद की फसल, जैसे - ढैंचा, ग्वार, बरसीम आदि फसलें उगाई जाती हैं तथा फसल अवधि पूर्ण होने पर उन्हें मृदा में दबा दिया जाता है। उत्तर प्रदेश में ऊसर मृदाओं के सुधार हेतु यह विधि प्रयोग में लाई जाती है।

हरी खाद बनाने की सीटू विधि में बोई जाने वाली फसलों में निम्नलिखित गुण होने अनिवार्य हैं:

1. फसलें दलहनी होनी चाहिए जिनकी जड़ों में पर्याप्त संख्या में गांठे बनती हों ताकि वे पर्याप्त में मात्रा में मृदा में नाइट्रोजन स्थिर कर सकें।
2. फसलों की जल की आवश्यकता न्यूनतम होनी चाहिए।
3. कमज़ोर तथा बेकार भूमि पर अच्छी प्रकार उग सकें।

4. इनकी जड़ें मजबूत तथा गहरी होनी चाहिए ताकि अधोमृदा की कठोर सतह को सरलता से भेद सकें।
5. फसल की वानस्पतिक वृद्धि शीघ्र व अधिक होनी चाहिए तथा पौधों पर पत्तियां अधिक होनी चाहिए।
6. फसलों में रेशे तथा लिग्निन की मात्रा कम होनी चाहिए।
7. सभी प्रकार की मृदाओं में उग सकें तथा विषैला प्रभाव न उत्पन्न करें।

हरी पत्तियों से हरी खाद

इस विधि के अंतर्गत हरी खाद की फसलों को एक खेत में उगाकर दूसरी जगह मिट्टी में दबाया जाता है अथवा पेड़ों की शाखाएं व हरी पत्तियां एकत्रित करके खेत में दबाई जाती हैं। यह विधि प्रायः ऐसे क्षेत्रों में प्रयोग की जाती है जहां जल का अभाव होता है। वनों से प्राप्त पत्तियों को भी प्रयोग में लाया जा सकता है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल आदि की धान वाली मृदाओं में हरी पत्तियों वाली खाद प्रयोग में लाई जाती हैं।

हरी खाद की मुख्य-मुख्य फसलें

हरी खाद की सीटू विधि के लिए उपयुक्त फसलें

दलहनी फसलें: 1. सनई (सनहैम्प), 2. ढैंचा, 3. जंगली ढैंचा, 4. मूंग, 5. पिलीपेसारा, 6. ग्वार 7. लोबिया, 8. सैंजी, 9. खेसारी, 10, बरसीम, 11. रिजका, 12. मेथी, 13. सैंजी, 14. उर्द, 15. बोगा, 16. सोयाबीन, 17. कोलिंजी, 18. ल्यूपिन आदि।

अदलहनी फसलें: 1. गेहूं, 2. राई, 3. जौ, 4. तोरिया, 5. सरसों, 6. कुट्टक, 7. शलजम, 8. भांग, 9. ज्वार, 10. मक्का, 11. कोदों, 12. सूरजमुखी आदि।

हरी पत्तियों की हरी खाद हेतु उपयुक्त फसलें

1. *ग्लिसीरीडिया मैकूलाटा*, 2. *पोंगेमिया ग्लेबा*, 3. *केलोट्रोपिस जाइगेंटिया*, 4. *ट्रैफोसिया परपूरिया*, 5. *ट्रैफोसिया केंडिडा*, 6. *इंडीगोफेरा टेसमानिया* (नीलू), 7. *कैसिया तोरा*, 8. *स्पेसियोसा* (जंगली ढैंचा), 9. *आइपोमिया कार्निया*।

इनके अतिरिक्त और कुछ बड़े वृक्ष हरी पत्तियों की खाद के लिए उपयुक्त पाए गए हैं। ये हैं:

1. *पोंगेमिया पिन्नेटा* (करंज) 2. *टरमेलिया* आदि।

उत्तर प्रदेश तथा देश के अन्य भागों में प्रयुक्त होने वाली हरी खाद की फसलों को सारणी 4.10 में सूचीबद्ध किया गया है:

सारणी 4.10: हरी खाद की कुछ प्रमुख फसलें

नाम	ऋतु	औसत पैदावार (क्विं./हे.)	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	मृदा में नाइट्रोजन का योग (किग्रा./हे.)
सनई	खरीफ	212	0.43	75.0
ढैंचा	खरीफ	200	0.42	68.9
पिलीपेसारा	खरीफ	183	1.10	49.7
मूंग	खरीफ	180	0.53	34.5
लोबिया	खरीफ	150	0.49	50.3
ग्वार	खरीफ	200	0.34	55.3
सैंजी	रबी	286	0.51	120.0
खेसारी	रबी	123	0.54	54.9
बरसीम	रबी	155	0.43	54.2

हरी खाद की तकनीक

हरी खाद देने के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु हरी खाद की उत्तम तकनीक अमल में लाना आवश्यक है। हरी खाद उपयोग की उत्तम तकनीकों में निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं:

हरी खाद की फसल की बुवाई

भारत में भौगोलिक विविधताओं, जलवायु विविधताओं तथा जलवायु में भिन्नता के कारण हरी खाद की फसल की बुवाई करना कठिन होता है। सामान्यत: मानसून की प्रथम वर्षा के साथ ही हरी खाद की बुवाई उत्तम रहती है।

हरी खाद की फसल में सस्य क्रियाएं

आमतौर पर हरी खाद की फसल में सस्य क्रियाओं का विशेष महत्व नहीं होता है। बुवाई ठीक प्रकार से करनी चाहिए, बीज की दर अधिक रखी जानी चाहिए। इनको छांटकर बोया जाता है। हरी खाद की फसल में बुवाई के समय फॉस्फेट उर्वरक डालना अत्यधिक लाभदायक रहता है। इससे फसल की जड़ों का विकास अधिक होता है तथा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण भी अधिक होता है।

हरी खाद की फसल को मिट्टी में दबाना

हरी खाद के प्रयोग से अधिकतम लाभ के परिप्रेक्ष्य में इसको मिट्टी में दबाने की अवधि बहुत महत्वपूर्ण होती है। प्राय: फसल को बोने के 6-8 सप्ताह के अंदर फूल आने तक दबा देना चाहिए। फसल को दबाते समय उसमें पर्याप्त सरसता होनी चाहिए। देर से फसल को मिट्टी में दबाने पर उसमें रेशे अधिक बन जाते हैं जो अगली फसल के बोने तक विच्छेदित नहीं हो पाते हैं। मृदा का कार्बन नाइट्रोजन अनुपात भी बढ़ जाता है जिससे नाइट्रोजन की प्राप्यता में कमी हो जाती है। सनई को 8 सप्ताह से पूर्व 6 सप्ताह के पश्चात् मृदा में दबाने से अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

हरी खाद की फसल को दबाने व अगली फसल को बोने के बीच अंतराल

हरी खाद की फसल को मिट्टी में दबाने व अगली फसल को बोने के बीच पर्याप्त अंतराल होना चाहिए ताकि हरी खाद का अच्छी तरह विच्छेदन हो सके। कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन तापमान, मृदा, नमी तथा हरी खाद की फसल अवस्था पर निर्भर करता है। नम व गर्म जलवायु में विच्छेदन की क्रिया तीव्र गति से होती है। धान के खेतों में हरी खाद तेजी से सड़ती है। अत: हरी खाद को दबाने के तुरंत बाद खेत में धान की रोपाई की जा सकती है। गेहूं, गन्ना, आलू, सब्जियों आदि को हरी खाद पलटने के 6-8 सप्ताह बाद ही बोया जा सकता है।

हरी खाद के साथ अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग

हरी खाद के साथ अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग अधिक लाभदायक रहता है। हरी खाद बोते समय यदि कल्चर, फॉस्फेटिक उर्वरक तथा बोरॉन व मोलिब्डेनम का प्रयोग किया जाता है तो इसका प्रभाव अगली फसल पर इन उर्वरकों के सीधे प्रयोग की अपेक्षा अधिक होता है। इन उर्वरकों के उपयोग से नाइट्रोजन यौगिकीकरण में वृद्धि होती है। इस प्रकार पौधे अगली फसल की नाइट्रोजन की अधिकांश आवश्यकता को पूर्ण करने में सक्षम होते हैं। यदि मृदा की उर्वरता कम है तो हरी खाद पलटने के बाद भी अकार्बनिक उर्वरकों का उपयोग लाभदायक रहता है। फसल की आवश्यकता के लगभग आधे पोषक-तत्व हरी खाद में प्राप्त हो जाते हैं तथा शेष अकार्बनिक उर्वरकों से देना चाहिए।

हरी खाद का विघटन

जैविक सामग्री का विच्छेदन एक जैव-रासायनिक क्रिया है जो हरी खाद के मृदा में दबाने से अंत तक सतत रूप से होती रहती है। यह क्रिया पूर्ण रूपेण खेत में ही होती है, यद्यपि विच्छेदन अन्य कार्बनिक खादों के समान ही होता है क्योंकि पादप अवशेष में लगभग

वही कार्बनिक यौगिक होते हैं जो अन्य कार्बनी खादों में होते हैं। हरी खाद के विच्छेदन में नमी का विशेष महत्व है। पर्याप्त नमी होने पर खेत में विच्छेदन तीव्र गति से होता है।

हरी खाद प्रयोग के लाभ

1. मृदा में कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि होती है जिससे मृदा सूक्ष्म जीवाणु लाभान्वित होते हैं।
2. मृदा में नाइट्रोजन का योग होता है। भिन्न-भिन्न हरी खादों से 34-110 किग्रा./हे. तक नाइट्रोजन प्राप्त हो सकती है।
3. हरी खाद की फसलें मृदा की अधोसतह से पोषक-तत्वों का दोहन करके ऊपरी सतह तक पहुंचा देती हैं।
4. मृदा संरचना उन्नत हो जाती है तथा जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
5. जल अवशोषण में वृद्धि होती है जिससे सतह प्रवाह द्वारा जल का ह्रास कम होता है।
6. मृदा की अधोसतह में सुधार होता है।
7. हरी खाद की फसलों के प्रयोग से मृदा की ऊपरी सतह में पोषक तत्व संरक्षित रहते हैं।
8. इनके उपयोग से अगली फसल को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, आयरन आदि तत्वों की सुलभता में वृद्धि होती है।
9. मृदा का कटाव अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार मृदा की ऊपरी उपजाऊ सतह संरक्षित रहती है।
10. क्षारीय व लवणीय मृदाओं में सुधार होता है क्योंकि हरी खाद के विघटन से अनेक अम्ल उत्पन्न होते हैं जो मृदा की क्षारीयता को उदासीन करते हैं।

11. हरी खाद देने के बाद बोई जाने वाली फसल की उपज में वृद्धि होती है।

हरी खाद से हानियां

(1) हरी खाद की फसल प्रयोग में लाने से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में नमी की कमी हो जाती है जिससे अगली फसल में अंकुरण अवरुद्ध हो जाता है। अत: हरी खाद का प्रयोग असिंचित तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में लाभदायक नहीं होता है।

(2) खरीफ में हरी खाद की फसल बोने पर सामान्यत: खरीफ की एक फसल की हानि होती है जिसकी अगली फसल से पूर्ति नहीं हो पाती है।

(3) हरी खाद की फसल के उगाने में जितनी लागत आती है उससे कम लागत में अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जा सकता है। साथ ही साथ एक अतिरिक्त फसल उगाई जा सकती है।

(4) इसके प्रयोग से बीमारियां तथा कीड़ों के प्रकोप में वृद्धि होती है।

(5) पर्याप्त वर्षा न होने पर हरी खाद से होने वाला लाभ भी समाप्त हो जाता है।

आज के वैज्ञानिक कृषि युग में जब किसी खेत में एक वर्ष में कई-कई व्यापारिक फसलें उगाई जाती हैं, हरी खाद का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होता है। ऊसर मृदाओं के सुधार में तथा धान के क्षेत्रों में हरी खाद का प्रयोग व्यावहारिक है।

मिट्टियों पर हरी खाद का प्रभाव

हरी खाद के प्रयोग से मृदा पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं:

1. मृदा बनावट व संरचना पर अनुकूल प्रभाव।
2. मृदा नमी अवशोषण, अवधारण तथा संरक्षण में वृद्धि।

3. जैविक सामग्री व मृदा सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि।
4. पोषक-तत्वों, जैसे - नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कैल्शियम, पोटैशियम आदि तत्वों की मात्रा व सुलभता में वृद्धि।
5. मृदा पी-एच. में कमी।
6. ऊसर मृदाओं में सुधार।
7. सूक्ष्म पोषक तत्वों की अधिक सुलभता।

फसलों पर हरी खाद का प्रभाव

गेहूं

हरी खाद के प्रयोग से सिंचित क्षेत्रों में गेहूं की फसल में अच्छा लाभ प्राप्त होता है, जबकि बारानी क्षेत्रों में इससे कोई लाभ नहीं होता है।

धान

देश में किए गए प्रयोगों से स्पष्ट होता है कि हरी खाद प्रयोग से धान की फसल की उपज में 200 से 350 किग्रा./हे. की वृद्धि होती है। दक्षिणी राज्यों में धान में हरी खाद के उपयोग से अपेक्षाकृत अधिक लाभ होता है।

गन्ना

उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में सनई, ढैंचा, ग्वार, लोबिया, मेंथी की हरी खाद के प्रयोग द्वारा गन्ने की पैदावार में 7.9 टन/हे. वृद्धि हुई। दोनों ही राज्यों में गन्ने की फसल पर हरी खाद का अच्छा प्रभाव देखा गया है।

कपास

असिंचित कपास पर किसी राज्य में हरी खाद का प्रभाव देखा गया

है। कर्नाटक व तमिलनाडु में सिंचित कपास पर हरी खाद के प्रयोग से पैदावार में 100-125 किलोग्राम की वृद्धि प्राप्त की गई। अन्य राज्यों में इसका प्रभाव अधिक नहीं हुआ।

आलू

आलू में हरी खाद के प्रयोग से उपज में खास वृद्धि नहीं होती। उत्तर प्रदेश में यह वृद्धि बहुत कम होती है।

हरी खाद का संचित व अपशिष्ट प्रभाव

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली व देश के अन्य संस्थानों द्वारा सन् 1908 से 1962 तक किए गए प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ है कि हरी खाद के प्रयोग का कोई विशेष संचित प्रभाव नहीं होता है। उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्रों में यह प्रभाव बिल्कुल नहीं होता है।

धान, गन्ना व गेहूं की फसलों पर किए गए परीक्षणों से हरी खाद के अवशिष्ट प्रभाव के संकेत मिलते हैं। हरी खाद का अवशिष्ट प्रभाव आमतौर पर हल्का और कम होता है और अधिकांशत: एक वर्ष तक रहता है।

हरी खाद की सीमाएं

हरी खाद के प्रयोग व प्रचलन में निम्नलिखित बाधाएं हैं:

1. सिंचाई जल की कमी-असिंचित क्षेत्रों में हरी खाद का प्रयोग अलाभकारी होता है।
2. सघन खेती, कृषि कार्यक्रम में इसके प्रयोग से एक फसल की क्षति होती है।
3. हरी खाद पलटने के लिए आवश्यक यन्त्रों का अभाव भी एक बाधा है।

4. मानसून की अनिश्चितता के कारण यह अलोकप्रिय होती जा रही है।
5. कभी-कभी कृषकों को आवश्यकतानुसार हरी खाद की फसलों के उन्नत बीज उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।
6. हरी खाद की वैज्ञानिक खेती का कृषकों को अल्प ज्ञान होना।
7. अगली फसल में खरपतवारों की वृद्धि होना।
8. लोकप्रिय फसल-चक्रों में हरी खाद की फसल का समायोजित न होना जिसके कारण अगली फसल की बुआई में देरी हो जाना।
9. अकार्बनिक उर्वरकों का अधिक लोकप्रिय होना।

यही कारण है कि विभिन्न प्रदेशों के कृषि विभागों द्वारा काफी प्रचार करने के बावजूद इसका प्रयोग अभी कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित है।

वर्मी कंपोस्ट

वर्मी कम्पोस्ट एक बहुपयोगी खाद है जो केंचुओं द्वारा कचरे आदि को पचाकर उनकी विष्ठा से प्राप्त होती है। रासायनिक उर्वरकों में सिर्फ एक या दो ही पोषक तत्व पाए जाते हैं, जबकि वर्मी कंपोस्ट में गोबर की खाद से 5 गुना नाइट्रोजन, 8 गुना फॉस्फोरस, 11 गुना पोटाश एवं 3 गुना मैग्नीशियम पाया जाता है। प्रत्येक घर के कचरे से केंचुओं द्वारा खाद (वर्मी कम्पोस्ट) तैयार की जा सकती है। इस प्रकार हम कचरे को बदलकर पर्यावरण प्रदूषण को कम कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त शहरों में गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट की उपलब्धता भी एक समस्या है। इस समस्या के निदान के लिए बागवानी में रुचि रखने वाले व्यक्ति रासायनिक खादों का प्रयोग करते हैं। रासायनिक खादों के अत्यधिक प्रयोग करते रहने से भूमि की उर्वरता में ह्रास होता है। इस प्रकार लघु स्तर पर प्रत्येक परिवार द्वारा स्वयं की आवश्यकतानुसार वर्मी कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु केंचुओं की सामान्यतया प्रयोग में लाए जाने वाली जातियां हैं: *यूड्रिलस यूगेनी* (अफ्रीकन जाइन्ट कृमि), *अम्ब्रिकस रूबेलस, आइसीनिया एन्ड्रेई* (लाल कृमि), *आइसीनिया फोईटिडा, पेरिओनिक्स एक्जकेवेट*, (उष्ण कृमि), *पेरीओनिक्स आरबेरिकोला, लैम्पिटो मॉरिशी, ड्राविडा कोलाई, ड्राविडा विलसी* इत्यादि।

वर्मी कंपोस्ट तैयार करने की विधि

वर्मी कंपोस्ट स्वयं तैयार करने के लिए प्लास्टिक की ढक्कन वाली बाल्टी, कनस्तर या पुराने मटके को काम में लाते हैं। यदि जमीन की कमी न हो तो बगीचे के एक कोने में छायादार स्थान पर 2 मी. × 0.3 मी. का गड्ढा बनाकर वर्मी खाद तैयार कर सकते हैं। इसके बनाने की विभिन्न विधियां निम्न प्रकार से हैं-

प्लास्टिक की बाल्टी में वर्मी कंपोस्ट बनाना

बाजार में उपलब्ध बड़ी प्लास्टिक की बाल्टी (ढक्कन सहित) काम में ली जा सकती है। ढक्कन में दो गोलों में चार-चार छिद्र 5 मिमी. व्यास में करें। इन छिद्रों से हवा के आवागमन से केंचुओं को श्वास क्रिया में सहायता मिलेगी। बाल्टी के पेंदे से 75 मिमी. व 100 मिमी. ऊंचाई पर भी दो वृत्तों में चार-चार छेद जल निकास हेतु करें, बाल्टी में सबसे नीचे छोटे-छोटे कंकड़ (10-12 मिमी. व्यास) बिछाकर उसके ऊपर लकड़ी के टुकड़े के ऊपर रसोई (किचन) का कचरा (सब्जी आदि के छिलके) व पौधों की पत्तियां बिछा दें। यह सतह 50-75 मिमी. की रखे। इसके ऊपर 200 केंचुए डाल दें एवं पुनः रसोई का कचरा भर दें। सबसे ऊपर हल्की सतह से मिट्टी फैला दें, ताकि दुर्गंध न आए। ध्यान रहे कि बाल्टी लगभग 50 मिमी. खाली रहे क्योंकि रसोई के कचरे में पानी की मात्रा अधिक होती है। अतः ऊपर से पानी उसी दशा में डाले जब मिश्रण सूखने लगे। लगभग 30% नमी रखना आवश्यक है। बाल्टी को छायादार जगह पर रखें। केंचुओं की अच्छी वृद्धि व विकास 26-35° से. तापमान पर होता है। खाद बनाने के लिए चाय की पत्ती, सब्जी के टुकड़ों, फलों के छिलके, कागज

के टुकड़े, बचा हुआ खाना, सूखी पत्तियां, लॉन की घास आदि को डाला जा सकता है। जल्दी खाद तैयार करने के लिए बारीक टुकड़ों का प्रयोग करें। बीच में खाद बनकर तैयार हो जाएगी। अच्छी तरह से तैयार हुई खाद दुर्गंध रहित, भूरी रंग की एवं बिखरी हुई होगी। इसे 12 मिमी. जाली वाली छलनी में छान लें। बचा हुआ मिश्रण पुन: खाद बनाने में सक्रिय पदार्थ का काम देगा। एक परिवार के लिए तीन बाल्टियां काफी रहेगी ताकि खाद बनाने का क्रम लगातार चलता रहे।

टिन के कनस्तर में वर्मी कंपोस्ट तैयार करना

इस विधि में टिन के कनस्तर जिसकी धारिता 15 किग्रा है, को वर्मी खाद बनाने के काम में लेते हैं। ढक्कन के ऊपर गोलाकार छिद्र प्लास्टिक की बाल्टी की भांति ही बनाएं, जल निकास के लिए भी छिद्र बनाकर रखें। पेंदे में कंकड़, बुरादा व रेत के ऊपर जाली रखें और उस पर रसोई का कचरा। उपरोक्त विधि में भरकर वर्मी खाद तैयार की जा सकती है। एक परिवार के लिए 4-5 कनस्तरों में अनवरत रूप से खाद तैयार की जा सकती है। एक कनस्तर में 100-150 केंचुए काफी रहेंगे। ये केंचुए तीव्र गति से बढ़ते हैं। 6 माह से 1 वर्ष में एक केंचुआ 247 केंचुए तैयार कर सकता है। शीघ्र खाद बनाने वाले केंचुए (*आइसिनिया फीटिडा* जाति) प्राकृतिक खाद बनाने वाले विक्रेताओं से प्राप्त किए जा सकते हैं।

मटके में वर्मी कम्पोस्ट तैयार करना

यह तरीका सबसे आसान और सस्ता है। अगर पुराने मटकों में 1-2 छिद्र हो गए हों, तब भी काम में ले सकते हैं। चूंकि मटकों में पानी का निकास रंध्रों द्वारा होता रहता है अत: इनमें छिद्र करने की आवश्यकता नहीं है। सिर्फ पेंदे में एक-दो छिद्र करके उस पर नारियल की जूट की जाली बिछाकर रख दें। पेंदे में कुछ कंकड़ 4-4 मिमी. सतह तक बिछा दें। इसके ऊपर कचरा डाल दें और 100-150 केंचुए भी छोड़ दें और ऊपर से भी कचरा डालते रहें। मटके का ढक्कन हमेशा लगाकर रखें और ढक्कन से 50 मिमी. स्थान श्वसन

हेतु खानी छोड़ दें। 4-5 मटकों द्वारा अनवरत रूप से खाद बनाई जा सकती है। मटके ठंडे भी रहते हैं अत: केंचुओं के विकास एवं वृद्धि के लिए समुचित वातावरण रहता है।

लकड़ी के बॉक्स अथवा गत्ते बॉक्स में वर्मी कंपोस्ट बनाना

लकड़ी के पुराने पैकिंग बॉक्स अथवा गत्ते के बॉक्स (60 × 5 × 50 सेमी.) में उपरोक्त विधि द्वारा वर्मी खाद तैयार की जा सकती है। इस बॉक्स के पेंदे में पोलिथीन बिछाकर खाद बनाएं ताकि बॉक्स जल्दी सड़कर खराब न हो। पानी के निकास के लिए पेंदे में 4-6 छिद्र रखें। बॉक्स को कचरे से भरकर टाट से ढककर रखें। पानी टाट के ऊपर ही देते रहें। एक बॉक्स में 200 केंचुएं पर्याप्त रहेंगे। डिब्बे को छायादार जगह में रखें।

उपरोक्त सभी विधियों में यदि राख उपलब्ध हो तो जरूर डालें। राख आंरभ में अम्लीय मिश्रण को समायोजित रखेगी, साथ ही खाद में पोटाश की मात्रा भी बढ़ेगी। अगर नीम की पत्तियां उपलब्ध हो सकें तो वे भी अवश्य डालें, ताकि दीमक नहीं पनप सके। इस तरह आप वर्मी खाद स्वयं तैयार कर अपने बगीचे/बगिया हेतु पोषक तत्वों की पूर्ति प्राकृतिक रूप में कर सकेंगे। वर्मी खाद बनाते समय हाथ में दस्तानों का उपयोग करें। सभी प्राकृतिक खादों में टिटनेस के कीटाणु हो सकते हैं और यदि हाथ कहीं से कटा हुआ हो तो वे कीटाणु नुकसान पहुंचा सकते हैं।

वर्मी कंपोस्ट : उपयोग खाद

प्रकृति ने केंचुओं में कचरा पाचन की अद्भुत क्षमता प्रदान की है। केंचुओं की विष्टा बहुपयोगी एवं संपूर्ण खाद है। रासायनिक उर्वरकों में सिर्फ एक या दो ही पोषक तत्व पाए जाते हैं जबकि वर्मी खाद में गोबर की खाद की तुलना में 5 गुना नाइट्रोजन, 8 गुना फॉस्फोरस, 11 गुना पोटाश और 3 गुना मैग्नीशियम पाया जाता है। साथ ही इस खाद में एक्टीनोमाइसिटीज द्वारा एंटीबायोटिक पदार्थ सृजन होता है।

फलतः इस खाद के उपयोग से पौधों में कीट एवं बीमारी से बचाव की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है। वर्मी खाद (कास्टिंग) पर एक विशेष प्रकार की पैराट्रोपिक झिल्ली होती है, जिससे जल के वाष्पीकरण में कमी होती है। केंचुओं की आंतों में पीएच. मान, तापमान तथा ऑक्सीजन की समुचित मात्रा होने से सूक्ष्मजीवी प्रक्रिया आस-पास की भूमि की 1,000 गुना अधिक होती है। अतः खाद बनाने की प्रक्रिया शीघ्र संपन्न हो जाती है। यह खाद खरपतवार बीजरहित होती है।

सारणी 4.11: विभिन्न प्राकृतिक खादों में पोषक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व	उपलब्धता (%)			
	गोबर की खाद	नाडेप खाद	गोबर गैस खाद	वर्मी कंपोस्ट
नाइट्रोजन	0.4-1.0	0.5-1.5	1.8-2.5	2.5-3.0
फॉस्फोरस	0.4-0.8	0.5-0.9	1.0-1.2	1.5-2.9
पोटाश	0.8-1.2	1.2-1.4	0.6-1.8	1.4-2.0

वर्मी कंपोस्ट के लाभ

भूमि की उर्वरता

वर्मी कंपोस्ट भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ती है। यह भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने में लाभदायक है, जैसे-भूमि के वायु संचार, जल-धारण क्षमता, भूमि में रासायनिक उर्वरकों की उपयोग क्षमता, नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु की सक्रियता और जीवाश्म पदार्थ की क्रिया की दर को बढ़ाता है। वर्मी कंपोस्ट अम्ल (ह्यूमिक एसिड) सूक्ष्म पोषक तत्वों की अधिकता को बढ़ाता है। निक्षालन द्वारा विशेष नाइट्रोजन के उर्वरकों की हानि भूमि में काफी हद तक कम हो जाती है। ये भूमि की विषाक्तता को कम करता है और मृदा पी-एच. मान

को स्थिर रखता है। इसके अतिरिक्त जल व सिंचाई द्वारा होने वाले मृदा क्षरण को रोकता है।

पादप पोषण

वर्मी कंपोस्ट विटामिन्स, एन्जाइम व वृद्धि हार्मोन्स (ग्रोथ हार्मोन्स) जैसे ऑक्सिन और जिबरेलिन्स जो पौधों एवं सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को रोकते हैं। यह पौधों के लिए पूरी आवश्यकतानुसार सूक्ष्म तत्व और पौधे की शुरू की आवश्यकता हेतु नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश व गन्धक की पूर्ति करता है। कम्पोस्ट में 1.5-2.5% पोटाश होता है। वर्मी-कल्चर फार्मिंग पौधों को संतुलित पोषक तत्व प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त यह सिंचाई की जरूरत को कम करती है व पौधों के लिए रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशी इत्यादि के लिए निर्भरता कम हो जाती है और केंचुओं, पौधों और जीवाणुओं के बीच परस्पर सहयोग बना रहता है।

दूसरी ओर रासायनिक उर्वरकों के अपेक्षाकृत वर्मी कम्पोस्ट आर्थिक रूप से लाभकारी है। यह भूमि की उर्वराशक्ति, जल धारण क्षमता, जल धारण क्षमता और भूमि की उपयोगिता को बढ़ाता है। इसलिए यह टिकाऊ कृषि के लिए बहुत ही लाभकारी तत्व है। यह एकीकृत उर्वरक प्रबंध का भी एक मुख्य अवयव है और उन क्षेत्रों में जहां रासायनिक उर्वरकों के लिए उपयोग के बावजूद उत्पादन घट रहा है, मुख्य भूमिका अदा कर सकता है। इसलिए, वर्मी कंपोस्ट के साथ रासायनिक उर्वरकों का निर्णायक उपयोग भूमि की गुणवत्ता को बनाए रखने में मददगार है।

एक आत्मनिर्भर परिवार के लिए घरेलू बगीचे में 4-5 फलदार पौधे (नींबू, केला, अनार, अमरूद, आम, पपीता आवश्यकता, जलवायु के अनुरूप 3-4 फूल व सुगंधित पौधों को गमलों और 10 वर्ग मीटर क्यारी में सब्जियां उगाना लाभप्रद रहता है। अगर क्यारियों के लिए जगह की कमी है तो गमलों में ही सब्जियों, जैसे पोदीना, धनियां, मिर्च, सलाद आदि उगाकर पारिवारिक आवश्यकता बहुत सीमा तक पूरी

की जा सकती है। आप अपनी बगिया में सब्जियां उगाकर स्वास्थ्य संबंधी खतरों से भी बचे रहेंगे। घरों की छतों पर भी सब्जियां उगाना महानगरों में बढ़ता है। घरेलू बागवानी की ऐसी अभिरुचि आत्मसंतोष के साथ पर्यावरण संवर्धन में भी लाभदायक है।

वर्मी खाद तैयार करने के लिए घरेलू कचरे (रसोई, लॉन की कटिंग, बागवानी की पत्तियां) का उपयोग किया जा सकता है। हमारे देश में घरेलू कचरा लगभग 500 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन अनुमानित है। इस कचरे में कार्बनिक पदार्थ 60% आंका गया है। इस तरह प्रति पैदावार 1.5 किग्रा. घरेलू कचरा प्रतिदिन प्राप्त हो सकता है। वर्ष भर में यह मात्रा लगभग 5 क्विंटल बैठती है। लगभग 1,600-1,700 केंचुएं इस कचरे को प्रतिदिन पचाकर वर्ष में 2.5-2.75 क्विंटल वर्मी खाद तैयार कर सकते हैं। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के बाद दो क्विंटल वर्मी कम्पोस्ट बेचकर 500 रुपए की आर्थिक आमदनी हो सकती है। इस प्रकार वर्मी खाद तैयार करना एक लाभप्रद पेशा है।

खलियां

तिलहनों से तेल निकालने के बाद बीजों का जो तेल रहित भाग या छुंछ बच रहती है उसे खली कहते हैं। पर जैसा कि सारणी-4.12 में बताया गया है, खली में भी तेल का थोड़ा-सा अंश तो बना ही रहता है। खली में तेल की मात्रा तेल निकालने की विधि के अनुसार कम या अधिक हो सकती है।

खलियों में नाइट्रोजन और थोड़ी-सी मात्रा में फॉस्फोरस और पोटाश भी पाए जाते हैं। पर फिर भी उनका खाद गुण मुख्यत: उनके नाइट्रोजन अंश पर ही निर्भर है। खलियों में नाइट्रोजन की मात्रा भी भली-भांति तैयार की गई गोबर-कूड़े की खाद और कम्पोस्ट खाद से मिलने वाली नाइट्रोजन की मात्रा से बहुत ज्यादा होती है। खली की किस्म, उसमें मौजूद तेल का अंश और छिलके की मात्रा के अनुसार उसमें नाइट्रोजन का अंश 3% से 9% तक होता है। यदि तेल निकालने से पहले बीजों का छिलका उतार दिया जाए तो उनसे प्राप्त खली छिलके सहित बीजों से मिली खली की तुलना में अधिक नाइट्रोजन वाली होती है।

सारणी 4.12 : तेल निकालने की विभिन्न विधियों से प्राप्त खलियों में तेल का अंश

तेल निकालने की विधि	तेल (प्रतिशत)
देशी धान	10-15
हाइड्रोलिक प्रेस	8-10
एक्सपेलर	5-8
घोलक (सोलवेन्ट)	1-2

खलियों का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात प्राय: बहुत कम होता है। अधिकांशत: यह 3 से 15 तक होता है। इसलिए खलियों की नाइट्रोजन बहुत जल्दी नाइट्रेट बन जाती है। खलियों की 50 से 80 तक नाइट्रोजन लगभग दो-तीन महीनों में पौधों को मिल जाती है। खलियों से पौधों को नाइट्रोजन मिलने की गति खली और मिट्टी की किस्म पर निर्भर करती है। प्राय: जिस खली में तेल का अंश अधिक होता है, वह कम तेल वाली खली से देर में सड़ती या विघटित होती है।

खलियों में पौधों का पोषण करने वाले जो तत्व पाए जाते हैं, वे जैविक मिश्रणों के रूप में रहते हैं। वे पौधों द्वारा ग्रहण किए जा सकने वाले रूप में केवल उसी समय खलियों से अलग होते हैं जब मिट्टी में पहुंचने पर खलियों का विघटन होता है। खलियों के विघटन के लिए मिट्टी में नमी का होना अति आवश्यक है। इसलिए खलियां खाद के रूप में केवल उन्हीं क्षेत्रों में इस्तेमाल की जाती हैं जहां फसलों की सिंचाई के लिए पानी की पूरी व्यवस्था है या जहां वर्षा काफी ज्यादा होती है। खलियों को खाद के रूप में इस्तेमाल करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि जब पौधे उगकर अच्छी तरह जम जाएं तब इन्हें खड़ी फसल में मिट्टी पर पौधों के पास डाल दिया जाए।

सारणी 4.13 : खलियों में पोषक तत्वों की औसत मात्रा (%)

खली का नाम	पौधे का वैज्ञानिक नाम	नाइट्रोजन	फॉस्फोरिक अम्ल	पोटाश
अरण्डी की खली	*रिसीनस कम्यूनिस* एल.	4.37	1.85	1.39
नारियल की खली	*कोकोस न्यूसीफेरा* एल.	3.02	1.90	1.77
बिनौले (बिना छिले) की खली	*गौसीपियम* स्पी.	3.99	1.89	1.62
बिनौले (छिले हुए) की खली	*गौसीपियम* स्पी.	6.41	2.89	2.17
मूंगफली की खली	*एराकिस हाइपोगेंई* एल.	7.29	1.53	1.33
जामुन की खली	*एरुका सेटाइवा* मिल.	4.95	1.65	1.90
करंज की खली	*पोंगामिया ग्लैबरा* वेट	3.97	0.94	1.27
अलसी की खली	*लाइनस उसीटैटिस्सीयम* एल.	5.56	1.44	1.28
महुआ की खली	*बेसिया लेटीफोलिया* रौक्सब	2.51	0.80	1.85
नीम की खली	*मेलिया एजैडिराक्ता* एल.	5.22	1.08	1.48
रामतिल की खली	*गिजेटिया एबीसीनिक* कैस	4.73	1.83	1.31
कुसुम की खली (छिलके सहित)	*काथमिस टिक्टोरियस* एल.	4.92	1.44	1.23
सरसों की खली	*ब्रासिका कैम्पेस्ट्रिस* एल.	5.21	1.84	1.19
कुसुम की खली (छिलके रहित)	*काथामंस टिक्टोरियस* एल.	9.88	2.20	1.92
तिल की खली	*सिसामम इंडीकम* एल.	6.22	2.09	1.26

सारणी 4.13 में खलियों के नाम और उनमें पाए जाने वाले मुख्य खाद तत्वों की औसत मात्रा दी गई है। खलियों में कभी-कभी धूल, मिट्टी, छिलके, भूसी आदि चीजें मिला दी जाती हैं। उनमें मिट्टी छिलके आदि की मिलावट जितनी ज्यादा होगी, उनका खाद-गुण उतना ही कम होगा। इसलिए खलियों को हमेशा उनकी गारंटीशुदा नाइट्रोजन-मात्रा के आधार पर ही खरीदना चाहिए। खलियां बहुत जल्दी असर दिखाने वाली खाद हैं। इनका असर उपयोग करने के बाद एक-दो सप्ताह में ही पत्तियों के गहरे हरे रंग के रूप में दिखाई देने लगता है। पर गोबर-कूड़े की खाद या कम्पोस्ट खाद के विपरीत खलियों का असर बाद में अधिक समय तक नहीं रहता। कुछ खलियां पशुओं को खिलाई जाती हैं। इसलिए पशुओं के दाने-रातिब के लिए उनकी मांग अधिक रहती हैं। ऐसी खलियां खाद के लिए बहुत मंहगी पड़ती हैं। उनको खाद के रूप में इस्तेमाल करने में कोई आर्थिक लाभ नहीं है। पर कुछ खलियां ऐसी भी हैं जो पशुओं को खिलाने के काम नहीं आतीं। ऐसी खलियां फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए नाइट्रोजनधारी कार्बनी खाद के रूप में अति उपयोगी समझी जाती हैं।

अरण्डी की खली एक अखाद्य खली है और अन्य खलियों की तुलना में धीरे-धीरे विघटित होती है। मूंगफली की खली की तुलना में इस खली से फसलों को नाइट्रोजन कुछ धीरे-धीरे मिलती हैं।

इसलिए इसका प्रभाव मिट्टी में ज्यादा देर तक रहता है। दक्षिण भारत में सफेद अरण्डी की खली काली अरण्डी की खली से खाद के लिए बढ़िया पाई गई है। इसकी नाइट्रीकरण की गति मूंगफली की खली की नाइट्रीकरण की गति से भी अधिक होती है। अरण्डी की खली दीमक को मारने के लिए भी अच्छी समझी जाती है।

नारियल की खली खाद के लिए बहुत ही कम काम में लाई जाती है। पर ज्यादा पुरानी होने पर इसमें फफूंदी लग जाती है, खटास आ जाती है और यह पशुओं को खिलाने के काम नहीं आ सकती तो इसे खाद के लिए काम में लाया जाता है।

बिनौले की खली खाद के लिए अति उपयोगी सिद्ध हो सकती है, क्योंकि उसमें नाइट्रोजन और फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसका नाइट्रीकरण भी बहुत जल्दी होता है। पर यह सब कुछ होते हुए भी पशुओं के लिए एक उपयोगी खाद्य खली होने के कारण इसका प्रयोग खाद के लिए बहुत कम होता है।

हमारे यहां खाद के लिए इस्तेमाल होने वाली खलियों में मूंगफली की खली अति लोकप्रिय है। इसमें नाइट्रोजन प्रचुर मात्रा में होती ही है, साथ ही वह पौधों को आसानी से मिल भी सकती है। इस खली की नाइट्रीकरण की दर विभिन्न मिट्टियों के अनुसार अलग-अलग होती है, पर फिर भी लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में इसका नाइट्रीकरण अन्य खलियों की अपेक्षा अधिक होता है।

महुआ की खली में नाइट्रोजन की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। इसके नाइट्रीकरण में भी अधिक समय लगता है। इसलिए महुआ की खली को यदि खाद के लिए इस्तेमाल करना होता है तो इसे फसल की बुवाई से लगभग दो-तीन महीने पहले खेत में डालना पड़ता है।

उत्तरी भारत में नाइट्रोजनधारी जैविक खाद के रूप में सरसों की खली अति लोकप्रिय है। जहां तक नाइट्रीकरण का प्रश्न है, सरसों की खली, अरण्डी, बिनौला, करंज, तिल और नीम की खलियों के ही समान है।

मृदा में खलियों का व्यवहार व पौधों पर प्रभाव

खलियां सांद्र कार्बनिक खाद होती हैं, अर्थात् इनमें पोषक तत्वों की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। खलियों को मृदा में बुआई से 2-3 सप्ताह पूर्व प्रयोग किया जाता है। फलों के वृक्षों में इनको ऊपर से भी डाला जा सकता है। चूंकि खली पिंड में होती है, अत: इनको सदैव पीसकर डालना चाहिए। इससे इनका भूमि में वितरण समान रूप से होता है तथा विघटन शीघ्र होता है। अंकुरित बीज और छोटे पौधों के सम्पर्क में खली नहीं आनी चाहिए।

मृदा में खली डालने से न केवल पौधों को पोषक तत्व प्राप्त होते हैं वरन् मिट्टी की भौतिक दशा में भी सुधार होता है। खलियों का प्रयोग न केवल नाइट्रोजनीय खाद के रूप में ही होता है बल्कि कुछ खलियों, जैसे – नीम की खली, अरण्डी की खली आदि का प्रयोग कीटनाशक के रूप में भी किया जाता है।

खली की मात्रा, मिट्टी और फल की प्रकृति पर निर्भर करती है। सामान्यत: 5-30 क्विं./हे. खली डाली जाती है। धान, गेहूं, गन्ना व कपास की खेती खली के प्रयोग से अच्छी होती है। खली में सुपर फॉस्फेट मिलाकर प्रयोग करने पर इसकी उपयोगिता और बढ़ जाती है। खली से जौ, आलू, तंबाकू, पान, फल व सब्जियों की पैदापवार में भी वृद्धि होती है। नाइट्रोजन की समान मात्रा देने पर यह अमोनियम सल्फेट, यूरिया आदि उर्वरकों के समान प्रभावशाली होती है। खलियों से पौधों को अल्प मात्रा में सूक्ष्म तत्व भी प्राप्त होते हैं। इनका अवशिष्ट प्रभाव 3-4 वर्ष तक खेत में बना रहता है।

शहरी कचरा

शहरी कचरे में विष्ठा, मल-मूत्र, सीवेज, गाद, सीवेज पानी शहरी कूड़ा-करकट तथा इन सभी पदार्थों के मिश्रण से निर्मित शहरी कंपोस्ट खाद सम्मिलित हैं। बूचड़खानों के अवशेष व अन्य सामग्री भी इसमें शामिल हैं।

विष्ठा चूर्ण

यह खाद मानव के मल-मूत्र से बनाई जाती है। मृदा की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने के गुण की दृष्टि से यह खाद गोबर की खाद से श्रेष्ठ होती है। चीन तथा जापान में मल-मूत्र की खाद बहुत प्रयोग की जाती है। हमारे देश में इसका निर्माण अधिकांशत: शहरी कंपोस्ट के रूप में किया जाता है। मानव मल मूत्र का खाद-गुण सारणी 4.14 में दिया गया है।

सारणी 4.14: मानव मल-मूत्र का खाद-गुण (सूखी सामग्री का प्रतिशत)

रचना सामग्री	मानव विष्ठा	मानव मूत्र	रचना सामग्री	मानव विष्ठा	मानव मूत्र
जल	75.0	97.0	पोटाश	0.5	0.2
जैविक पदार्थ	22.1	2.0	चूना	1.0	0.3
खनिज	2.9	1.0	जैविक कार्बन	11.0	0.8
नाइट्रोजन	1.5	0.6	कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात	7.3	1.3
फॉस्फोरस	1.1	0.1			

आजकल भारत में भी मानव के मूत्र-मल की खाद के लिए काम में लाने की कोशिश की जा रही है। मूत्र ताजी हालत में सीधे ही खेत में खाद के लिए काम में लाया जा सकता है, पर विष्ठा ताजी हालत में खाद के काम में नहीं लाई जा सकती। विष्ठा को पहले उपचारित करके निरापद खाद के रूप में लाना पड़ता है। विष्ठा से खाद बनाने के लिए आजकल अनेक विधियां काम में लाई जा रही हैं। इन विधियों का मुख्य उद्देश्य विष्ठा को स्वास्थ्य और सफाई रखने के लिए ठिकाने लगाना है।

विष्ठापूर्ण तैयार करने की विधि

विष्ठा को ठिकाने लगाने की इस विधि के अनुसार विष्ठा को गड्ढों या क्यारियों में फैला देते हैं और फिर उसको राख या मिट्टी से ढककर सूखने देते हैं। विष्ठा यदि क्यारियों में फैलाकर सुखाई जाती है तो वह आठ-दस दिनों में सूख जाती है। इसके बाद उसे क्यारियों से निकाल कर धूप में कहीं ऊंची जगह पर फैला देते हैं जिससे वह और सूख जाए। यदि विष्ठा को गड्ढों में एक विष्ठा की और एक मिट्टी की परत लगाकर भर देते हैं तो उसके सूखने में काफी अधिक समय लग जाता है। इसमें छ: महीने से आठ महीने तक लग सकते हैं। कभी-कभी तो इससे भी अधिक समय लग जाता है। इस प्रकार तैयार किए गए विष्ठा चूर्ण में खाद-गुण काफी अधिक होता है। पर विष्ठा से विष्ठाचूर्ण बनाने पर भी उसमें कुछ दुर्गंध बनी रहती है, इसलिए लोग इसे बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने में हिचकिचाते हैं। स्वास्थ्य और सफाई की दृष्टि से भी इसे उठाना, रखना और इस्तेमाल करना निरापद नहीं है।

सारणी 4.15 : विष्ठा-चूर्ण का खाद-गुण (मल सामग्री का प्रतिशत)

रचना सामग्री	क्यारी में सुखाने पर	गड्ढे में सुखाने पर	अन्तर की मात्रा
जल	28.10	28.25	-
नाइट्रोजन	1.12	1.80	0.43-2.39
फास्फोरस	0.68	1.93	0.75-3.09
पोटाश	0.94	1.07	0.42-2.64

फसलों में सब्जियों, फूलों व अन्य पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। बुआई से पूर्व खेत में डालने से इसकी दुर्गंध भी समाप्त हो जाती है।

सीवेज, स्लज व गंदा पानी

सामान्यत: सीवेज (गन्दे नाले) के दो अवयव होते हैं – 1. ठोस पदार्थ-जिसे स्लज या गाद कहते हैं तथा 2. द्रव अंश जिसे सीवेज पानी कहते हैं। इन दोनों ही पदार्थों का फसलोत्पादन में खाद रूप में प्रयोग किया जाता है। शहरों के आस-पास सब्जियां उगाने में इनका बहुत प्रयोग होता है। इन खादों में पोषक तत्वों की मात्रा बहुत अधिक होती है परंतु हानिकारक जीवाणुओं व बदबूदार तत्वों की अधिकता के कारण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाते हैं।

स्लज

सीवेज से आपंक को पृथ्वी पर आंशिक रूप से सुखाकर स्लज तैयार की जाती है। इसको कुछ समय के लिए खुला छोड़कर कुछ रसायन डाल दिए जाते हैं ताकि हानिकारक जीवाणु व दुर्गंध तत्व नष्ट हो जाते हैं तथा साथ ही साथ इसका विच्छेदन भी हो जाता है। इस प्रकार इसका सी:एन अनुपात भी काफी कम हो जाता है तथा खाद की गुणवत्ता अच्छी हो जाती है। भारत में निम्नलिखित प्रकार की स्लज बनाई जाती है :

(i) **सामान्य स्लज:** इसको गन्दे पानी को निथारने पर नीचे बैठी गाद के रूप में प्राप्त किया जाता है।

(ii) **पाच्य स्लज:** जिसे गड्ढों में भरकर विच्छेदन के उपरांत प्राप्त किया जाता है।

(iii) **पाच्य सक्रियत स्लज:** इसको ताजे स्लज के ऑक्सीकरण व विच्छेदन से बनाया जाता है।

(iv) **रासायनिक अवक्षेपण प्राप्त स्लज**

इसका रासायनिक संगठन सारणी 4.16 में दिया गया है।

सारणी 4.16: मल-मूत्र के गंदे पानी की गाद का खाद गुण

खाद की रचना सामग्री	कच्चे गंदे की गाद, दिल्ली (हवा में सूखी सामग्री में)	मल कुंड से प्राप्त गाद (मूल सामग्री में)	सिम्फलैक्स उत्प्रेरित गाद (दिल्ली) (हवा में सूखी सामग्री में)	उत्प्रेरित गाद, (कोयंबटूर) (सूखी सामग्री में)
नमी (%)	6.68	70.00	13.56	–
जैविक (%) सामग्री	47.68	19.00	63.97	64.10
नाइट्रोजन (%)	3.14	0.78	6.91	5.88
फॉस्फोरिक (%) अम्ल	1.68	0.31	3.08	3.18
पोटाश (%)	–	0.12	–	0.67
जैविक कार्बन (%)	27.65	–	37.05	–
कार्बन नाइट्रोजन अनुपात	8.80	–	5.30	–

सीवेज पानी (कच्चा गंदा पानी)

गंदे नाले के मिश्रण से ठोस पदार्थ पृथक कर लेने के बाद में कच्चा पानी शेष बचता है जो सीधे सिंचाई में प्रयोग किया जाता है। इसका खाद गुण उत्तम होता है। इसमें सभी तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसमें लगभग तीन-चौथाई नाइट्रोजन, आधा फॉस्फोरस तथा संपूर्ण पोटैशियम घुलित अवस्था में होता है जिसे पौधे तुरंत ग्रहण कर लेते

हैं। इसका संगठन सारणी 4.17 में दिया गया है।

सारणी 4.17 : गन्दे पानी का संगठन

अवयव	भाग प्रति लाख भाग		
	मुबंई	अहमदाबाद	पूना
कुल ठोस	80.40	-	-
ठोस सामग्री (घोल में)	23.80	41.60	92.50
कुल नाइट्रोजन	1.198	3.85	3.70
कुल फॉस्फोरस	1.75	1.90	2.17
कुल पोटाश	1.45	1.60	1.80

गंदे पानी का प्रयोग स्वच्छ सिंचाई जल के साथ किया जाना चाहिए। इससे इसका जहरीला प्रभाव कम हो जाता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में कोलॉइडी कीचड़ घुली रहती है जो पोषक तत्वों का मुख्य स्रोत होती है। आधुनिक समय में गंदे पानी का शोधन करके खेती में प्रयोग किया जा रहा है। भारत में 100 से अधिक म्युनिसिपल कार्पोरेशनों व बहुत सी शहरी एजेन्सियों द्वारा गंदे पानी का खेती में प्रयोग किया जा रहा है।

चारे की फसलें, जई, सब्जियां, बरसीम, मक्का, गन्ना आदि में सीवेज जल का प्रयोग लाभदायक है। गंदे जल के प्रयोग से मृदा व पौधों में व्याधियों की संभावना बढ़ जाती है। अत: इससे लगातार सिंचाई करना हानिकारक होता है।

शहरी कम्पोस्ट खाद

शहरी कंपोस्ट बनाने के लिए शहरी कूड़ा-कचरा, विष्ठा आदि सामग्री की आवश्यकता होती है। इनमें प्रमुख रूप से विष्ठा, जानवरों का खून, बूचड़खाने का कूड़ा-कचरा आदि जैसी सामग्रियों में नाइट्रोजन

और फॉस्फोरिक एसिड प्रचुर मात्रा में होती है और उनका कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात भी कम होता है पर सड़कों और गलियों की बुहारन और कूड़े-कचरे में नाइट्रोजन की कमी होती है और कार्बन नाइट्रोजन अनुपात अधिक होता है। इन सब सामग्रियों को जब खाइयों में भरकर खाद के लिए सड़ाया जाता है, तब उनसे बहुत बढ़िया कार्बन (जैविक) खाद मिलती है। इस प्रकार तैयार की गई खाद उठाने, रखने और भूमि में डालने के लिए अति निरापद और बढ़िया होती है।

देश में जिन शहरों और कस्बों में गंदी नालियों की आवश्यकता है, उनमें कूड़े-कचरे और मल-मूत्र से हर साल बहुत बड़ी मात्रा में कंपोस्ट खाद तैयार होती है। अनेक शहरों और कस्बों की नगरपालिकाएं कच्चे और निथारे हुए दोनों तरह के गंदे पानी को शहर के कूड़े-कचरे आदि से कंपोस्ट खाद तैयार करने के लिए काम में लाई जा रही हैं। गंदे नालों की गाद को सुखाना एक कठिन और खर्चीला काम होने के कारण कुछ नगरपालिकाएं गंदे नालों की गाद को भी कंपोस्ट तैयार करने के लिए इस्तेमाल कर रही हैं। इस प्रकार तैयार हुई कंपोस्ट खाद में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। उसमें नाइट्रोजन और फॉस्फोरिक एसिड की मात्रा गोबर-कूड़े की खाद और कंपोस्ट तैयार करने के लिए इस्तेमाल में लाई जाने वाली सामग्री में मौजूद नाइट्रोजन और फॉस्फोरिक एसिड की मात्रा से काफी अधिक होती हैं जैसा कि सारणी 4.18 में दिए गए विवरण से स्पष्ट है। शहरी कूड़े कचरे और गंदे नालों की गाद से तैयार कंपोस्ट खाद में पौधों के लिए आवश्यक प्रमुख पोषक तत्वों के अलावा सूक्ष्म पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

धान की भूसी व कना

चावल उपयोग से प्राप्त होने वाली उपजात सामग्री में भूसी व कना प्रमुख हैं। धान में 20-30% भूसी और 5-7% कना पाया जाता है। अनुमान है कि भारत में प्रति वर्ष लगभग 150 लाख टन भूसी प्राप्त होती है। धान की भूसी में 42.6% सेल्युलोस, 20 प्रतिशत लिग्निन,

सारणी 4.18 : शहरी कूड़े-कचरे आदि खाद सामग्री की औसत रचना और खाद गुणता (मूल सामग्री का प्रतिशत)

खाद सामग्री	नमी	जैविक सामग्री	जैविक कार्बन	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	चूना	कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात
शहर का कूड़ा	10	25	12	0.6	0.3	1.0	0.4	25
विष्ठा	75	19	9	1.0	0.8	0.4	0.9	9
जानवरों का खून	77	19	8	2.6	0.2	0.1	0.4	3
बूचड़खाने का कूड़ा-कचरा (ठोस)	75	18	3	1.6	0.6	0.4	0.6	2

18.6% पेन्टोसान और 18.7% राख पाई जाती है। इसके साथ ही इसमें 0.3 से 0.5% पोटैशियम पाया जाता है। आमतौर पर इसका प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। ऊसर भूमि की भौतिक दशा सुधारने के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह पशुशाला में बिछाली के रूप में भी प्रयोग की जाती है, परंतु इसमें पोषक तत्वों की मात्रा बहुत ही कम होने के कारण इससे तैयार खाद घटिया किस्म की होती है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 25 लाख टन धान का कना प्राप्त होता है, परंतु इस पदार्थ का इस्तेमाल साधारणतया तेल बनाने में किया जाता है।

गन्ने की खोई

चीनी उद्योग से प्राप्त होने वाला यह एक प्रमुख उपजात है। भारत में प्रति वर्ष 53 लाख टन खोई निकलती है। आमतौर पर इसका इस्तेमाल चीनी मिलों में ईंधन के रूप में किया जाता है, परंतु इस पदार्थ का इस्तेमाल ईंधन के साथ ही खाद बनाने के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है, बशर्ते इसे गोबर गैस प्लांट में प्रयुक्त किया जाए। इसमें नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की मात्रा क्रमशः 1.4 और 0.4% पाई जाती है। ऐसा अनुमान है कि यदि इस उपजात का उपयोग खाद बनाने के लिए किया जाए तो प्रतिवर्ष लगभग 140 लाख टन खाद तैयार की जा सकती है।

राष्ट्रीय शर्करा अनुसंधान संस्थान, कानपुर में गन्ने की खोई और पत्तियों का उपयोग बायोगैस तैयार करने में किया जा रहा है। इस संयंत्र से अवात दशा में 40-55 दिन की अवधि में खाद तैयार हो जाती है। इस संयंत्र में उपयोग में लाई जाने वाली खाद-सामग्री में 80% भाग खोई, 12% भाग जानवरों का गोबर, 0.5% भाग हड्डियों का चूरा या सुपरफास्फेट और 3% भाग कैल्सियम कार्बोनेट होता है। नमी की मात्रा लगभग 70% रखी जाती है।

प्रेसमड

चीनी मिलों से प्रतिवर्ष 20 लाख टन प्रेसमड प्राप्त होता है। इसकी

अधिकांश मात्रा खाद के रूप में इस्तेमाल की जाती है। प्रेसमड में 1.25% नाइट्रोजन, 2% फॉस्फोरस और 20-25% कार्बनिक पदार्थ पाया जाता है। खाद बनाने में इसका इस्तेमाल सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इससे तैयार खाद में 1.4% नाइट्रोजन और 1-1.5% फॉस्फोरस पाया जाता है। प्रेसमड में चूने की मात्रा लगभग 45% तक पाई जाती है, इसलिए इसका उपयोग अम्लीय भूमि के सुधार के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

बूचड़खाने की छीजन, पशु हड्डियां और उपजात सामग्रियां

भारत में लगभग 3 हजार बूचड़खाने हैं जिनमें प्रतिवर्ष औसतन 4 करोड़ भेड़-बकरियां तथा 15 लाख भैंसे काटी जाती हैं। इसके अतिरिक्त पूरे देश में प्रतिवर्ष लगभग 1 करोड़ 20 लाख जानवर मरते हैं। परंतु अभी तक इन मरने वाले जानवरों की हड्डियां, सींगों व अन्य अंशों को एकत्रित करने तथा उपयोग में लाने का कार्य विशेष कुशलता के साथ नहीं किया जा रहा है।

हड्डी की खाद

विपणन और निरीक्षण निदेशालय की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में जानवरों के मरने से प्रतिवर्ष लगभग 3.64 लाख टन हड्डियां एकत्र की जा सकती हैं, परंतु इस समय केवल 1.36 लाख टन हड्डियां खाद के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं। अधिक दाब पर भाप की भंजन क्रियाओं के फलस्वरूप हड्डियों का चूरा तैयार किया जाता है। इसे फॉस्फोरसधारी उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। फॉस्फोरस के अतिरिक्त इनमें 1-2% नाइट्रोजन भी पाई जाती है। इस उर्वरक का उपयोग अम्लीय मिट्टियों में विशेष लाभप्रद पाया गया है। भारी गठन वाली चिकनी मिट्टियां तथा चूना-युक्त मिट्टियों में इसका प्रयोग अधिक लाभकर नहीं होता। जिन मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की प्रचुरता हो, उनमें हड्डी की खाद का प्रयोग सफलतापर्वूक किया जा सकता है। अम्लीय मिट्टियों में हड्डी के चूरे के प्रयोग से फसलों की उपज में काफी वृद्धि होती है।

रक्त

बूचड़खाने से प्राप्त रक्त (खून) और रक्त की खाद का प्रयोग नाइट्रोजनधारी उर्वरक के रूप में किया जा सकता है, परंतु हमारे देश में एकत्रित और संशोधित करने का उपाय नहीं किया जाता। इसलिए रक्त की अधिकांश मात्रा नष्ट हो जाती है। चाहे तो रक्त को सही ढंग से सुखाकर नाइट्रोजन-बहुल चूर्ण प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा खून का चूरा तैयार करने के लिए एक बहुत ही आसान प्रविधि का विकास किया गया है। इस विधि के अंतर्गत तरल खून में लगभग 1 प्रतिशत चूना मिलाकर 80° से. तक गर्म किया जाता है। इस ताप पर चूने की उपस्थिति से खून जमने लगता है। इसके बाद ताप कम कर दिया जाता है और खून को इतने ही ताप पर तब तक चलाते रहते हैं जब तक कि गाढ़ा खून लाल रंग का न हो जाए। अब रक्त में मौजूद जल को निथारकर अलग कर दिया जाता है। गाढ़े खून को चौथाई इंच के छेदों वाली छलनी से छानकर धूप में सुखाया जाता है। इस प्रकार तैयार खून के चूरे को खाद व पशु आहार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इसमें 10-12% नाइट्रोजन, 1-2% फॉस्फोरस और 1% पोटैशियम पाया जाता है। इसमें कार्बन : नाइट्रोजन का अनुपात 3 से 4 होता है। ऐसा अनुमान है कि भारत में प्रति वर्ष 55 हजार टन खून की खाद प्राप्त की जा सकती है, परंतु इस क्षमता का केवल एक तिहाई ही उपयोग में आता है। उल्लेखनीय है कि मिट्टी में खून की खाद का विघटन बड़ी ही सुगमतापूर्वक हो जाता है। इसलिए इसका प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है।

जमे खून के थक्कों का शोधन करने के लिए इसे कुछ मिनट तक 0.5% हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के घोल में उबाला जाता है। इस प्रक्रिया में खून के थक्के घोल के अंदर आ जाते हैं। बाद में इन ठोस थक्कों को बाहर निकालकर धातु की छलनी के ऊपर रगड़ा जाता है और फिर इसे सुखा लिया जाता है। इस खाद में नाइट्रोजन की मात्रा 14-15% तक होती है। तरल खून को फार्म पर उपलब्ध कूड़ा-

कचरा, सूखी पत्तियों तथा अन्य अवशेषी पदार्थों, गोबर या कंपोस्ट में मिलाकर नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

मांस की छीजन

रक्त के अतिरिक्त बूचड़खाने के जानवरों के मांस की छीजन का उपयोग खाद के रूप में किया जा सकता है। अनुमान है कि प्रति वर्ष 0.12 लाख टन बेकार मांस प्राप्त होता है। यदि इसका शोधन करके चूर्ण बना लिया जाए तो एक अच्छा उर्वरक तैयार हो सकता है। इसमें लगभग 8-10% नाइट्रोजन और 2% फॉस्फोरस पाया जाता है। चूरे के रूप में मांस का प्रयोग अधिक लाभदायक रहता है। इसके लिए मांस को वाष्प-पाचक (स्टीम डाइजेस्टर) में पकाकर चूर्ण बनाया जा सकता है, परंतु यह विधि बहुत ही मंहगी पड़ती है। अत: मांस को खाद के रूप में उपयोग करने के लिए शोधन-विधि अपनाई जा सकती है। इस विधि में बेकार मांस को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर 5% सांद्रता वाले हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में मुलायम होने तक पकाया जाता है। इसके बाद इसे पानी में घोलकर धातु की छलनी के ऊपर फैलाकर रगड़ा जाता है और फिर धूप में सुखा लिया जताा है। इस प्रकार तैयार सामग्री में 8-10% नाइट्रोजन रहता है। इसका इस्तेमाल मुर्गियों के आहार तथा खाद के लिए किया जाता है।

खुर और सींग का चूरा

मृत जानवरों के खुर तथा सींगों को सुखाने के बाद पीस कर चूरा तैयार किया जाता है। इस चूरे में 10-15% नाइट्रोजन, 1% फॉस्फोरस और 2.5% चूना पाया जाता है।

चमड़े की छीजन

ऐसा अनुमान है कि भारत में समस्त मृत तथा बूचड़खानों में काटे जाने वाले पशुओं से 50,000 टन चमड़े की छीजन प्रति वर्ष प्राप्त होती है। प्राप्त छीजन को स्टीम डाइजेस्टर में गर्म करने के बाद इसे पीसकर चूर्ण बना लिया जाता हे। इस चूर्ण का इस्तेमाल नाइट्रोजनधारी

उर्वरक के रूप में किया जा सकता है। चमड़े का चूर्ण तैयार करने के लिए कमाए और बिना कमाए चमड़े की छीजन को पानी में भिगो लिया जाता है। इसके बाद उसे 5 प्रतिशत सांद्रता वाले हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में पकाया जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप चमड़े के मुलायम टुकड़े अलग-अलग हो जाते हैं, जिन्हें बाद में पानी से धोकर सुखा लिया जाता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के उपचार से चमड़े में मौजूद जटिल नाइट्रोजनधारी यौगिक सरल यौगिकों में बदल जाते हैं। इस पद्धति द्वारा तैयार की गई सामग्री में 7.8% नाइट्रोजन रहता है, जिसका 70-75% खनिज रूप में पाया जाता है।

बाल और ऊन की छीजन

बाल काटने वाले सैलूनों और पशुओं के बाल काटने वाले स्थानों से बालों की छीजन काफी मात्रा में उपलब्ध होती है जिसका सामान्यतया कोई उपयोग नहीं होता। इसी प्रकार ऊनी मिलों, कंबल आदि बनाने वाले कारखानों से काफी मात्रा में ऊन की छीजन प्राप्त होती है। इसे भी अभी तक किसी काम में नहीं लाया जाता है। निम्नलिखित विधि द्वारा इसे जटिल कैरेटिनयुक्त नाइट्रोजन बहुत उपजात सामग्री (15 प्रतिशत) का उपयोग खाद के रूप में किया जाता सकता है। बाल और ऊन की छीजन को 8% सांद्रता वाले कास्टिक सोडा के घोल में उपचारित किया जाता है, जिससे एक लेई-जैसा पदार्थ बन जाता है, फिर इसे 10% सांद्रता वाले हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से उपचारित किया जाता है जिससे यह क्षाररहित हो जाता है। अब इस घोल को छान कर मुलायम ठोस पदार्थ की धातु की छलनी के ऊपर फैलाकर रगड़ते हैं और फिर सुखा लेते हैं। इस प्रकार तैयार खाद में 12 से 15% नाइट्रोजन उपस्थित रहता है।

जंगल उद्योगों के उपजात

बुरादा

हमारे देश में 22 लाख टन बुरादा प्रतिवर्ष निकलता है। इस लकड़ी के बुरादे का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात बहुत अधिक (500 : 1) होता

है। इसमें 0.11% नाइट्रोजन और 0.22% फॉस्फोरस पाया जाता है। पोषक तत्वों की कमी के कारण ही इसका खाद के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता। बुरादे की जलधारण क्षमता अन्य सामग्री की तुलना में 3 से 4 गुना अधिक होती है, इसलिए जानवरों के नीचे बिछाली के रूप में इसका इस्तेमाल विशेष उपयुक्त रहता है। इसके प्रयोग से मूत्र का छीजन नहीं होने पाता है।

फलों और सब्जियों की छीजन

फलों और सब्जियों के छिलके, पत्तियों, तने, डंठलों, गुठलियों आदि का बड़े पैमाने पर खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। आम, अनन्नास, नीबू, सेब, मटर, टमाटर आदि पर आधारित उद्योगों से प्राप्त होने वाली उपजात सामग्री की कुल मात्रा लगभग 25 हजार टन प्रति वर्ष है और ऐसा अनुमान है कि इन उपजात सामग्रियों की संपूर्ण मात्रा का समुचित उपयोग करके लगभग 10 हजार टन कंपोस्ट तैयार की जा सकती है।

रूई और सूती मिलों की छीजन

कपास से प्राप्त उपजात सामग्रियों में डंठल, फूलों को छिलके, पत्तियां आदि और कपास के रेशे प्रमुख हैं, जिनसे एक अच्छी कंपोस्ट तैयार की जा सकती है। बिनौले में 1:1.5% नाइट्रोजन होता है।

सूती मिलों से प्रति वर्ष 30-35 हजार टन रूई की छीजन प्राप्त होती है। यदि इस मात्रा का इस्तेमाल कंपोस्ट बनाने में किया जाए तो पोषक तत्वों की पूर्ति की समस्या कुछ हद तक हल की जा सकती है। रूई की छीजन में 8.0% पानी, 70% जैव-पदार्थ, 41% कार्बन, 1.4% नाइट्रोजन, 0.6% फॉस्फोरस और 1.2% पोटैशियम पाया जाता है। इसका पी-एच मान 6.2 होता है। अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की उपस्थिति के कारण इसकी गणना एक अच्छी खाद-सामग्री के रूप में की जाती है। इस उपजात का इस्तेमाल सीधे बिना कंपोस्ट बनाए किया जा सकता है, परंतु यहां यह बता देना आवश्यक है कि मिट्टी में रूई का विघटन काफी धीमी गति से हो पाता है। इसमें कार्बन-

नाइट्रोजन का अनुपात किसी भी आदर्श खाद-सामग्री के समान है। इसमें उपलब्ध प्रमुख पोषक तत्वों की औसत मात्रा शहरी कूड़े-कचरे की तुलना में कहीं अधिक है।

नागपुर में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि रूई की धूल से 50-60% नमी की उपस्थिति में आवश्यक पलटाई करके केवल 20 दिनों के अंदर ही एक अच्छी किस्म की कंपोस्ट तैयार हो जाती है। एक टन रूई की धूल से लगभग 0.6 से 0.7 टन कंपोस्ट तैयार होती है।

मछली पालन और समुद्री उद्योग से प्राप्त छीजन

भारत के तटवर्ती क्षेत्रों में, विशेषकर उड़ीसा, बंगाल, चेन्नई और बंबई में मछलियों तथा अनेक समुद्री जानवरों की डिब्बाबंदी का कार्य बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है। मेंढक के शरीर की पिछली टांगे केवल डिब्बाबंदी के कार्य में प्रयोग की जाती हैं और सिर तथा अन्य अंगों का इस्तेमाल नहीं किया जाता है। अकेले मेंढक के शरीर का लगभग 65% भाग खाद बनाने में इस्तेमाल किया जा सकता है, क्योंकि सिर तथा अन्य अंगों की डिब्बाबंदी नहीं की जाती। समुद्रों में पाई जाने वाली मछलियों में कुछ ऐसी मछलियां हैं जो खाने के काम नहीं आती हैं। इसलिए इन्हें सुखाकर खाद तैयार की जाती है। मछलियों को सुखाकर खाद बनाने की विधि के अतिरिक्त स्टीम डाइजेस्टर में पकाने की विधि भी प्रयोग में लाई जाती है, जिसमें मछलियों के चूरे को स्टीम डाइजेस्टर में पकाने के बाद सुखा लिया जाता है। इस खाद में कार्बन-नाइट्रोजन का अनुपात 4-5 तथा नाइट्रोजन 4-10%, फॉस्फोरस 3-9% और पोटैशियम 1-2% रहता है। इस खाद का प्रयोग समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में धान, रागी, नारियल, सब्जियों, फलों आदि की खेती में किया जाता है।

चाय की छीजन

भारत में चाय-उद्योग से संबंधित कारखानों और फैक्टरियों में चाय

के शोधन, उत्पादन और भंडारण के समय अनेक प्रकार की उपजात सामग्री, पत्तियां, डंठल आदि प्राप्त होते हैं। इनकी मात्रा लगभग 10 हजार टन प्रति वर्ष है। चाय की पत्तियों से कैफीन तैयार की जाती है। कैफीन निकलने के बाद जो सामग्री बेकर बच जाती है उसे खाद तैयार करने तथा जानवरों को खिलाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। इसमें 3.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.4% फॉस्फोरस और 1.5% पोटैशियम पाया जाता है। इस उत्पादन में कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात 9 : 11 तक पाया जाता है।

जूट उद्योग के उपजात

हमारे देश में लगभग 24 लाख टन जूट प्रतिवर्ष पैदा होता है। रेशे निकालने के बाद बची हुई लकड़ी का इस्तेमाल खाद के लिए किया जा सकता है। इसके लिए जूट की लकड़ियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिए, ताकि किण्वन व विघटन की क्रिया तेजी से हो सके और अच्छी किस्म की कंपोस्ट खाद तैयार हो।

अध्याय-5

रासायनिक उर्वरक

पौधों की वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक अधिकांश तत्व खनिज मिट्टियों में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। पर इनमें से अधिकांश यौगिकों के रूप में एक-दूसरे के साथ इस तरह मिले रहते हैं कि पौधे उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते। जड़ें उन्हें ग्रहण करके अपने पौधों की वृद्धि और विकास के लिए काम में नहीं लाई जा सकतीं। इसलिए ऐसी मिट्टियों में फसलें उगाने के लिए पौधों की खुराक की इस कमी को पूरा करने के लिए खाद और उर्वरक इस्तेमाल करने पड़ते हैं।

उर्वरकों के प्रकार

प्रमुख पोषक तत्वों के आधार पर उर्वरकों का वर्गीकरण सामान्य रूप से तीन वर्गों में किया गया है।

1. नाइट्रोजनी उर्वरक
2. फॉस्फेटी उर्वरक
3. पोटाशीय उर्वरक

संघटन के अनुसार उर्वरकों के तीन अन्य वर्ग भी उल्लेखनीय हैं :

1. मिश्रित उर्वरक
2. यौगिक उर्वरक
3. सूक्ष्म पोषक तत्व वाले उर्वरक

नाइट्रोजनी उर्वरक

पौधों को नाइट्रोजन की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। साथ ही साथ भारत की मिट्टियों में इस तत्व की अत्यधिक कमी है। फलस्वरूप नाइट्रोजनी उर्वरकों का कृषि उत्पादन में विशेष स्थान है। पौधे नाइट्रोजन का अवशोषण अमोनियम या नाइट्रेट आयन के रूप में करते हैं। नाइट्रोजनी उर्वरकों में नाइट्रोजन या तो अमोनियम या नाइट्रेट अथवा अमोनियम और नाइट्रेट दोनों ही आयनों के रूप में पाया जाता है। कुछ नाइट्रोजनी उर्वरकों में नाइट्रोजन एमाइड रूप में भी पाया जाता है, जो मिट्टी में होने वाली जैविक या रासायनिक अभिक्रियाओं के फलस्वरूप शीघ्र ही अमोनियम रूप में परिवर्तित हो जाता है। नाइट्रोजनी उर्वरकों को छह वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

अमोनियमयुक्त उर्वरक

इस वर्ग में अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम फास्फेट तथा निर्जल अमोनिया सम्मिलित हैं।

नाइट्रेटयुक्त उर्वरक

इसके अंतर्गत कैल्शियम नाइट्रेट और नाइट्रोफास्फेट-जैसे उर्वरक आते हैं।

अमोनियम और नाइट्रेटयुक्त उर्वरक

अमोनियम नाइट्रेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट और अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट इस वर्ग के उर्वरक हैं।

एमाइडयुक्त उर्वरक

इस वर्ग के उर्वरक यूरिया, यूरिया फास्फेट और यूरिया सल्फेट हैं।

द्रव उर्वरक

निर्जल अमोनिया, जलीय अमोनिया तथा ऐसे उर्वरक विलयन जो यूरिया, अमोनियम नाइट्रेट तथा अमोनिया से तैयार किए जाते हैं, इस वर्ग के उर्वरक हैं।

मंदगति से नाइट्रोजन उपलब्ध कराने वाले उर्वरक

यूरिया फार्मोल्डिहाइड, यौगिक ऑक्सामाइड और धात्विक अमोनियम फास्फेट इस वर्ग के उर्वरक हैं।

नाइट्रोजन उर्वरकों का वर्गीकरण

नाइट्रेट उर्वरक: जिनमें नाइट्रोजन, नाइट्रेट (No_3^-) के रूप में होता है:

1. सोडियम नाइट्रेट 16% N
2. कैल्शियम नाइट्रेट 15% N
3. पोटैशिमय नाइट्रेट 13% N

अमोनियम उर्वरक: जिनमें नाइट्रोजन अमोनियम आयन (NH_4^+) के रूप में होता है:

1. अमोनियम सल्फेट 20.5% N
2. अमोनियम क्लोराइड 25.0% N
3. निर्जल अमोनिया 82.0% N
4. अमोनियम फास्फेट 11.0% N
5. डाइ-अमोनियम फास्फेट 18.0% N

अमोनियम व नाइट्रेट उर्वरक: नाइट्रोजन अमोनियम व नाइट्रेट दोनों रूप में होता है:

1. अमोनियम नाइट्रेट 33.5% N
2. अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट 26.0% N
3. कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट 20.5% N

एमाइड उर्वरक: इनमें एन एमाइड रूप में पाई जाती है:

1. यूरिया 46% N
2. कैल्शियम सायनामाइड 21.0 % N
3. यूरिया फास्फेट-संगठन पर निर्भर
4. यूरिया सल्फेट-संगठन पर निर्भर

नाइट्रोजन विलयन

1. निर्जल अमोनिया 82% N
2. सजल अमोनिया भिन्न-भिन्न
3. उर्वरक विलयन (अ) यूरिया, (ब) अमोनियम नाइट्रेट, (स) अमोनिया

धीमी गति से नाइट्रोजन अवमुक्त करने वाले उर्वरक: इन उर्वरकों का संगठन भिन्न-भिन्न होता है:

1. यूरिया फार्म (यूरिया फार्मेल्डिहाइड यौगिक)
2. ऑक्सामाइड
3. मैटल अमोनियम फास्फेट
4. कवचयुक्त यूरिया–गंधकयुक्त यूरिया, कोलतार, नीम व लाखयुक्त यूरिया आदि
5. मिश्रित यूरिया–नीम, महुआ, करंज, क्ले, पायराइट, रॉकफॉस्फेट आदि मिश्रित यूरिया।

अमोनियम सल्फेट

अमोनियम सल्फेट काफी प्रचलित नाइट्रोजनी उर्वरक है। इसमें 20 से 21 प्रतिशत नाइट्रोजन के साथ ही 24 प्रतिशत गंधक भी पाया जाता है। देश के विभिन्न भागों में परंपरागत रूप से इसके प्रयोग का प्रचलन है। हमारे देश में अमोनियम सल्फेट के उत्पादन की कुल क्षमता लगभग 10 लाख टन है, जिससे प्रति वर्ष लगभग 2 लाख टन नाइट्रोजन उपलब्ध होता है।

अमोनियम सल्फेट के उत्पादन में गंधक के अम्ल, अमोनिया और जिप्सम कच्चे पदार्थ के रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं।

भंडारण एवं रख-रखाव

यह उर्वरक बारीक और रवेदार होता है, अत: इसके प्रयोग तथा भंडारण में साधारणतया कोई कठिनाई नहीं होती। फिर भी इसमें कुछ चूर्ण पदार्थ भी पाए जाते हैं जिसके कारण अधिक नमी की दशा में भंडारण करने पर भी नमी अवशोषण के फलस्वरूप ढेले बन जाते हैं। ढेले बनने की संभावना और हल्के अम्लीय स्वभाव के कारण इसे मोटी पॉलीथीन से बने बोरों में भर कर रखा जाता है।

गुण तथा मिट्टी में अभिक्रिया

फर्टिलाइजर कन्ट्रोल आर्डर के अनुसार इसका संघटन निम्नलिखित होना चाहिए:

इसमें मौजूद सम्पूर्ण नाइट्रोजन अमोनिया रूप में ही होती है।

विवरण	भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा
(क) नमी की अधिकतम मात्रा	1.0
(ख) अमोनियाई नाइट्रोजन की न्यूनतम मात्रा	20.6
(ग) मुक्त अम्ल की अधिक मात्रा	0.025
(घ) उप-उत्पाद अमोनिया तथा उप-उत्पाद जिप्सम द्वारा प्राप्त आर्सेनिक की अधिकतम मात्रा	0.01

नाइट्रोजन के अलावा इसमें 23.7% गंधक सल्फेट के रूप में पाया जाता है, जो कि पौधों को सुगमता से सुलभ हो जाता है।

यह उर्वरक जल में बड़ी ही आसानी से घुल जाता है। यह चीनी की तरह सफेद रवों के रूप में तैयार किया जाता है। स्टील उद्योग से गौण पदार्थ के रूप में प्राप्त उर्वरक उसमें मौजूद अशुद्धियों के कारण कई तरह के भूरे मटमैले रंगों में पाया जाता है। उत्पादन विधि के अनुसार इस गौण सामग्री की भौतिक दशा में भी अंतर पाया जाता है। यह रवेदार एवं चूर्ण दोनों ही रूपों में पाया जाता है। उल्लेखनीय है कि अमोनियम सल्फेट उर्वरक के भौतिक गुण बड़े ही उच्च किस्म के होते हैं। यह उर्वरक नमी से तब तक प्रभावित नहीं होता जब तक कि वातावरण की आपेक्षिक नमी 79% (30 डिग्री से.) से अधिक न हो जाए। उर्वरक की ये विशेषताएं भंडारण तथा यातायात के दौरान ज्यों की त्यों बनी रहती हैं।

अमोनियम सल्फेट का प्रयोग बुआई के समय तथा खड़ी फसल में विभिन्न अवस्थाओं पर सफलतापूर्वक किया गया है। अच्छे भौतिक गुणों के कारण इसका इस्तेमाल शुष्क मिश्रण के रूप में किया जा सकता है। इसे फास्फेट तथा पोटाशधारी उर्वरकों के साथ मिश्रण के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। लेकिन इसे उन उर्वरकों के

साथ नहीं मिलाना चाहिए, जिनमें चूना पाया जाता है अन्यथा नाइट्रोजन की हानि की संभावना बढ़ जाती है। दूर कतार में बोई जाने वाली फसलों में बुआई के समय इसका प्रयोग बैंड प्लेसमेंट द्वारा करते हैं ताकि उर्वरक ऊपरी सतह की मिट्टी के नीचे पड़े। यदि इसका मिट्टी की ऊपरी सतह पर बुरकाव करना हो तो अंतिम जुताई के समय बुरकाव करने के बाद मिट्टी में अच्छी तरह मिला लेना चाहिए।

यह एक अत्यंत क्रियाशील उर्वरक है। जब इसे मिट्टी में मिलाया जाता है तो यह मृदा विलयन में आसानी से मिलकर अमोनियम और सल्फेट आयन के रूप में विभाजित हो जाता है। मिट्टी में ऋण आवेश होने के कारण वे उर्वरक के अमोनियम आयन को आकर्षित करते हैं। परिणामस्वरूप ये धनायन के रूप में अधिशोषित हो जाते हैं। पौधे अमोनियम आयन को या तो सीधे ही या जीवाणुओं द्वारा नाइट्रेट रूप में परिवर्तित होने के बाद ग्रहण करते हैं।

इसके विपरीत मिट्टी में सल्फेट अधिशोषण विशेष दृढ़ता से नहीं हो पाता और यह भी पौधों को सुलभ होने की दशा में पाया जाता है।

मिट्टी में अमोनियम आयन का नाइट्रीकरण उन दशाओं में जहां ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में हो, बड़ी ही आसानी से हो जाता है। यह परिवर्तन "नाइट्रोसोमोनास" और "नाइट्रोबैक्टर" नामक जीवाणुओं द्वारा सम्पन्न होता है।

अमोनियम सल्फेट के प्रयोग के फलस्वरूप मिट्टी में अम्ल उत्पन्न होता है। इसी कारण इसका इस्तेमाल क्षारीय एवं चुनही (चूनेवाली) मिट्टियों में तथा रोपी फसलों में अन्य उर्वरकों की अपेक्षा विशेष उपयोगी होता है। अम्लीय मिट्टियों में इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अमोनियम सल्फेट के अम्लीय प्रभाव को उर्वरक की मात्रा के बराबर कैल्शियम कार्बोनेट का इस्तेमाल करके समाप्त किया जा सकता है।

अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट

अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट दो लवण उर्वरक है, अर्थात् इसमें एक अणु अमोनियम सल्फेट और एक अणु अमोनियम नाइट्रेट पाया जाता है। इस उर्वरक में भी नाइट्रोजन के साथ ही गंधक भी पाया जाता है और इसकी भौतिक दशा उत्तम किस्म की होती है। भारत के अतिरिक्त इसका उत्पादन जर्मनी व बेल्जियम में भी किया जाता है।

यह उर्वरक सल्फ्यूरिक और नाइट्रिक अम्ल को क्रमशः 77 व 50% की दर से मिलाकर निर्जल अमोनिया के साथ उदासीन करके तैयार किया जाता है। प्राप्त मिश्रण में 150 (डिग्री से.) तापमान पर 3 प्रतिशत पानी होता है। ढेले बनने से रोकने के लिए इस दो लवण वाले उर्वरक मिश्रण में लगभग एक टन फेरस सल्फेट मिलाया जाता है। इसे दानेदार बनाने के बाद सूखा लिया जाता है। तैयार उर्वरक में 26.6% नाइट्रोजन पाई जाती है, जिसमें से 7% नाइट्रेट रूप में तथा 20% अमोनियम रूप में होती है।

भंडारण एवं रख-रखाव

अमोनियम नाइट्रेट की तुलना में दो लवण वाले इस उर्वरक का भंडारण सुगम रहता है परंतु आर्द्रताग्राही होने के कारण इसके भंडारण तथा रख-रखाव के समय सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए। उर्वरक को पॉलीथीन के थैलों में रखना श्रेयस्कर रहता है।

गुणधर्म तथा मिट्टी में अभिक्रिया

अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट एक दूसरा उर्वरक है, जिसमें नाइट्रोजन के साथ ही गंधक भी पाया जाता है। यह गुलाबी रंग का दानेदार उर्वरक है, जो जल में पूर्ण रूप से घुलनशील होता है। इसमें प्राप्य कुल 26 प्रतिशत नाइट्रोजन का एक चौथाई भाग (6.5 प्रतिशत) नाइट्रेट के रूप में पाया जाता है। फर्टिलाइजर कन्ट्रोल आर्डर के अनुसार इसमें

निम्नांकित विशिष्टताएं होनी चाहिए:

विवरण	भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा
अमोनियाई नाइट्रोजन की न्यूनतम मात्रा	19.50
नाइट्रेट नाइट्रोजन की न्यूनतम मात्रा	6.50
अमोनियाई + नाइट्रेट नाइट्रोजन की न्यूनतम मात्रा	26.00

नाइट्रोजन के अतिरिक्त इसमें 12 प्रतिशत गंधक, सल्फेट के रूप में पाया जाता है जो पौधों को सुगमतपूर्वक उपलब्ध हो जाता है।

इसे सभी प्रकार के पोटाशयुक्त उर्वरकों तथा सुपरफास्फेट के साथ मिलाकर उर्वरक मिश्रण तैयार किया जा सकता है। अमोनियम सल्फेट की ही भांति इसे भी कैल्शियमयुक्त उर्वरकों, जैसे - बेसिक स्लैग, चूना आदि के साथ नहीं मिलाना चाहिए अन्यथा अमोनिया गैस के रूप में हाइड्रोजन की हानि होने की संभावना रहती है। इसका मिट्टी में अपेक्षाकृत कम अम्लीय प्रभाव पड़ता है, अत: इसका इस्तेमाल थोड़ी अम्लीय मिट्टियों में भी किया जा सकता है।

मिट्टी में जब इस उर्वरक का प्रयोग किया जाता है तो यह मृदा विलयन में पूरी तरह से घुलकर नाइट्रेट आयन पौधों के जड़-क्षेत्र में पहुंचकर उपलब्ध तत्वों के रूप में योगदान करता है।

इस उर्वरक में नाइट्रेट रूप में मौजूद नाइट्रोजन का कम वर्षा वाले क्षेत्रों तथा सिंचाई जल की कमी की दशा में उगाई गई फसलों के लिए विशेष महत्व होता है। इसके विपरीत अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में खासकर हल्के गठन वाली मिट्टियों में नाइट्रेट के निक्षालन का भय बना रहता है। ऐसी दशा में अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट का कई बार में थोड़ा-थोड़ा इस्तेमाल करना चाहिए। इस उर्वरक का "टॉप ड्रेसिंग" में इस्तेमाल विशेष लाभप्रद होता है।

अमोनियम क्लोराइड

अमोनियम सल्फेट की तुलना में अमोनियम क्लोराइड अधिक प्रचलित उर्वरक है। अमोनियम सल्फेट की भांति इसमें भी नाइट्रोजन अमोनियम आयन के रूप में पाया जाता है। अमोनियम सल्फेट, अपचयन की दशा में, हाइड्रोजन सल्फाइड के रूप में अपचयित हो जाता है जो पौधों के लिए हानिकारक है। उल्लेखनीय है कि अमोनियम क्लोराइड से ऐसा कोई हानिकारक पदार्थ नहीं बनता है, फिर भी इसका लगातार प्रयोग करते रहने से कुछ मिट्टियों में क्लोराइड की मात्रा बढ़ जाती है।

गुणधर्म एवं मिट्टी में अभिक्रिया

अमोनियम क्लोराइड एक सफेद रवेदार उर्वरक है जिसका अणुभार 53.59 और घनत्व 1.526 होता है। इसमें 26.16 प्रतिशत नाइट्रोजन और 66.35 प्रतिशत क्लोरीन पाई जाती है। यह जल में घुलनशील है और ताप में वृद्धि के साथ ही इसकी घुलनशीलता बढ़ती जाती है। ज्ञातव्य है कि 20 डि.से. पर इसकी घुलनशीलता 37.2 और 60 डि.से. पर 55.3 होती है।

फर्टिलाइजर ग्रेड के अमोनियम क्लोराइड में निम्नांकित विशेषताएं होती हैं:

विवरण	भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा
क. अमोनियाई नाइट्रोजन की अधिकतम मात्रा	25.00
ख. अमोनियम क्लोराइड के अलावा क्लोराइड की अधिकतम मात्रा, सोडियम क्लोराइड के रूप में	1.50
ग. सल्फेट (सोडियम सल्फेट के रूप में) की अधिकतम मात्रा	0.50

घ.	कार्बोनेट की (सोडियम बाइकार्बोनेट के रूप में) अधिकतम मात्रा	0.30
च.	जल में अघुलनशील सामग्री	0.10

मिट्टी में अमोनियम क्लोराइड की अभिक्रिया साधारणतया अमोनियम सल्फेट के समान ही होती है। अमोनियम क्लोराइड के प्रयोग से मिट्टी में अम्लता उत्पन्न होती है। प्रति 100 किलोग्राम उर्वरक के इस्तेमाल से औसतन 128 किलोग्राम कैल्शियम कार्बोनेट के समतुल्य अम्लता उत्पन्न होती है। यदि भार की दृष्टि से देखा जाए तो यह अमोनियम सल्फेट से कहीं अधिक है, परंतु उर्वरक में नाइट्रोजन की मात्रा के अनुसार यह कम है।

अमोनियम नाइट्रेट

अमोनियम नाइट्रेट विश्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाइट्रोजनी उर्वरक है। उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होने वाले अमोनियम नाइट्रेट में 33-34 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है, जिसका आधा भाग अमोनियम रूप में तथा शेष आधा भाग नाइट्रेट के रूप में होता है।

हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड, राउरकेला में विस्फोटकों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए इसका निर्माण किया जाता है।

गुणधर्म एवं मिट्टी में अभिक्रिया

अमोनियम नाइट्रेट एक सफेद रवेदार पदार्थ है जो पानी में घुलनशील है। ताप में वृद्धि के साथ ही इसकी घुलनशीलता भी बढ़ जाती है। ज्ञातव्य है कि शून्य डि.से. पर इसकी घुलनशीलता 187 और 40 डि.से. पर 297 होती है। इसका गलन बिंदु 170.4 डि.से. और घनत्व 1.725 होता है। शुद्ध लवण में नाइट्रोजन की मात्रा 35.0 प्रतिशत और उर्वरक ग्रेड लवण में 33.5 प्रतिशत होती है। अमोनियम नाइट्रेट के लिए क्रांतिक आपेक्षिक आर्द्रता 66.5 मानी गई है जबकि

यूरिया और अमोनियम सल्फेट के लिए क्रांतिक आर्द्रता क्रमशः 79 और 88 होती है। गर्म करने पर अमोनियम नाइट्रेट विघटित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप नाइट्रोजन के विषैले आक्साइडों का निर्माण होता है।

अमोनियम नाइट्रेट यद्यपि ज्वलनशील नहीं है, फिर भी इसे आग या लपट से दूर रखना चाहिए क्योंकि यह एक विस्फोटक पदार्थ है। इसे ज्वलनशील पदार्थों, जैसे - भूसा, बुरादा आदि के नजदीक नहीं रखना चाहिए। चूंकि यह एक आर्द्रताग्राही उर्वरक है, अतः ढेले बनने की दशा में इसे हथोड़े से नहीं तोड़ना चाहिए अन्यथा आग लगने से विस्फोटक होने का खतरा रहता है।

ज्ञातव्य है कि नाइट्रेट-नाइट्रोजन का अमोनियाई नाइट्रोजन की अपेक्षा शीघ्र निक्षालन होता है। हल्के गठन वाली कंकड़युक्त मिट्टियों में निक्षालन अपेक्षाकृत अधिक होता है, क्योंकि ऐसी मिट्टियों की जलधारण शक्ति कम होती है। नाइट्रेट ऋणायन होने के कारण मृदा पर अधिशोषित नहीं होता है। फसल द्वारा नाइट्रोजन का उपयोग न होने पर यह सिंचाई या वर्षा-जल के माध्यम से निक्षालित हो जाता है। जलाक्रांत मिट्टियों में नाइट्रेट-नाइट्रोजन विनाइट्रीकरण की क्रिया के फलस्वरूप नाइट्रस ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन गैस के रूप में परिवर्तित होकर वायुमंडल में विलीन हो जाता है।

मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्मजीव, नाइट्रेट के अवशिष्ट भाग का उपयोग अपने शारीरिक ऊतकों के निर्माण हेतु करते हैं। जलाक्रांत दशाओं में ऑक्सीजन की कमी हो जाने पर मिट्टी के सूक्ष्म जीव/श्वसन हेतु नाइट्रेट में उपस्थित ऑक्सीजन का उपयोग करने लगते हैं और इस प्रकार नाइट्रेट-नाइट्रोजन के गैस रूप में परिवर्तन के फलस्वरूप नाइट्रोजन की हानि होने लगती है।

यह उर्वरक हल्के गठन वाली बलुई मिट्टियों की तुलना में भारी गठन वाली मटियार मिट्टियों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होता है।

साथ ही यह क्षारीय, उदासीन अथवा अम्लीय मिट्टियों के लिए भी उपयुक्त होता है।

अमोनियम नाइट्रेट के प्रयोग से मिट्टी में अम्लता उत्पन्न होती है। प्रति 100 किलोग्राम उर्वरक के इस्तेमाल से उत्पन्न अम्लता को दूर करने के लिए 60 किलोग्राम कैल्शियम कार्बोनेट की आवश्यकता पड़ती है।

कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट

अमोनियम नाइट्रेट, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, उष्मा और आघात के प्रति अत्यंत संवेदनशील होने के साथ ही इसकी नमी शोषण क्षमता भी बहुत अधिक है। 86 डिग्री फारेनहाइट तापमान पर इसमें 59.4 प्रतिशत नमी पाई जाती है। इन कमियों को दूर करने के लिए अमोनियम नाइट्रेट को अवक्षेपित कैल्शियम कार्बोनेट के साथ मिलाकर कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट बनाया जाता है।

भारत में कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट के उत्पादन हेतु कच्चे पदार्थ के रूप में अमोनिया, नाइट्रिक अम्ल, चूना, पत्थर या डोलोमाइट और साबुन की आवश्यकता पड़ती है।

अमोनिया की 53 प्रतिशत सांद्रता वाले नाइट्रिक अम्ल से अभिक्रिया कराके अमोनियम नाइट्रेट प्राप्त किया जाता है। इस विलयन को सांद्रित करके फिर चूना पत्थर के साथ क्रिया कराई जाती है, जिसके परिणामस्वरूप 25 प्रतिशत नाइट्रोजन वाला कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट उर्वरक प्राप्त होता है। प्राप्त उर्वरक के दानों पर साबुन पत्थर के विलयन की पर्त चढ़ा दी जाती है।

रासायनिक दृष्टि से कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट, चूना और अमोनियम नाइट्रेट का समान मिश्रण है। इस उर्वरक में नाइट्रेट नाइट्रोजन और अमोनियम नाइट्रोजन बराबर मात्रा में उपस्थित होते हैं। अमोनियम नाइट्रेट में चूना मिला देने से आग पकड़ने और विस्फोट होने का खतरा

नहीं रहता है। इस उर्वरक का इस्तेमाल आमतौर पर सभी दशाओं में सुरक्षित एवं निरापद रहता है। इसकी भंडारण क्षमता भी अच्छी होती है।

मिट्टी में अभिक्रिया

इस उर्वरक में अमोनियम नाइट्रेट की ही तरह नाइट्रोजन, अमोनियम नाइट्रेट दोनों ही रूपों में पाया जाता है। यद्यपि यह गुण फसलों के लिए लाभकारी होता है, किंतु जलाक्रांत मिट्टियों में नाइट्रेट की हानि हो जाती है। इसी प्रकार हल्के गठन वाली बलुई मिट्टियों में नाइट्रोजन की क्षति निक्षालन द्वारा हो जाती है। कैल्शियम कार्बोनेट की उपस्थित होने के कारण मिट्टी में इसका उदासीन प्रभाव होता है।

सोडियम नाइट्रेट

यह नाइट्रोजन के प्राकृतिक रूप में पाए जाने वाले साधनों में से एक है। सर्वप्रथम सन् 1809 ई. में चिली देश में इसके भंडारों का पता थेडेन्स हीके ने लगाया था। इसलिए इसको चिली साल्ट पीटर के नाम से भी पुकारा जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा नार्वे में इसको अमोनिया से संश्लेषित किया जाता है। भारत में इसे मुख्यत: चिली से आयात किया जाता है।

सोडियम नाइट्रेट के निर्माण की दो विधियां प्रचलित हैं:

प्राकृतिक खनिज से

चिली में खानों से प्राप्त प्राकृतिक लवण में सोडियम क्लोराइड, सोडियम सल्फेट, जिप्सम, बोरेट्स, आयोडेट्स, मिट्टी आदि की अशुद्धियां विद्यमान रहती है। इस अशुद्ध लवण (खनिज) को गर्म जल में घोलकर हिमांक विंदु तक ठंडा करते हैं जिसके फलस्वरूप सोडियम नाइट्रेट का क्रिस्टलन हो जाता है। इस क्रिस्टलीय उत्पाद को सेन्ट्रीफ्यूज द्वारा पृथक् करके सोडियम नाइट्रेट उर्वरक प्राप्त किया जाता

है जो लगभग 98% शुद्ध होता है।

संश्लेषण विधि

इस विधि में कोयले के भंजक आसवन से प्राप्त N_2 गैस को H_2 से संयुक्त करके अमोनिया बनाई जाती है जिसे ऑक्सीकृत करके NO_2 बनाई जाती है। इस गैस को सोडियम कार्बोनेट में शोषित करके सोडियम नाइट्रेट का विलयन बनाया जाता है। इस विलयन को गर्म करके ठंडा करने पर ठोस सोडियम नाइट्रेट बन जाता है।

गुण

यह एक शीघ्र घुलने वाला क्षारीय उर्वरक है जिसमें संपूर्ण नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में होती है:

नाइट्रेट नाइट्रोजन	16.0%
तुल्यांक क्षारकता	29.0%
सोडियम	27.0%
आयोडेट्स	सूक्ष्म मात्रा
बोरेट्स	सूक्ष्म मात्रा
सल्फेट्स	सूक्ष्म मात्रा

मृदा में आचरण एवं पौधों पर प्रभाव

सोडियम नाइट्रेट में नाइट्रोजन के रूप में होती है जो पौधों को शीघ्र प्राप्य होती है। मृदा में उपयोग करने पर यह नमी शोषित करके आयनित हो जाता है तथा Na^+ तथा NO_3^- आयन देता है:

$$NaNO_3 \leftrightarrow Na^+ + NO_3^-$$

जल में शीघ्र विलेय होने के कारण इसका अधिकांश भाग पौधों

द्वारा अवशोषण से पूर्व ही लीचिंग द्वारा नष्ट हो जाता है। इसमें 27 प्रतिशत सोडियम होता है, अत: इसकी प्रकृति क्षारीय होती है तथा 100 किग्रा. सोडियम नाइट्रेट मृदा में 29 किग्रा. शुद्ध चूने के समतुल्य क्षारता उत्पन्न करता है। क्षारीय प्रकृति के कारण यह अम्लीय मृदाओं के लिए उपयुक्त उर्वरक है।

सोडियम नाइट्रेट का उपयोग प्राय: असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, कर्नाटक, केरल व महाराष्ट्र की अम्लीय मृदाओं में किया जाता है। चुकंदर व कपास के लिए यह सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसको रबी की फसलों में टॉप तथा साइड ड्रैसिंग के रूप में प्रयोग करना अधिक लाभकारी है। सूक्ष्म तत्वों, जैसे–मैंगनीज, बोरॉन, तांबा, जस्ता आदि की अल्प मात्रा इसके प्रभाव में वृद्धि करती है।

हल्की, उदासीन से अम्लीय पी.एच. वाली मृदाओं में जिनका जल निकास ठीक होता है इस उर्वरक के प्रयोग को कहा जाता है। आर्द्र क्षेत्रों में इसका उपयोग लाभदायक नहीं है। अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर सोडियम के आधिक्य के कारण मृदा संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यूरिया

भारत में अत्यधिक प्रचलित नाइट्रोजनधारी उर्वरक यूरिया ही है। अन्य नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की तुलना में इसमें नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पाया जाता है।

निर्माण-विधि

सन् 1930 के पूर्व यूरिया का उत्पादन साधारणतया कैल्शियम साइनामाइड से किया जाता था। किंतु सन् 1945 से यूरिया का व्यापारिक उत्पादन अमोनियम कार्बोनेट के ऊष्माक्षेपक संश्लेषण एवं तत्पश्चात् जलनिकास द्वारा उर्वरक प्राप्त करने के सिद्धांत पर आधारित है।

यूरिया का निर्माण निम्नलिखित अभिक्रियाओं के फलस्वरूप होता है:

$$2NH_3 + CO_2 \longrightarrow NH_2COONH_4$$

अमोनिया + कार्बन डाइऑक्साइड — अमोनियमकार्बामेट

$$NH_2COONH_4 \longrightarrow NH_2CONH_2 + H_2O$$

अमोनियम कार्बामेट — यूरिया + जल

गुणधर्म एवं मृदा में अभिक्रिया

यूरिया कार्बोनिक अम्ल का डाइएमाइड है। यह छोटे-छोटे सफेद रंग के गोल दानों के रूप में पाया जाता है। इसमें नमी शोषण करने की विशेषता पाई जाती है। तापमान बढ़ने पर इसकी नमी ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है। यूरिया को कैल्शियम नाइट्रेट के अलावा अन्य लवणों के साथ मिलाने पर प्राप्त उर्वरक मिश्रण और भी आर्द्रताग्राही हो जाता है। फर्टिलाइजर कन्ट्रोल आर्डर के अनुसार उर्वरक ग्रेड यूरिया में निम्नांकित विशिष्टताएं होनी चाहिए:

विवरण	भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा	
	बिना लेपित	लेपित
नमी की अधिकतम मात्रा	1.0	0.5
कुल नाइट्रोजन की न्यूनतम मात्रा (सूखे आधार पर)	46.0	45.0
बाइयुरेट की अधिकतम मात्रा	1.5	1.5

भारत में तैयार किए जाने वाले यूरिया पर किसी प्रकार का लेप नहीं होता है, परंतु विदेशों से आयातित यूरिया लेपित होती है।

दानेदार उर्वरक का आकार ऐसा होना चाहिए कि अंतर्राष्ट्रीय मानक

की 320 नंबर की छलनी से इसकी संपूर्ण मात्रा छन जाए और 100 नंबर की छलनी पर इसकी 80 प्रतिशत मात्रा रुक जाए। प्रिल के रूप में उर्वरक ऐसा होना चाहिए कि वह 200 नंबर की छलनी से पूरा-पूरा छन जाए परंतु उसका 80 प्रतिशत भाग 100 नंबर की छलनी पर रुक जाए।

विभिन्न नाइट्रोजनी उर्वरकों में यूरिया सबसे सस्ता उर्वरक है। यह पानी में अत्यंत घुलनशील है। मिट्टी में इसका अवशेष नहीं बचता। इससे आग लगने या विस्फोट होने का खतरा नहीं रहता।

अन्य नाइट्रोजनी उर्वरकों की अपेक्षा इसका प्रभाव अल्प अम्लीय होता है। एक किलोग्राम नाइट्रोजन देने के लिए इस्तेमाल किए गए विभिन्न नाइट्रोजनी उर्वरकों से उत्पन्न अम्लता को उदासीन करने के लिए आवश्यक शुद्ध कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा यूरिया के लिए केवल 1.7 किलोग्राम होती है जबकि अमोनियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट और अमोनियम क्लोराइड के लिए यह मात्रा क्रमशः 5.2, 3.6 और 5.1 किलोग्राम होती है।

यूरिया का मिट्टी में इस्तेमाल करने के साथ ही घोल के रूप में इसका पर्णीय छिड़काव भी किया जाता है। यूरिया के घोल में कीट एवं रोगजनक दवाइयों को उचित मात्रा में मिलाकर सफलतापूर्वक छिड़काव किया जा सकता है।

यूरिया को फॉस्फोरस एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों के साथ मिलाया जा सकता है, परंतु उर्वरक मिश्रण तैयार करने के तुरंत बाद इसे इस्तेमाल कर लेना चाहिए। यूरिया को सुपरफास्फेट के साथ मिला कर रख देने से उर्वरक का जल विलेय फॉस्फोरस (मोनो कैल्शियम फास्फेट) जल अविलेय रूप (डाइकैल्सियम फास्फेट) में बदल जाता है। इसे म्यूरेट ऑफ पोटाश के साथ मिलाने पर उर्वरक मिश्रण नम हो जाता है।

यूरिया को मिट्टी में मिलाने पर सर्वप्रथम इसका जल अपघटन होता है, जिससे अमोनिया उत्पन्न होती है। यह अमोनिया बाद में नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अधिकांश पौधे नाइट्रेट के रूप में ही नाइट्रोजन का उपयोग करते हैं। उल्लेखनीय है कि एन्जाइम की मदद से यूरिया का जल अपघटन होता है जिससे अमोनिया प्राप्त होती है, जबकि अमोनिया का नाइट्रेट रूप में परिवर्तन जीवाणुओं द्वारा होता है। इन दोनों परिवर्तनों के दौरान नाइट्रोजन की हानि की संभावना बनी रहती है। नाइट्रोजन की हानि कितनी मात्रा में होती है यह जिन परिस्थितियों में यूरिया का प्रयोग किया जाता है, उस पर निर्भर करता है।

यूरिया का जल अपघटन

यूरिया के जल अपघटन में यूरिएज एंजाइम उत्प्रेरक का काम करता है। ज्ञातव्य है कि यह एंजाइम पौधों तथा सूक्ष्मजीवों से प्राप्त होता है। रासायनिक अभिक्रिया को निम्नांकित ढंग से दर्शाया जा सकता है –

$$(NH_4)_2\ CO + 2H_2O \xrightarrow{\text{यूरिएज}} (NH_4)_2\ CO_3$$

यूरिया + जल → अमोनियम कार्बोनेट (अस्थिर)

साधारणतया यह देखा गया है कि यूरिया का जल अपघटन 24 घंटे के अंदर हो जाता है। आमतौर पर भारी गठन वाली मटियार मिट्टी में अपघटन की क्रिया हल्के गठन वाली बलुई मिट्टी की तुलना में अधिक तेजी से संपन्न होती है। इसके अलावा अधिक और उर्वर मिट्टी में कम उर्वर मिट्टी की अपेक्षा अपघटन तेजी से होता है। इसी प्रकार उदासीन मिट्टियों में अम्लीय, चुनही या लवणीय एवं क्षारीय मिट्टियों की अपेक्षा यूरिया का जल अपघटन तेजी से होता है। अपेक्षाकृत अधिक ताप की दशा में यूरिया का जल अपघटन तेजी से होता है। नम दशा

में शुष्क दशा की अपेक्षा यूरिया का जल अपघटन तेजी से होता है।

इस प्रकार उत्पन्न अमोनिया का उपयोग धान-जैसी कुछ फसलों के पौधों द्वारा या तो सीधे ही कर लिया जाता है, या अमोनिया का नाइट्रीकरण होता है, या मिट्टी में अभिक्रिया क्षेत्र के अभाव में रंध्र-कूपों के माध्यम से भूमि की ऊपरी सतह पर आ जाने से वातावरण में इसका छीजन हो जाता है या कुछ प्रसरणशील मृत्तिका खनिजों के जालक में यह यौगिकीकृत हो जाता है।

नाइट्रोजनयुक्त तरल उर्वरक

नाइट्रोजनयुक्त तरल उर्वरकों का प्रयोग डेनमार्क तथा अमेरिका-जैसे विकसित देशों में बहुतायत से हो रहा है। आजकल मैक्सिको, फ्रांस, इंग्लैंड, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, पूर्वी जर्मनी और रूस में भी इन उर्वरकों का प्रचलन काफी तेजी से बढ़ रहा है। इन देशों में सीधे इस्तेमाल किए जाने वाले नाइट्रोजन की कुल मात्रा का लगभग 50 प्रतिशत निर्जल अमोनिया, तरल अमोनिया और अमोनियम नाइट्रेट अथवा यूरिया के विलयन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

साधारणत: इस्तेमाल किए जाने वाले विभिन्न नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों की तुलना में तरल उर्वरकों से कुछ विशेष लाभ भी है। आमतौर पर इनमें दी गई प्रति इकाई नाइट्रोजन की कीमत अन्य उर्वरकों की तुलना में कम बैठती है। साथ ही यदि यंत्र उपलब्ध हों तो इनका इस्तेमाल भी ठोस उर्वरकों की अपेक्षा विशेष सुगमतापूर्वक और सही ढंग से किया जा सकता है। हां, इतना अवश्य है कि संक्षारक स्वभाव के कारण इन्हें इस्तेमाल करने के लिए विशेष प्रकार के यंत्र और भंडारण के लिए विशेष प्रकार के बर्तनों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से अधिकांश का इस्तेमाल दाब यंत्रों की मदद से ही संभव हो पाता है।

हमारे देश में निर्जल अमोनिया का इस्तेमाल विभिन्न कृषि प्रक्षेत्रों पर छोटे पैमाने पर किया गया है। सन् 1975 में फर्टिलाइजर कारपोरेशन ऑफ इंडिया द्वारा कृषि में निर्जल अमोनिया की उपयोगिता संबंधी अनुसंधान कार्य अपेक्षाकृत एक बड़े पैमाने पर नांगल (पंजाब), गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) और दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल) में प्रारंभ किया गया। निर्जल अमोनिया के इस्तेमाल हेतु डेनमार्क से आयात किए गए यंत्र उपयोग में लाए गए। इन शोध कार्यों से आशाजनक सफलता मिली है। यहां इन उर्वरकों के गुण-दोष, मिट्टी में अभिक्रिया तथा हमारे देश में इनके इस्तेमाल की संभावनाओं पर विचार किया गया है।

निर्जल अमोनिया

साधारण दाब एवं ताप की दशा में निर्जल अमोनिया एक रंगहीन और तीखी गंध वाली गैस के रूप में पाई जाती है, परंतु उचित दाब के प्रभाव से इसे आसानी से तरल पदार्थ के रूप में परिवर्तित कर लिया जाता है, जिससे इसके भंडारण एवं परिवहन में सुविधा हो जाती है। लेकिन निर्जल अमोनिया साधारणतया विस्फोटक नहीं है परंतु इसमें 16.20 प्रतिशत के लगभग वायु हो जाने पर यह चिंगारी देकर जल उठता है। अमोनिया में तेल की उपस्थिति से विस्फोट की संभावना बढ़ जाती है।

भंडारण एवं रख-रखाव

उल्लेखनीय है कि अमोनिया की पीतल धातु से बड़ी ही जल्दी प्रतिक्रिया होने लगती है, अत: इसे पीतल के बजाय इस्पात के टैंकों में रखना चाहिए।

गुणधर्म एवं मिट्टी में अभिक्रिया

निर्जल अमोनिया में 82 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है। तरल रूप में

अमोनिया को पानी की तरह पंप किया जा सकता है। तरल उर्वरक का इस्तेमाल विशेष प्रकार के यंत्र द्वारा सतह से 12-15 सेमी. की गहराई पर किया जाता है।

जलीय अमोनिया

निर्जल अमोनिया को जल में घोलकर जलीय विलयन तैयार किया जाता है। इसमें साधारणत: 20 प्रतिशत नाइट्रोजन (24.4 प्रतिशत अमोनिया) पाया जाता है। ताप पर नियंत्रण द्वारा इस जलीय उर्वरक में नाइट्रोजन की मात्रा 26 प्रतिशत की जा सकती है।

निर्जल अमोनिया की तुलना में इसका प्रयोग विशेष आसान होता है। यह उर्वरक विलयन निर्जल अमोनिया के विपरीत दबावविहीन होता है।

इस उर्वरक विलयन में अन्य नाइट्रोजनयुक्त सामग्रियां मिलाई जा सकती हैं। इसमें निर्जल अमोनिया की तुलना में पोषक तत्व की मात्रा कम होने के कारण इसकी ढुलाई का खर्च अधिक पड़ता है।

नाइट्रोजन विलयन

अमोनियम नाइट्रेट और यूरिया-जैसे उर्वरकों को घोलकर विलयन तैयार किया जाता है। इन उर्वरकों को विभिन्न अनुपात में घोलकर वांछित उर्वरक विलयन तैयार किया जाता है। विलयन में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने के लिए कभी-कभी स्वतंत्र अमोनिया भी मिला दी जाती है।

साधारणत: दो प्रकार के नाइट्रोजन विलयन तैयार किए जाते हैं: 1. कम दबाव पर तैयार विलयन; 2. बिना दबाव के तैयार विलयन। पहले प्रकार के विलयन में स्वतंत्र अमोनिया मिलाई जाती है। इसमें

नाइट्रोजन की मात्रा 41 प्रतिशत होती है। बिना दबाव के तैयार किए गए विलयन की प्रकृति संक्षारक होने के कारण इसे संक्षारक प्रतिरोधी बर्तनों में रखना चाहिए। थोड़े दबाव पर तैयार किए गए विलयन का प्रयोग भूमि की सतह के थोड़ा नीचे किया जाता है।

मंद गति से नाइट्रोजन मुक्त करने वाले उर्वरक

विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में नाइट्रोजन की हानि निक्षालन अथवा विनाइट्रीकरण द्वारा हो जाती है। इसीलिए नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रयोग एक बार के बजाय कई बार में करने की संस्तुति की जाती है। नाइट्रोजन की निक्षालन या विनाइट्रीकरण द्वारा होने वाली इस हानि को मंद गति से नाइट्रोजनमुक्त करने वाले उर्वरकों के प्रयोग द्वारा काफी हद तक कम किया जा सकता है।

आजकल उपलब्ध विभिन्न प्रकार के मंद गति से नाइट्रोजनमुक्त करने वाले उर्वरकों को दो समूहों में बांट सकते हैं -

1. ऐसे रासायनिक पदार्थ जिनमें मंद गति से नाइट्रोजन मुक्त करने की क्षमता होती है, जैसे - यूरिया फार्म, आइसाब्यूटाइलिडीन डाइयूरिया इत्यादि।

2. **लेपित उर्वरक:** अर्धपारगम्य झिल्ली के सहरा आवरण वाले उर्वरक या निष्क्रिय सामग्री, जैसे - गंधक लेपित यूरिया (सल्फर कोटेड यूरिया)।

पहले प्रकार के मंद गति से नाइट्रोजन मुक्त करने वाले कुछ उर्वरकों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों का विवरण सारणी 5.1 में दिया गया है।

सारणी 5.1: मंद गति से नाइट्रोजन मुक्त करने वाले प्रमुख उर्वरकों की विशेषताएं

उर्वरक	नाइट्रोजन की प्रतिशत मात्रा	घुलनशील (ग्राम प्रति 100 मिमी. में)
यूरिया फार्म. (यू.एफ.)	38	-
आइसाब्यूटाइलिडीन डाइयूरिया	32	0.01-0.1
ऑक्सामाइड	31.8	0.02
क्रोटोनिलिडिन डाइयूरिया (सी.डी.यू.)	32.54	0.12
ग्वानाइल यूरिया फॉस्फेट (जी. यू.)	28	2.14

यूरिया फार्म

इस उर्वरक में नाइट्रोजन की कुल मात्रा 38 प्रतिशत होती है। इसका 28 प्रतिशत नाइट्रोजन ठंडे जल में अविलेय होता है। इसमें यूरिया नाइट्रोजन की मात्रा 1.5 प्रतिशत तथा आभासी घनत्व 40 पौंड प्रति घन फुट होता है। यूरिया फार्म साधारणत: विभिन्न अणुभार एवं जल विलेयता वाले मिथाइलीन यूरियापालीमर का मिश्रण होता है। ये उर्वरक थोड़ी ही मात्रा में नमी अवशोषित करते हैं।

ठंडे जल में घुलनशील नाइट्रोजन का नाइट्रीकरण 3-4 सप्ताह में बड़ी ही आसानी से हो जाता है। अविलेय नाइट्रोजन का 6-7 प्रतिशत प्रतिमाह की दर से नाइट्रीकरण होता है। ज्ञातव्य है कि थोड़ी अम्लीय दशा में नाइट्रीकरण की क्रिया अपेक्षाकृत तेजी से संपन्न होती है। मिट्टी की जलधारण क्षमता की 50 प्रतिशत नमी नाइट्रीकरण के लिए सर्वोत्तम सिद्ध हुई है। ज्ञातव्य है कि यूरिया फार्म को तैयार करने के लिए

ऐसा यूरिया, जिसमें 2.5 प्रतिशत तक बाइयूरेट पाया जाता है, इस्तेमाल किया जा सकता है।

क्रोटोनिलिडिन डाइयूरिया

इस उर्वरक में 28 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है, जिसमें से लगभग 2.8 प्रतिशत नाइट्रेट रूप में होता है। इस उर्वरक का मिट्टी में अपघटन बहुत धीरे-धीरे होता है, परिणामस्वरूप फसल को मंद गति से नाइट्रोजन मिलता रहता है। उर्वरक के कणों के आकार में वृद्धि होने से उर्वरक के अवशेष प्रभाव में भी वृद्धि हो जाती है। ऐसा देखा गया है कि इस उर्वरक द्वारा 500-700 पौंड की दर से नाइट्रोजन का इस्तेमाल करने पर भी फसल पर किसी प्रकार का कुप्रभाव नहीं पड़ा।

ऑक्सामाइड

मंदगति से नाइट्रोजन मुक्त करने वाले इस उर्वरक में 31.8 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है। उर्वरक के कणों के आकार में वृद्धि होने से नाइट्रोजन की उपलब्धता कम हो जाती है। इस उर्वरक के जल अपघटन के फलस्वरूप ऑक्जेलिक अम्ल बनता है।

गंधक लेपित उर्वरक

दूसरे प्रकार के मंदगति से नाइट्रोजन मुक्त करने वाले उर्वरकों की श्रेणी में गंधक लेपित यूरिया प्रमुख है। इस उर्वरक का विकास टेनसी वैली अथॉरिटी, अल्बामा, अमेरिका द्वारा सर्वप्रथम किया गया। इसके बाद इंग्लैंड की इंपीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज द्वारा भी इसका उत्पादन किया गया। विभिन्न कंपनियों द्वारा बनाए गए इस उर्वरक के संघटन में थोड़ा अंतर पाया जाता है।

निर्माण विधि

टेनेसी वैली अथॉरिटी द्वारा विकसित की गई विधि से गंधक

लेपित यूरिया तैयार करने के लिए एक रोटरी ड्रम में यूरिया के दानों पर समान रूप से गंधक का छिड़काव ऊपर से किया जाता है। गंधक की आवश्यक मात्रा पूरी उर्वरक की मात्रा की 15-19 प्रतिशत होती है। गंधक की मात्रा, साधारणतया आवरण की वांछित क्षमता एवं उर्वरक के दानों के आकार-प्रकार पर निर्भर करती है। फिर गंधक लेपित उर्वरक के दानों पर उर्वरक भार के 2 प्रतिशत के बराबर किसी सीलान्ट का छिड़काव कर दिया जाता है। पहले सूक्ष्म रवायुक्त मोम का इस्तेमाल किया जाता था, किंतु अब हाल में पॉलीइथाइलीन, पेट्रोलियम पदार्थों से प्राप्त मोम, चावल का कना आदि का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है।

इसके बाद लेपित यूरिया को ठंडा कर लिया जाता है और पूरे भार के 2 प्रतिशत के बराबर डायटमी मृदा सुधारक का प्रयोग करके अंतिम रूप से लेपन क्रिया की जाती है।

गुणधर्म एवं मिट्टी में अभिक्रिया

गंधक लेपित यूरिया में 36 37 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है। यह लेपन के लिए इस्तेमाल की गई गंधक की मात्रा पर निर्भर करता है। इंपीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज द्वारा तैयार किए गए उर्वरक में नाइट्रोजन की मात्रा 30-32.6 प्रतिशत होती है। इसके अलावा इसमें 27-34 प्रतिशत गंधक और 2 प्रतिशत मोम भी होता है।

साधारणत: गंधक लेपित यूरिया के दानों को मिट्टी में मिला देने से सतह पर प्रयोग करने की तुलना में नाइट्रोजन अपेक्षाकृत तेजी से मुक्त होता है। इसके साथ ही ताप तथा नमी में वृद्धि होने से नाइट्रोजन विशेष घुलनशील होता है। लेपन के लिए प्रयुक्त गंधक की मात्रा का नाइट्रोजन की उपलब्धता पर प्रभाव पड़ता है। एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि 9 एवं 15 प्रतिशत गंधक की मात्रा का लेपन के लिए इस्तेमाल करने पर प्रतिदिन 1.0 और 0.3 प्रतिशत नाइट्रोजन घुलनशील हुआ।

फास्फेटी उर्वरक

फॉस्फोरस पौधों की वृद्धि एवं प्रजनन के लिए आवश्यक तत्व है जो प्रत्येक जीवित कोशिकाओं में पाया जाता है। पौधे मृदा से अधिकांश प्राथमिक आर्थोफास्फेट के रूप में तथा थोड़ी मात्रा में द्वितीयक आर्थोफास्फेट के रूप में लेते हैं। पौधों में गतिशील होने के कारण फॉस्फोरस की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पौधे की पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। फॉस्फोरस की कमी से पौधों की वृद्धि व उपज कम हो जाती है। मक्का या कुछ अन्य पौधों की पत्तियों में बैंगनी या लाल रंग का होना फॉस्फोरस की कमी के कारण होता है। फॉस्फोरस पौधे की सभी क्रियाओं, जैसे–ऊर्जा परिवर्तन, प्रकाश-संश्लेषण, शर्कराओं और स्टार्च के भंजन, पौधे के अंदर तत्वों के परिवहन और आनुवंशिक लक्षणों के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरण में भाग लेता है।

फॉस्फोरस उर्वरकों में फॉस्फोरस की मात्रा पेन्टा-ऑक्साइड प्रतिशत में व्यक्त की जाती है।

फास्फेटिक उर्वरकों का वर्गीकरण

फॉस्फोरस पेन्टा-ऑक्साइड जल में विलेय होकर फॉस्फोरस के भिन्न-भिन्न आयन देता है जिसकी विलेयता भी भिन्न होती है। इनमें तीन प्रकार के आयन प्रमुख हैं।

$$P_2O_5 + H_2O \xrightarrow{+H_2O} HPO_3 \longrightarrow H_3PO_4^{--} \longrightarrow H_2PO_4^{-} \longrightarrow H_2PO_4^{--} \longrightarrow HPO_4^{--} \longrightarrow PO_4$$

अविलेय जल विलेय साइट्रेट विलेय

यह अम्ल आयन कैल्शियम से संयुक्त होकर भिन्न-भिन्न विलेयता के विभिन्न यौगिकों का निर्माण करते हैं। इन संयुक्त यौगिकों को विलेयता के आधार पर अग्रलिखित तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:

जल विलेय फॉस्फेटयुक्त उर्वरक

इन उर्वरकों में फॉस्फोरस जल विलेय मोनोफॉस्फेट के रूप में होता है। इस वर्ग के प्रमुख उर्वरक निम्नलिखित हैं:

1. सिंगल सुपर फॉस्फेट (16% P_2O_5)
2. ट्रिपल सुपरफॉस्फेट (40-42% P_2O_5)
3. मोनो अमोनियम फॉस्फेट (11%N 48% P_2O_5)
4. डाइ-अमोनियम फॉस्फेट (18%N 46% P_2O_5)

इनमें $H_2PO_4^-$ आयन के रूप में होता है।

साइट्रिक अम्ल अथवा साइट्रेट में विलेय फास्फेट युक्त उर्वरक

ये उर्वरक साइट्रिक अम्ल में विलेय होते हैं परंतु जल में अविलेय होते हैं। इन उर्वरकों में फास्फोरस HPO_4^{--} आयन के रूप में होता है जो डाइ-कैल्शियम फॉस्फेट ($CaHPO_4$) के रूप में संयुक्त होता है। उदाहरणार्थ:

1. बेसिक स्लैग (13-18% P_2O_5)
2. डाइ-कैल्शियम फॉस्फेट (34-36% P_2O_5)
3. हड्डी का चूरा (आंशिक घुलनशील)

अविलेय फॉस्फोरसयुक्त उर्वरक

इस श्रेणी में ऐसे उर्वरक सम्मिलित हैं जिनका फास्फोरस न तो जल में और न साइट्रिक अम्ल में विलेय होता है। यह केवल खनिज अम्लों में विलेय होता है। इसमें फॉस्फोरस [$Ca_3(PO_4)_2$] के रूप में रहता है। उदाहरणार्थ:

1. रॉक फॉस्फेट (18-40% P_2O_5)
2. हड्डी का चूरा (3-45% N 20-25 P_2O_5)

रॉक फास्फेट

भारत में रॉक फास्फेट के विशाल भंडार हैं। रासायनिक दृष्टि से यह एक प्राकृतिक एपेटाइट खनिज है, तथा इसका नाम फ्लोर-एपेटाइट है। भारत में रॉक फॉस्फेट के लगभग 14.5 करोड़ टन भंडार हैं जिसका मुख्य भाग उदयपुर तथा झमरकोटरा (राजस्थान), मसूरी, दर्मला तथा माले देवटा (उत्तर प्रदेश), कासीपत्तनम (आंध्र प्रदेश), पुरुलिया (पश्चिम बंगाल) में पाया जाता है।

उत्तर प्रदेश में इसे मसूरी रॉक फॉस्फेट के नाम से जाना जाता है। रॉक फॉस्फेट के इस भंडार का लगभग 60 प्रतिशत भाग फॉस्फेटिक उर्वरकों के निर्माण के अयोग्य है, और इस प्रकार फॉस्फेटिक उर्वरकों के निर्माण हेतु हमें अधिकांश रॉक फॉस्फेट विदेशों से आयात करना पड़ता है। अत: फॉस्फेटिक उर्वरकों के उच्च मूल्य तथा भारत में रॉक फॉस्फेट के पर्याप्त भंडारों को दृष्टिगत रखते हुए विगत कुछ वर्षों में रॉक फास्फेट को सीधे फॉस्फेटिक उर्वरक के रूप में प्रयोग करने के प्रयास किए गए हैं। हमारे देश में यह सुलभ सस्ता एवं उपयोगी उर्वरक सिद्ध हुआ है।

भारत में पाया जाने वाला विभिन्न रॉक फॉस्फेट का संगठन

भिन्न-भिन्न स्थानों में पाई जाने वाली रॉक फास्फेट के संगठन में काफी विविधता है। आठ प्रमुख स्थानों पर पाई जाने वाली रॉक फॉस्फेट का संगठन सारणी 5.2 में दिया गया है।

संगठन से स्पष्ट है कि विभिन्न रॉक फास्फेट की मात्राओं में काफी विभिन्नता होती है। यह मात्रा 14.5 से 36.2% तक होती है। रॉक फॉस्फेट को सीधे उर्वरक के रूप में प्रयोग के लिए सबसे महत्वपूर्ण इसमें CO_3 : PO_4 का अनुपात है। कार्बोनेट की मात्रा अधिक होने पर इसकी सक्रियता में वृद्धि होती है।

सारणी 5.2 : रॉक फास्फेट का रासायनिक संगठन (%)

रासायनिक अवयव	उदयपुर रॉक	झमरकोटरा रॉक	पुरुलिया रॉक	झबुआ रॉक	मालेदेवटा रॉक	थुस्ला रॉक	मसूरी रॉक	कासी पटनम
P_2O_5	32.05	24.85	26.30	28.60	14.45	17.17	19.40	36.18
Na_2O	0.44	0.15	0.13	0.04	0.15	0.44	0.16	0.52
Fe_2O_3	0.76	0.95	8.92	1.15	2.67	4.08	3.41	0.86
CaO	48.11	47.51	35.55	41.84	32.64	39.86	43.98	44.86
MgO	0.28	0.63	0.21	0.05	0.85	0.45	0.35	0.05
K_2O	0.12	0.10	0.36	0.18	0.91	0.42	0.43	0.01
AL_2O_3	0.75	0.80	3.32	1.92	3.77	1.94	1.78	0.07
SiO_2	9.35	8.43	10.64	19.65	25.57	9.65	12.48	1.70
CO_3^{--}	4.79	8.95	0.81	0.75	10.00	7.10	11.20	0.45
SO_4^{--}	0.28	1.10	0.12	0.07	6.00	13.20	4.20	0.10
F^-	2.90	3.00	2.80	3.00	2.70	2.80	2.40	2.70

स्रोत: भुजबल तथा मिस्त्री, फर्टिलाइजर न्यूज-पृष्ठ 28, सितंबर, 1984

मृदा में अभिक्रिया

रासायनिक दृष्टि से रॉक फॉस्फेट ट्राइ-कैल्शियम फॉस्फेट होता है, जो अविलेय होने के कारण पौधों को अप्राप्य होता है। इस प्रकार उदासीन या क्षारीय मृदाओं में रॉक फॉस्फेट की फॉस्फेटिक उर्वरक के रूप में कोई उपयोगिता नहीं होती है, परंतु अम्लीय मृदा अथवा किसी अम्लकारक पदार्थ के साथ रॉक फॉस्फेट का प्रयोग करने पर अप्राप्य फॉस्फेट, प्राप्य फॉस्फेट में बदल जाता है और सुपरफॉस्फेट तथा अन्य फॉस्फेटिक उर्वरकों की भांति प्रभावशाली होता है।

अम्लीय मृदा में रॉक फॉस्फेट का आचरण

अम्लीय मृदा में अम्लीयता कारक आयन H^+, Al^{+++}, Fe^{+++} आदि की अभिक्रिया द्वारा ट्राइ-कैल्शियम फॉस्फेट तथा अंत में मोनो कैल्शियम फॉस्फेट में परिवर्तित हो जाता है जो पौधों को शीघ्र प्राप्य होता है।

$$Al^{+++} + H^+ \rightarrow Al^{++}(OH) + H^+$$

अम्लीय मृदा

$$PO_4^{---} + H^+ \longrightarrow HPO_4^{--} \xrightarrow{+H^+} H_2PO_4^-$$

(रॉक फॉस्फेट में) साइट्रिक अम्ल में जल विलेय व
अविलेय व अप्राप्य विलेय व प्राप्य शीघ्र प्राप्य

क्षारीय मृदाओं में रॉक फॉस्फेट का आचरण

क्षारीय मृदा में रॉक फॉस्फेट से फॉस्फोरस की पौधों को उपलब्धि नगण्य होती है परंतु अकार्बनिक अम्लकारक, जैसे–पायराइट गंधक आदि तथा कार्बनिक अम्लकारक पदार्थ, जैसे–गोबर की खाद, गोबर का गारा, कंपोस्ट खाद, भूसा, पुआल आदि के साथ डालने पर इसका फॉस्फोरस घुलकर पौधों को प्राप्य हो जाता है। पायराइट के साथ संभावित

रासायनिक अभिक्रिया निम्नलिखित है:

पायराइट का ऑक्सीकरण

$$FeS_2 + 3O_2 \longrightarrow FeSO_4 + SO_2$$

$$SO_2 + 2H_2O + 2O_2 \longrightarrow 2H_2SO_4 \quad \text{.....(1)}$$

$$2FeS_2 + 7O_2 + 2H_2O \longrightarrow 2FeSO_4 + 2H_2SO_4 \quad \text{.....(2)}$$

$$FeSO_4 + 2H_2O \longrightarrow Fe(OH)_2 + H_2SO_4 \quad \text{.....(3)}$$

इस प्रकार पायराइट के ऑक्सीकरण से सल्फ्यूरिक अम्ल बनता है जो रॉक फॉस्फेट के सम्पर्क में आने पर निम्नलिखित क्रिया करता है:

$$3Ca_3(PO_4)_2 + CaF_2 + 7H_2SO_4 + 3H_2O \longrightarrow 3Ca(H_2PO_4)_2 + 7CaSO_4 + 2HF$$

सुपरफॉस्फेट (विलेय)

इस प्रकार खेत में रॉक फॉस्फेट तथा पाइराइट का मिश्रण (1:2) डालने पर वही क्रिया होती है जो कारखाने में सुपरफॉस्फेट के निर्माण के समय होती है। खेत में बना सुपरफॉस्फेट मृदा में उसी प्रकार क्रिया करता है जैसे कि सुपरफॉस्फेट खाद (कारखाने में बना) करती है। कार्बनिक पदार्थों से बने अम्ल भी इसी तरह व्यवहार करते हैं।

सल्फ्यूरिक अम्ल मिले रॉक फॉस्फेट का आचरण

गंधक के बड़े मूल्य के कारण अशुद्ध पायराइट से सल्फ्यूरिक अम्ल का निर्माण करके रॉक फास्फेट में मिलाया जाता है तथा इस मिश्रण को सीधे खेत में प्रयोग किया जाता है। इस अभिक्रिया से रॉक फॉस्फेट ट्राइ-कैल्शियम फॉस्फेट, मोनो कैल्शियम फॉस्फेट में परिवर्तित हो जाता है जो पौधों को शीघ्र प्राप्य है।

सुपरफॉस्फेट तथा रॉक फॉस्फेट के मिश्रण का आचरण

नवीन अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि रॉक फास्फेट तथा

सुपरफॉस्फेट (1:1) का मिश्रण उर्वरक के रूप में उतना ही प्रभावी होता है जितना कि अकेला सुपरफॉस्फेट होता है। मृदा में इस मिश्रण का प्रयोग करने से सुपरफॉस्फेट के विलेय व प्राप्त फॉस्फोरस से पौधों की प्रारंभिक आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं तथा खाद में सुपरफॉस्फेट का अम्लीय प्रभाव रॉक फॉस्फेट से फॉस्फोरस पौधों को उपलब्ध कराता है।

रॉक फॉस्फेट का फॉस्फोरस कल्चर के साथ प्रयोग

फॉस्फोरस को विलेय करने वाले सूक्ष्म जीवों का कल्चर प्रयोग करके रॉक फॉस्फेट का फॉस्फोरस विलेय बनाया जाता है जो पौधों को शीघ्र प्राप्य है। फॉस्फोरस कल्चर में ईस्ट, फन्जाई, बैक्टीरिया एक अथवा संयुक्त रूप से प्रयोग किए जाते हैं। इनमें निम्नलिखित जीवाणु प्रमुख हैं:

फन्जाई	माइकोराइजल फंजाई - एस्पर्जिलस, पैनीसीलियम
ईस्ट	स्वानीयोमायसिस
बैक्टीरिया	स्यूडोमोनास, बैसिलस

उपरोक्त जीवाणु ऐसे कार्बनिक अम्ल उत्पन्न करते हैं जिनसे फॉस्फोरस विलेय होकर पौधों को प्राप्त हो जाता है।

यद्यपि रॉक फॉस्फेट को सीधे उर्वरक के रूप में प्रयोग करने के लिए अनेक अनुसंधान किए गए हैं फिर भी यह उर्वरक के रूप में कुल फॉस्फोरस के 1% भाग की आपूर्ति करता है। इसको निम्नलिखित प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है –

1. अम्लीय मृदाओं (pH 5.5) में रॉक फॉस्फेट सीधे प्रयोग किया जा सकता है।

2. उदासीन अथवा क्षारीय मृदाओं में रॉक फॉस्फेट का प्रयोग पायराइट, सुपरफॉस्फेट, कार्बनिक पदार्थ (खाद) फॉस्फोरस कल्चर (जीवाणु)

तथा अशुद्ध सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ मिलाकर किया जा सकता है।

रॉक फॉस्फेट का प्रयोग बुवाई अथवा रोपाई से 1-2 सप्ताह पूर्व मृदा की निचली सतह (10-15 सेमी) में किया जाना चाहिए तथा अम्लकारक अथवा कार्बनिक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिला देना चाहिए। खेत में पर्याप्त नमी इसकी क्रियाशीलता में वृद्धि करती है। महीन व पर्याप्त कार्बोनेट वाली रॉक फास्फेट अधिक प्रभावकारी होता है। संपूर्ण मात्रा एक साथ देनी चाहिए। आंशिक रूप से अम्लीय रॉक फॉस्फेट सभी मृदाओं में सिंगल सुपरफास्फेट के समान लाभकारी होता है।

पौधों पर प्रभाव

रॉक फॉस्फेट का पौधों पर प्रभाव फॉस्फोरस की प्राप्यता पर निर्भर करता है। प्रारंभिक सूचनाओं के आधार पर यह देखा गया है कि अल्प अवधि की फसलों पर इसका प्रभाव त्वरित नहीं होता, परंतु दीर्घ अवधि वाली फसलों पर इसका प्रभाव अधिक होता है। सामान्यत: गेहूं, जौ, धान, मटर, मूंग, मूंगफली, गन्ना, आलू आदि फसलों के लिए यह एक प्रभावकारी उर्वरक सिद्ध हुआ है। वैसे अभी इस उर्वरक पर अनुसंधान चल रहे हैं।

फॉस्फेटिक उर्वरकों का निर्माण

रॉक फॉस्फेट में 55-80°% ट्राइ-कैल्शियम फॉस्फेट होता है जो जल तथा साइट्रिक अम्ल दोनों में अविलेय होता है। इसलिए फॉस्फेटिक उर्वरक बनने के लिए रॉक फॉस्फेट की सांद्र खनिज अम्लों से अभिक्रिया कराई जाती है।

सिंगल सुपरफॉस्फेट

सर्वप्रथम सन् 1840 ई. में लीबिग ने सुपरफॉस्फेट की हड्डियों पर गंधक के अम्ल की क्रिया से बनाया था। बाद में सन् 1842 ई.

में लेविस ने इसे खनिज फॉस्फेट तथा गंधक के अम्ल की क्रिया से प्राप्त किया। इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि सुपरफॉस्फेट का निर्माण निश्चय ही एक रासायनिक अभिक्रिया है।

वर्तमान में भी सुपरफॉस्फेट, रॉक फॉस्फेट पर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से बनाया जाता है। इसके अंतर्गत रॉक फॉस्फेट तथा सल्फ्यूरिक अम्ल की समान मात्रा लेकर बड़े डेन में जिसमें रोटर लगे रहते हैं, मिलाया जाता है। डेन में निम्नलिखित अभिक्रिया होती है :

$$3Ca_3(PO_4)_2\ CaFe_2 + 7H_2SO_4 + 3H_2O \longrightarrow 3Ca(H_2PO_4)_2H_2O + 7CaSO_4 + 2HF$$

रॉक फास्फेट — सुपरफास्फेट

डेन में इस मिश्रण को एक-दो दिन ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है। यहां से यह मिश्रण डेन के दूसरे छोर तक जाकर ठोस ढेर में परिवर्तित हो जाता है, जहां इसको घूमने वाले कटर से छोटे-छोटे कणों में काट लिया जाता है। इसके पश्चात् इस उत्पाद को भंडारण हेतु उपयुक्त स्थल पर जमा कर दिया जाता है। संशोधित पदार्थ को कणिकाओं अथवा दानों में बदलने के लिए उत्पाद को रोटरी ड्रम रेगुलेटर में डालकर भाप प्रवाहित की जाती है तथा उसे घुमाया जाता है। इस प्रकार उत्पाद का कणिकायन (ग्रेनुलेशन) हो जाता है। इन कणिकाओं को सुखाकर छान लिया जाता है।

आधुनिक विधि में डेन के स्थान पर शंकु की आकृति-जैसे मिश्रक प्रयोग किए जाते हैं जिनमें तापक तथा दबाव यंत्र लगे रहते हैं। मिश्रक के अंदर बारी-बारी से दबाव व निर्वात उत्पन्न किया जाता है जिससे उत्पाद समांग व भुरभुरा बनता है। क्रिया में बनी गैसों को चूषण पंप द्वारा यंत्र से बाहर निकाला जाता है। अंत में उत्पाद को रोटर में डालकर दानेदार बनाया जाता है जो दूसरे सिरे पर बने छिद्र से बाहर निकल जाता है।

रासायनिक संगठन की दृष्टि से सुपरफॉस्फेट का सूत्र $Ca(H_2PO_4)_2.H_2O$, $CaSO_4.2H_2O$ होता है, परंतु इसके साथ CaF_2, $Ca_3(PO_4)_2$, $CaHPO_4$, $Fe_2(SO_4)_2$, $Al_2(SO_4)_3$, SiO_2, $CaCO_3$, $MgCO_3$ आदि अशुद्धियां भी होती हैं।

ट्रिपल सुपरफॉस्फेट का निर्माण

सिंगल सुपरफॉस्फेट की भांति इसको भी रॉक फास्फेट से बनाया जाता है। परंतु इस बार सल्फ्यूरिक अम्ल के स्थान पर फॉस्फोरिक अम्ल का प्रयोग किया जाता है। रासायनिक अभिक्रिया निम्नलिखित प्रकार से होती है:

$$3Ca_3(PO_4)_2.CaF_2 + 14H_3PO_4 + 10H_2O \longrightarrow 10Ca(H_2PO_4)_2.H_2O + 2HF$$

रॉक फॉस्फेट — ट्रिपल सुपरफॉस्फेट

इसको सांद्रित सुपरफॉस्फेट भी कहते हैं।

सुपरफॉस्फेट्स का संगठन

फर्टिलाइजर कन्ट्रोल आर्डर (1957) के अनुसार सुपरफॉस्फेट में तत्वों की मात्रा अग्रलिखित के अनुरूप होनी चाहिए -

सारणी : 5.3

अवयव	सिंगल सुपरफॉस्फेट	ट्रिपल सुपरफॉस्फेट
नमी (%) अधिकतम	12.0	12.0
% मुक्त फॉस्फोरिक अम्ल अधिकतम	4.0	3.0
संपूर्ण P_2O_5 (%) न्यूनतम	16.0	46.0
जल विलेय P_2O_5 (%) न्यूनतम	16.0	42.0
गंधक (%)	12.0	शून्य

मृदा में अभिक्रियाएं

सामान्यत: मृदा में दोनों सुपरफॉस्फेट एक-जैसा आचरण करते हैं। जब मृदा में सुपरफॉस्फेट डाली जाती है तो सर्वप्रथम मृदा से नमी सोखती है। इस प्रकार जल विलेय मोनो बेसिक फॉस्फेट ($H_2PO_4^-$) आयन मृदा विलयन में आ जाता है जहां से पौधे इसका कुछ अंश शीघ्रता से ग्रहण कर लेते हैं।

$$Ca(H_2PO_4)_2 \longrightarrow Ca^{++} + 2H_2PO_4^-$$

सुपरफॉस्फेट मृदा विलयन (पौधों द्वारा आंशिक अवशोषण) परंतु शीघ्र ही ये आयन (($H_2PO_4^-$) अविलेय यौगिकों में स्थिर हो जाते हैं जो पौधों को शीघ्र प्राप्य नहीं होते हैं। इन यौगिकों का निर्माण मुख्यत: मृदा pH पर निर्भर करता है।

$$H_2PO_4^- \underset{+H^+}{\overset{+OH^-}{\rightleftharpoons}} HPO_4^{--} \underset{+H^+}{\overset{+OH^-}{\rightleftharpoons}} PO_4^{---}$$

अम्लीय मृदा क्षारीय मृदा

अम्लीय मृदाओं में अभिक्रियाएं

अम्लीय मृदाओं में सुपरफॉस्फेट डालने पर निम्नलिखित संभावित अभिक्रिया होती है

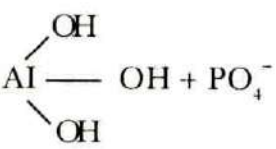

विलेय व प्राप्य

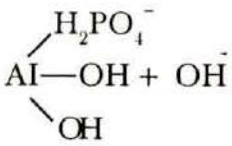

अविलेय व अप्राप्य

दूसरी अभिक्रिया के अनुसार

$$2Ca(H_2PO_4) + 2Fe_2O_3 \rightarrow 2FePO_4 + 2CaHPO_4$$

अविलेय डाइ-कैल्शियम फॉस्फेट

थोड़े समय में ही उर्वरक का विलेय व शीघ्र प्राप्य फॉस्फोरस पौधों को अप्राप्य हो जाता है।

क्षारीय मृदाओं में अभिक्रियाएं

उदासीन तथा क्षारीय मृदाओं में निम्नलिखित संभावित अभिक्रियाएं होती हैं:

$$Ca(H_2PO_4)_2 + Ca(HCO_3)_2 \rightarrow 2CaHPO_4 + 2H_2O + 2CO_2$$

डाइ-कैल्शियम फॉस्फेट (अप्राप्य)

$$2CaHPO_4 + Ca(HCO_3)_2 \rightarrow Ca_3(PO_4)_2 + 2H_2O + 2CO_2$$

इसी प्रकार कैल्केरियस मृदाओं में:

$$Ca(H_2PO_4)_2 + CaCO_3 \rightarrow 2CaHPO_4 + H_2O + CO_2$$

विलेय व प्राप्य कम प्राप्य

$$2CaHPO4 + CaCO_3 \rightarrow Ca_3(PO_4)_2 + H_2O + CO_2$$

अप्राप्य

इस तरह उर्वरक में उपस्थित प्राप्य तथा विलेय फॉस्फेट अविलेय फॉस्फेट में परिवर्तित होकर स्थिर (अप्राप्य) हो जाता है। यह एक विकट समस्या है। इसके आंशिक निदान हेतु निम्नलिखित तकनीक अपनानी चाहिए:

1. संपूर्ण सुपरफॉस्फेट बुवाई के समय मृदा में उचित स्थान (10-15 सेमी सतह के नीचे) संस्थापित कर देना चाहिए।
2. गेहूं, धान, ज्वार, बाजरा, गोभी, दालों की फसलें, हरे चारे की

फसलें, तिलहन आदि में इसको ड्रिल करना चाहिए।

3. दीर्घ अवधि की फसलों, जैसे – गन्ना आदि में इसका साइड ड्रेसिंग कर गुड़ाई कर देनी चाहिए।
4. खड़ी फसल में छिड़काव नहीं करना चाहिए।
5. अधिक अम्लीय अथवा क्षारीय भूमि में सुपरफॉस्फेट नहीं डालनी चाहिए।
6. अम्लीय तथा क्षारीय मृदाओं में इसे कार्बनिक खादों के साथ प्रयोग करना चाहिए।

पौधों पर प्रभाव

अन्य फॉस्फेटिक उर्वरकों की तुलना में सुपरफॉस्फेट प्राय: सभी प्रकार की मृदाओं के लिए उत्तम उर्वरक है क्योंकि इसमें जल विलेय फॉस्फोरस होता है। इसको टू-इन-वन उर्वरक भी कहते हैं क्योंकि सिंगल सुपरफॉस्फेट में फॉस्फोरस के साथ-साथ पौधों का आवश्यक पोषक तत्व गंधक (12%) भी होता है। ट्रिपल सुपरफॉस्फेट में गंधक नहीं होता है। अत: यह सिंगल सुपरफॉस्फेट की अपेक्षा कम प्रयोग किया जाता है। उत्तरी भारत में जलोढ़ मृदाओं के लिए यह अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त हैं जबकि काली मृदाओं में मध्यम से लेकर निम्न श्रेणी का प्रभाव डालती है।

रबी व जायद में बोई जाने वाली फसलें खरीफ की फसलों की अपेक्षा सुपरफॉस्फेट से अधिक प्रभावित होती हैं। सुपरफॉस्फेट्स का गेहूं, जौ, जई, चना, मटर, तिलहन, आलू, दालें, मूंगफली, सोयाबीन आदि पर अधिक प्रभाव होता है। यदि मृदाओं में गंधक की कमी होती है तो सुपरफॉस्फेट, डी.ए.पी., नाइट्रो फॉस्फोरस तथा अन्य फॉस्फेटिक उर्वरकों से अधिक प्रभावकारी सिद्ध होता है।

हल्के कणाकार वाली मृदाओं में बोई जाने वाली फसलों पर सुपरफॉस्फेट अधिक प्रभावकारी है। अम्लीय मृदाओं में उपयोग करने

173

पर सुपरफॉस्फेट में उपस्थित कैल्शियम लाभकारी होता है क्योंकि अम्लीय मृदाओं में प्राय: कैल्शियम की कमी पाई जाती है।

सुपरफॉस्फेट्स का उपयोग अन्य उर्वरकों के साथ मिश्रण बनाने में भी किया जा सकता है। बागों तथा बहुवर्षीय फसलों में भी इसका उपयोग लाभदायक होता है। भारत की अधिकांश मिट्टियों में फॉस्फोरस की कमी है अत: मृदा परीक्षण कराकर इसकी पर्याप्त मात्रा डालना आवश्यक है।

ट्रिपल सुपरफॉस्फेट कम अवधि वाली फसलों में त्वरित प्रभाव डालने के लिए एक उत्तम उर्वरक है। साथ ही इसका प्रति इकाई P_2O_5 मूल्य न्यूनतम है।

हड्डियों का चूरा

हड्डियों का चूरा एक प्राचीनतम उर्वरक है तथा इसका कृषि में उपयोग सन् 1815 ई. से निरंतर होता आ रहा है। भारत में भी उन्नीसवीं शताब्दी से इसका उर्वरक के रूप में प्रयोग होता रहा है।

भारत से विदेशों को हड्डियों का निर्यात करने पर पाबंदी लगाने के कई बार प्रयास किए गए हैं, परंतु आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकर न होने के कारण उक्त निर्णय स्थगित करना पड़ा और इस प्रकार हमारे देश से काफी हड्डियों का प्रतिवर्ष निर्यात किया जाता है। हमारे देश में एकत्र की जाने वाली अधिकांश हड्डियां कलकत्ता में साफ की जाती हैं तथा वहीं से इनका निर्यात विदेशों के लिए किया जाता है। भारत से हड्डियों का निर्यात करने वाला मुख्य देश ब्रिटेन है। लगभग 30,000 से 35,000 टन हड्डियों के चूरे का देश में घरेलू उपयोग के लिए उत्पादन किया जाता है।

हड्डियों के चूरे का उत्पादन

हड्डियों के चूरे का उत्पादन हड्डियों को पीसकर किया जाता

है। यह दो प्रकार का होता है:

1. हड्डियों का कच्चा चूरा (Raw Bone-meal)
2. वाष्पित हड्डियों का चूरा (Steamed Bone-meal)

हड्डियों का कच्चा चूरा हड्डियों को सीधे-सीधे पीसकर तथा छानकर बनाया जाता है। मोटे कण खाद तथा महीन कण पशुओं व पक्षियों के लिए खनिज मिश्रण बनाने में प्रयुक्त होता है।

वाष्पित हड्डियों का चूरा बनाने के लिए हड्डियों का वाष्पन करके पहले जिलेटिन पृथक् किया जाता है, तत्पश्चात् हड्डियों को पीसकर महीन चूर्ण तैयार किया जाता है जिसका मोटा चूरा उर्वरक तथा महीन चूरा जानवरों के खजिन चूर्ण बनाने में मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। हड्डी के चूरे की क्रियाशीलता उसके कणाकार पर निर्भर करती है।

हड्डियों के चूरे के कण

भारतीय मानक ब्यूरो तथा फर्टिलाइजर कंट्रोल आर्डर (1957) के अनुसार कच्चे व वाष्पित हड्डियों के चूरे के गुणों के लिए निम्नलिखित मानक निर्धारित किए गए हैं :

सारणी 5.4: हड्डियों के चूरे के सामान्य मानक (गुण)

अवयव/गुण	हड्डियों का कच्चा चूरा	वाष्पित हड्डियों का चूरा
1. नमी प्रतिशत (अधिकतम)	8.0	7.0
2. अम्ल में अघुलनशील पदार्थ (%)	12.0	-
3. कुल P_2O_5 प्रतिशत (न्यूनतम)	20.0	22.0
4. उपलब्ध P_2O_5 (2%) साइट्रिक अम्ल में विलेय न्यूनतम	8.0	16.0
5. कुल N % न्यूनतम	3.0	-
6. कणाकार	2.36mm. I.S.	1.18 mm I.S.

वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि हड्डियों के चूरे की उर्वरक के रूप में क्रियाशीलता कणाकार पर निर्भर होती है। कणाकार जैसे-जैसे छोटा होता है, चूरे की उर्वरक क्षमता में निरंतर वृद्धि होती जाती है।

मृदा में आचरण एवं पौधों पर प्रभाव

हड्डियों का चूरा अम्लीय मृदाओं तथा दीर्घ अवधि की फसलों के लिए अत्यंत उपयोगी है। असम की अम्लीय मृदाओं में धान तथा बागानों में यह सुपरफॉस्फेट से भी अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। इसके विपरीत क्षारीय तथा चूनायुक्त मृदाओं में इसकी उपयोगिता बहुत कम है। गन्ना तथा फलों के बागों में यह अत्यंत हितकारी है। इसमें फॉस्फोरस HPO_4^{--} (साइट्रिक अम्ल में विलेय) रूप में होता है जो पौधों को धीरे-धीरे दीर्घकाल तक प्राप्य होता रहता है।

हड्डियों के चूरे में नाइट्रोजन कार्बनिक रूप में होती है जो अपघटन के उपरांत पौधों को धीरे-धीरे उपलब्ध होती रहती है। इसको सदैव फसल की बुआई के समय या उससे पूर्व मिट्टी में मिला देना चाहिए। इसको कभी भी खड़ी फसल में नहीं छिड़कना चाहिए। सामान्यत: अनाज की फसलों में 100-200 किग्रा./हे. तक दिया जाता है। अधिक मात्रा देने से पौधों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। फलों के वृक्षों में 500-1000 ग्रा./वृक्ष दिया जा सकता है।

इसका उर्वरक के रूप में प्रयोग सीमित मात्रा में होता है क्योंकि यह कम मात्रा में उपलब्ध है, तथा इसके प्रयोग में अधिक धन खर्च होता है। हड्डी के चूरे का अधिकांश भाग कृत्रिम पशु-आहार बनाने में प्रयुक्त होता है।

बेसिक स्लैग अथवा क्षारीय धातुमल

बेसिक स्लैग उद्योग में सह-उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है। इसे क्षारीय धातुमल अथवा 'थोमस फास्फेट' भी कहते हैं क्योंकि इसको सर्वप्रथम वैज्ञानिक थोमस ने कृषि में उर्वरक के रूप में प्रयोग किया। सुपरफॉस्फेट के बाद यह दूसरा महत्वपूर्ण फॉस्फेटिक उर्वरक है।

बेसिक स्लैग का उत्पादन

कच्चे लोहे में पर्याप्त मात्रा में फॉस्फोरस होता है। इस लोहे से जब स्टील अथवा पिटवां लोहे का निर्माण किया जाता है तो फास्फोरस ऑक्सीकृत होकर फॉस्फोरस पेन्टा-आक्साइड में परिवर्तित हो जाता है जो परावर्तक के अस्तर में लगे चूने तथा अन्य अशुद्धियों सिलिकान, गंधक आदि से संयुक्त होकर धातुमल बनाता है। यह धातुमल पिघली हुई धातु के ऊपर तैरता है जो पृथक करने पर ठंडा होकर ठोस में बदल जाता है जिसे पीसकर स्लैग तैयार कर लिया जाता है। चूने की उपस्थिति के कारण यह क्षारीय हो जाता है। इसलिए इसे क्षारीय धातुमल भी कहते हैं।

स्टील निर्माण की चार प्रमुख विधियां हैं: 1. प्राचीन बेसेमर परिवर्तक, 2. आधुनिक सीमेन्स मार्टिन खुली भट्टी, 3. ड्यूप्लैक्स भट्टी तथा 4. विद्युत् आर्क भट्टी। इनमें प्रथम दो अधिक प्रचलित हैं। बेसेमर परिवर्तक से प्राप्त धातुमल बेसेमर बेसिक स्लैग तथा आधुनिक विधि से प्राप्त धातुमल मार्टिन सीमेन्स बेसिक स्लैग कहलाता है।

भारतीय बेसिक स्लैग का संगठन

भिन्न-भिन्न कारखानों से प्राप्त बेसिक स्लैग का संगठन भिन्न-भिन्न होता है। कुछ प्रमुख भारतीय स्रोतों से प्राप्त धातुमलों का संगठन अग्रलिखित है:

177

विभिन्न स्रोतों से प्राप्त बेसिक स्लैग का संगठन

अवयव प्रतिशत	स्रोत टिस्को, जमशेदपुर	हिंदुस्तान स्टील लि., भिलाई	हिंदुस्तान स्टील लि., रूरकेला
SiO_2	15.08	22-27.0	18-20.0
FeO	12.20	15-25.0	10.5-15.0
Fe_2O_3	4.03	2-5.0	-
Al_2O_3	4.03	5-6.0	-
CaO	43.20	21-28.0	43-46.0
Mgo	6.87	. 5-8.0	6-9.0
MnO	7-9.50	7-9.0	8-12.0
P_2O_5	7.24	2.1-2.6	3-5.0

यह भूरे रंग से स्लेटी रंग का अधिक घनत्व वाला उर्वरक है। भारतीय बेसिक स्लैग निम्न गुणता (क्वालिटी) के होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार बेसिक स्लैग में न्यूनतम 13% P_2O_5 होना चाहिए जिसका 80 % भाग 2% साइट्रिक अम्ल में विलेय हो। अच्छे स्तर के बेसिक स्लैग में 3-8.0% होती है। इसमें सूक्ष्म मात्रा में Zn, Mn, Cu तथा B भी होते हैं जिससे पौधों की सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं।

मृदा में आचरण तथा पौधों पर प्रभाव

एक मोटे अनुमान के अनुसार भारत में 65 लाख हेक्टेयर जोत की भूमि उच्च अम्लीय ($pH < 5.5$) है। इन मृदाओं में कैल्शियम तथा फॉस्फोरस दोनों तत्वों की अत्यधिक कमी है। इन मृदाओं के लिए बेसिक स्लैग एक उत्तम व प्रभावकारी उर्वरक सिद्ध हुआ है क्योंकि यह उर्वरक Ca तथा P_2O_5 के अतिरिक्त सूक्ष्म तत्वों की भी आपूर्ति करता है।

इस उर्वरक में फॉस्फोरस साइट्रिक अम्ल विलेय रूप (HPO_4^{--}) में होता है। अम्लीय मृदाओं में यह H^+ से संयुक्त होकर जल विलेय $H_2PO_4^-$ रूप में परिवर्तित होकर पौधों को शीघ्रता से प्राप्य हो जाता है। इस प्रकार फॉस्फोरस का स्थिरीकरण भी कम होता है। क्षारीय तथा चूनायुक्त मृदाओं में इस उर्वरक की कोई उपयोगिता नहीं है। इसको मृदा में अच्छी तरह मिलाना चाहिए क्योंकि यह गतिशील नहीं होता है।

अम्लीय मृदाओं में यह उर्वरक लगभग सभी फसलों के लिए एक उत्तम उर्वरक है। इन मृदाओं में गेहूं, धान फसल-चक्र में यह उर्वरक सुपरफॉस्फेट के समान ही प्रभावशाली है। भारी तथा क्षारीय चूनायुक्त मृदाओं में इसकी प्रभावशीलता न्यूनतम होती है। इसमें साइट्रिक अम्ल विलेय फॉस्फेट होने के कारण प्रत्येक दशा में रॉक फॉस्फेट से अधिक प्रभावशाली है। इसका अवशिष्ट प्रभाव भी अधिक होता है। इसका उपयोग उर्वरक मिश्रण बनाने में नहीं करना चाहिए।

फॉस्फोरस की अन्य पोषक तत्वों के साथ अंतर्क्रिया

फास्फोरस का प्रयोग मृदा में पोषक तत्वों के भंडार को विकसित करता है, जिससे फसलों में फॉस्फोरस की आवश्यकता पूरी होती है।

नाइट्रोजन

नाइट्रोजन का फॉस्फोरस के साथ प्रयोग करने से फॉस्फोरस की घुलनशीलता बढ़ जाती है और अमोनियम नाइट्रोजन उर्वरक फॉस्फोरस की उपलब्धता को बढ़ा देता है जिससे फसलों की वृद्धि एवं उपज बढ़ जाती है और अमोनियम नाइट्रोजन उर्वरक फॉस्फोरस की उपलब्धता को बढ़ा देता है जिससे फसलों की वृद्धि एवं उपज बढ़ जाती है।

पोटैशियम

पोटैशियम एवं फॉस्फोरस की अंतर्क्रिया के कारण फसलों में

धनात्मक प्रभाव देखा गया है।

गंधक

गंधक एवं फॉस्फोरस की धनात्मक अंतर्क्रिया के प्रभाव से फसल सुधार एवं पशुओं की क्षमता में भी सुधार देखा गया है।

बोरॉन

अधिक फॉस्फोरसयुक्त अम्लीय मृदा में फॉस्फोरस/बोरॉन की अंतर्क्रिया के कारण मक्का के पौधों में बोरॉन का अवशोषण घट जाता है।

तांबा

तांबे की अधिकता के कारण फॉस्फोरस एवं लोहे का अवशोषण घट जाता है। अत: फॉस्फोरस की अधिक मात्रा के कारण नींबू के पौधों में तांबे की कमी फॉस्फोरस/तांबा अंतर्क्रिया के कारण देखी गई है। फॉस्फोरस की मात्रा को बढ़ा कर तांबा तथा जस्ते की घुलनशीलता बढ़ाई जा सकती है।

लोहा

फॉस्फोरस-तांबा वाली मृदाओं में उगाई गई मक्का व धान दोनों फसलें लौह-हरिमाहीनता प्रदर्शित करती है। ऐसी परिस्थिति में प्राय: अधिक मात्रा में फॉस्फोरस उर्वरक देने की संस्तुति की जाती है।

मैंगनीज

उच्च मृदा फॉस्फोरस स्तर के साथ जब मिट्टी में मैंगनीज की उपलब्धता बढ़ती है, फॉस्फोरस/मैंगनीज अंतर्क्रिया विकसित हो सकती है। आंशिक रूप से मृदा में बढ़ी अम्लीयता उच्च फॉस्फोरस दर के कारण होती है।

मॉलिब्डेनम

फॉस्फोरस/मालिब्डेनम अंतर्क्रिया मृदा की अम्लीयता क्षारीयता पर निर्भर करता है। अम्लीय मृदा में फॉस्फोरस के प्रयोग से मॉलिब्डेनम उदग्रहण बढ़ता है, जबकि क्षारीय मृदाओं में घट जाता है।

जिंक

फॉस्फोरस/जिंक अंतर्क्रियाएं जिंक अवशोषण को कम कर सकती है। शोधों परिणामों से पता चला है कि प्रकृति में फॉस्फोरस की जिंक-पोषण को कम करने की प्रवृत्ति कायकीय है न कि मृदा में निष्क्रियता के कारण।

पोटाशीय उर्वरक

पोटैशियमयुक्त उर्वरक. प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले पोटैशियम-युक्त लवणों के भूमिगत भंडार की खुदाई एवं शुद्धीकरण द्वारा तैयार किए जाते हैं। भूमि में पोटैशियमयुक्त खनिजों का भंडार विश्व के विभिन्न देशों में विशेषकर फ्रांस, जर्मनी, कनाडा, अमेरिका और रूस में पाया जाता है। हमारे देश में पोटैशिमययुक्त उर्वरकों की सम्पूर्ण मात्रा विदेशों से आयात की जाती है। अभी हाल में भू-खनन एवं सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से पता चला है कि भारत में लेह (जम्मू-कश्मीर) और बीकानेर (राजस्थान) में पोटाश का भंडार है। अभी इन भंडारों से व्यापारिक स्तर पर पोटाश खनिजों की खुदाई प्रारंभ नहीं हुई है। केंद्रीय लवण एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर (गुजरात) द्वारा पोटैशियम सोनाइट नामक उर्वरक तैयार करने की विधि का विकास किया गया है। पोटैशियम सोनाइट खारी जल से प्राप्त पोटैशियम सल्फेट और मैग्नीशियम सल्फेट का एक द्विलवण है।

पोटाशयुक्त खनिज पदार्थ

प्रकृति में यह अविलेय पोटाशयुक्त सिलिकेटों तथा पोटैशियम

क्लोराइड-जैसे अतिविलेय लवण के रूप में भूमिगत चट्टानों और समुद्री जल में पाया जाता है। पोटाशधारी उर्वरक तैयार करने में प्रयुक्त प्रमुख खनिज निम्नलिखित हैं :

खनिज	पोटाश (K_2O) की प्रतिशत मात्रा
सिल्वाइट	63.1
कार्नेलाइट	17.0
केनाइट	18.9
लैंगबाइनाइट	22.6
सिल्वोनाइट	20.3

इसके अतिरिक्त कुछ मात्रा में पोटाशयुक्त उर्वरक साल्टबिटर्न से भी तैयार किए जाते हैं। विभिन्न पोटाशधारी उर्वरकों में पोटैशियम की मात्रा का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

पोटाशधारी उर्वरक	जलविलेय पोटाश (K_2O) की प्रतिशत मात्रा
पोटैशियम क्लोराइड (म्युरेट ऑफ पोटाश)	60-62
पोटैशियम सल्फेट	48-52
पोटैशियम मैग्नीशियम सल्फेट	20-30
पोटैशियम नाइट्रेट	44
बिटर्न पोटाश	4

प्रमुख पोटाशधारी उर्वरकों की निर्माण-विधि

पोटैशियम क्लोराइड

यह एक प्रमुख पोटाशधारी उर्वरक है, जिसका इस्तेमाल अकेले या नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरसधारी उर्वरकों के साथ सफलतापूर्वक किया जा सकता है। भारत में पोटैशियम क्लोराइड की संपूर्ण मात्रा विदेशों से आयात की जाती है।

निर्माण-विधि

पोटैशियम क्लोराइड के निर्माण में पोटाशयुक्त खनिज, जैसे-सिल्वीनाइट एवं पोटैशियम लवण, जल कच्चे पदार्थ के रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं। इन खनिजों से पोटैशियम क्लोराइड, प्लवन विधि अथवा गर्म निक्षालन द्वारा प्राप्त किया जाता है।

प्लवन विधि में अयस्कों के गारे-जैसे मल को एलीफैटिक एमाइन के साथ उपचारित किया जाता है। परिणामस्वरूप पोटैशियम क्लोराइड के कणों पर इसकी पर्त भी चढ़ जाती है। फिर भी इस गारे में वायु प्रवेश कराई जाती है, जिससे वायु के बुलबुले की पर्त रवों के साथ चिपक जाते हैं और सतह पर तैरने लगते हैं। इसके विपरीत बिना पर्त चढ़े कण नीचे पेंदी में बैठ जाते हैं। प्लवित पोटैशियम क्लोराइड को अपकेंद्रण करने के बाद सुखा लिया जाता है और फिर थैलों में भर लिया जाता है। निक्षालन की अपेक्षा प्लवन विधि अधिक सस्ती पड़ती है, अतः औद्योगिक पैमाने पर यही विधि प्रयोग में लाई जाती है।

पोटैशियम क्लोराइड की कुछ मात्रा लवण जल के भंडार से भी तैयार की जाती है। बड़े तालाब में खारे जल का वाष्पीकरण कराया जाता है, जिससे सोडियम क्लोराइड का अवक्षेपण हो जाता है। इस खारे जल को दूसरे तालाबों में स्थानांतरित करके पुनः वाष्पीकरण कराने से सोडियम क्लोराइड के साथ ही कार्नेलाइट का भी अवक्षेपण हो जाता है। इस मिश्रण को एकत्रित करके जल से निरंतर धुलाई करते

रहने से मैग्नीशियम क्लोराइड को सोडियम क्लोराइडयुक्त संतृप्त गर्म लवण जल से निक्षालित करके अलग कर लिया जाता है। इससे पोटैशियम क्लोराइड घुल जाता है और ठंडा होने पर अवक्षेपित हो जाता है। इस अवक्षेप को अपकेंद्रण के बाद सुखाकर थैलों में भर लिया जाता है।

गुण	
क. पोटाश की प्रतिशत मात्रा	60
ख. रंग	सफेद रवेदार
ग. आपेक्षिक घनत्व	1.98
घ. गलनांक (डि.से.)	7.72
च. पी.एच मान	–
छ. घुलनशीलता (ग्राम प्रति 100 ग्राम जल में)	37
ज. क्रांतिक आपेक्षिक आर्द्रता प्रतिशत (30 डि.से. पर)	84

फर्टिलाइजर कंट्रोल आर्डर (1957) के अनुसार इस उर्वरक में निम्नलिखित विशिष्टताएं होनी चाहिए :

	भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा
उच्चतम नमी	0.5
पोटाश की न्यूनतम प्रतिशत मात्रा (सोडियम क्लोराइड के रूप में)	58.0
अधिकतम मात्रा (शुष्कता के आधार पर)	3.0

हमारे देश में पोटैशियम क्लोराइड विदेशों से आयात किया जाता

है। इसे खुले ट्रकों या बोरों में ना.फा.पो. उर्वरकों और उर्वरक मिश्रण तैयार करने वाले संयंत्रों में डाला जाता है। शुद्ध पोटैशियम रवेदार होता है और उसमें उपस्थित पोटैशियम जल में घुलनशील होता है। इसके रख-रखाव में भी साधारणतया कोई कठिनाई नहीं आती है, परंतु मिलावट की वजह से उर्वरक सामग्री द्वारा नमी शोषण के फलस्वरूप कठोर ढेले बन जाते हैं। इनसे पुनः रवेदार पोटैशियम क्लोराइड प्राप्त करने में कठिनाई होती है और कभी-कभी विस्फोट होने की भी संभावना रहती है।

पोटैशियम सल्फेट

इसका निर्माण पोटैशियम क्लोराइड की अपेक्षा अधिक खर्चीला होता है। कुल पोटाश का लगभग सात प्रतिशत भाग पोटैशियम सल्फेट के रूप में इस्तेमाल होता है। पोटैशियम क्लोराइड की ही भांति इसकी भी पूर्ति आयात द्वारा होती है।

निर्माण-विधि

पोटैशियम सल्फेट की कुछ मात्रा लैंग्बाइनाइट के रूप में प्रकृति में उपलब्ध है। साधारणत: पोटेशियम सल्फेट का निर्माण लैंगबाइनाइट और पोटैशियम क्लोराइड की अभिक्रिया के फलस्वरूप होता है। फिर भी इसका कुछ उत्पादन पोटैशियम एवं मैग्नीशियम मिश्रित लवणों से भी किया जाता है।

पोटैशियम सल्फेट का निर्माण दो तरह से किया जाता है।

1. पोटाश खनिज लैंगबाइनाइट को जल में घोलकर उसमें पोटैशियम क्लोराइड का सांद्र विलयन मिलाते हैं जिससे पोटैशियम सल्फेट अवक्षेपित हो जाता है। इसे निथारकर अलग कर लिया जाता है। रासायनिक अभिक्रिया निम्नवत् होती है :

$$K_2SO_4.2MgSO_4 + 4KCl \rightarrow 3K_2SO_4 + 2MgCl_2$$

पोटैशियम क्लोराइड को सांद्र गंधक के अम्ल के साथ उपचारित करके पोटैशियम सल्फेट प्राप्त किया जाता है।

$$2KCl + H_2SO_4 \rightarrow K_2SO_4 + 2HCl$$

घोल में उपस्थित अम्ल को सांद्र बनाने हेतु इसका वाष्पीकरण किया जाता है। इसके बाद रवे बना लिए जाते हैं। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को जल में अवशोषित करने के बाद अलग कर लिया जाता है। इस विधि द्वारा अधिक शुद्ध उर्वरक प्राप्त होता है।

गुण	
क. पोटाश (K_2O) की प्रतिशत मात्रा	54
ख. रंग	सफेद रवेदार
ग. आपेक्षिक घनत्व	2.662
घ. गलनांक (डि.से.)	1067
च. पी-एच. मान	7.0
छ. जल में विलेयता (30 डि.से. पर ग्राम प्रति 100 ग्राम)	13
ज. क्रातिंक आपेक्षिक आर्द्रता (30 डि.से. पर) प्रतिशत	96

इसे उर्वरक में फर्टिलाइजर कन्ट्रोल आर्डर द्वारा निर्धारित निम्नलिखित विशिष्टताएं होनी चाहिए:

विशिष्टताएं	भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा
क. नमी	1.5
ख. पोटाश	48.0

ग. क्लोराइड (शुष्कता के आधार पर)	2.5
घ. सोडियम (शुष्कता के आधार पर सोडियम क्लोराइड के रूप में)	2.0

आयातित पोटैशियम सल्फेट के भंडारण तथा रखरखाव में कोई कठिनाई नहीं होती है।

पोटैशियम सोनाइट

पोटैशियम सोनाइट पोटैशियम सल्फेट और मैग्नीशियम सल्फेट का एक मिश्रित लवण है, जिसमें पोटाश की मात्रा 27 प्रतिशत होती है। मिश्रित लवणों से पोटैशियम सोनाइट प्राप्त करने के लिए केंद्रीय लवण एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर से प्लवन विधि का इस्तेमाल किया। मिश्रित लवण, साल्ट वर्क्स के बिटनों के भंडार के व्यापारिक संयंत्र का निर्माण दक्षिणी भारत के टपुसाइट वर्क्स के क्षेत्र में उत्पादन हो सकता है। इससे प्रतिवर्ष 3,000 टन पोटैशियम सोनाइट का उत्पादन हो सकता है। ऐसा अनुमान है कि लवणों से 75,000 टन पोटैशियम सल्फेट प्राप्त किया जा सकता है। यह पोटैशियम सोनाइट को चूने से उपचारित करके या कार्बनिक विलेयक से निक्षालित करके प्राप्त किया जा सकता है।

निर्माण-विधि

पोटैशियम सोनाइट के प्रमुख स्रोत लवण बिटर्न है।

उत्पादन विधि

बिटनों से प्राप्त मिश्रित लवणों को जल की धारा से धोया जाता है, जिससे मैग्नीशियम क्लोराइड घुल जाता है। इसके बाद इस विलयन में द्रव मिलाने से सोडियम क्लोराइड के रवे नीचे बैठ जाते हैं। फिर पोटैशियम सोनाइट के महीन रवों को निलंबन से निथारकर अलग करने के बाद सुखा कर बोरों में भर लेते हैं।

गुण	
पोटाश की प्रतिशत मात्रा	27
रंग	सफेद रवेदार

फर्टिलाइजर कन्ट्रोल आर्डर के अनुसार पोटैशियम सोनाइट में निम्नलिखित विशिष्टताएं होनी चाहिए :

विशिष्टताएं	भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा
क. नमी की अधिकतम मात्रा	15
ख. पोटाश की न्यूनतम मात्रा	23.0
ग. मैग्नीशियम ऑक्साइड की अधिकतम मात्रा	10.0
घ. कुल क्लोराइड की अधिकतम मात्रा	2.5
च. सोडियम क्लोराइड की अधिकतम मात्रा	1.5

भंडारण एवं रख-रखाव

अन्य पोटाशधारी उर्वरकों की तरह पोटैशियम सोनाइट के भंडारण एवं रख-रखाव में कोई कठिनाई नहीं होती है।

विभिन्न मिट्टियों में पोटाशधारी उर्वरकों की उपयुक्तता

पोटैशियम क्लोराइड

पोटैशियम क्लोराइड अन्य पोटाशयुक्त उर्वरकों की तुलना में सबसे अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इसे नाइट्रोजन और फास्फोरसधारी उर्वरकों के साथ मिलाकर उर्वरक मिश्रण तैयार किया जाता है। यूरिया के साथ मिलाकर अधिक समय तक रखने पर यूरिया द्वारा नमी अवशोषित कर लेने के कारण मिश्रण के बड़े-बड़े ढेले बन जाते हैं।

पोटैशियम क्लोराइड को मिट्टी में मिलाने पर पोटैशियम आयन मृदा कोलाइड पर अधिशोषित हो जाते हैं, जिसे पौधे सुगमतापूर्वक इस्तेमाल में लाते हैं। जिन मिट्टियों में इलाइट, क्लोराइट और वर्मीकुलाइट-जैसे मृत्तिका खनिजों की प्रचुरता होती है, उनमें पोटैशियम की कुछ मात्रा का यौगिकीकरण अवश्य हो जाता है। मिट्टी में क्लोराइड ऑयन की अभिक्रिया को दृष्टि में रखते हुए ऐसा माना जाता है कि अम्लीय मिट्टियों में यह मुक्त लौह आक्साइड से संबद्ध हाइड्रॉक्सिल आयनों को विस्थापित कर देता है, इसलिए ऐसी मिट्टियों में पोटैशियम सल्फेट की तुलना में यह विशेष उपयोगी सिद्ध होता है। इसके अलावा मृदा कोलाइडों पर सल्फेट ऑयनों की तुलना में क्लोराइड आयन कम शक्ति से अधिशोषित होता है। अत: भारी गठन वाली मिट्टियों में इसके प्रयोग से क्लोराइड आयन का संचय अधिक मात्रा में नहीं हो पाता। क्षारीय मिट्टियों में क्लोराइड ऑयन अधिक मात्रा में पाए जाते हैं जिनका पौधों पर हानिकर प्रभाव पड़ता है। पोटाश की कमी वाली क्षारीय मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ के साथ पोटैशियम क्लोराइड का इस्तेमाल निरापद हो सकता है।

पोटैशियम सल्फेट

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि मृदा कोलाइड पर क्लोराइड ऑयनों की तुलना में सल्फेट ऑयन अधिक शक्ति से अधिशोषित रहते हैं। चुनही और क्षारीय मिट्टियों में पोटैशियम सल्फेट विशेष लाभकारी सिद्ध होता है, क्योंकि चूनाविहीन मिट्टियों की तुलना में चूनायुक्त मिट्टियों में सल्फेट का प्रतिधारण अपेक्षाकृत अधिक शक्ति से होता है। आर्द्र दशाओं में पोटैशियम क्लोराइड की तुलना में पोटैशियम सल्फेट विशेष उपयुक्त पाया जाता है। हल्के गठन वाली मिट्टियों में पोटैशियम सल्फेट का प्रभाव अच्छा रहता है। भारी गठन वाली मिट्टियों में अवातीय दशा का पौधों द्वारा पोटैशियम के अवशोषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक निक्षालित अम्लीय मिट्टियों में गंधक की कमी होने के कारण इनमें पोटैशियम सल्फेट का इस्तेमाल विशेष लाभप्रद होता है। उल्लेखनीय है कि पोटैशियम सल्फेट में 39-40

प्रतिशत गंधक भी पाया जाता है।

तंबाकू की फसल में क्लोराइडयुक्त उर्वरक का फसल के गुणों पर कुप्रभाव पड़ता है। चाय और काफी की फसलों में सल्फेटयुक्त उर्वरक विशेष कारगर होते हैं। अत: आलू, तंबाकू, शकरकंद और नींबू में क्लोराइडयुक्त उर्वरक के स्थान पर सल्फेटयुक्त उर्वरक का इस्तेमाल फसल के गुणों की दृष्टि से विशेष लाभप्रद रहता है।

द्वितीयक या गौण पोषक तत्व

प्रमुख पोषक तत्वों वाले उच्च विश्लेषी उर्वरकों के अधिकाधिक प्रयोग के फलस्वरूप भूमि से प्रमुख तत्वों के साथ ही गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का अपेक्षाकृत अधिक निष्कासन होता है। यदि विशिष्ट तत्वों का फसल द्वारा भूमि से निष्कासन होता रहे और किसी भी उर्वरक स्रोत द्वारा उसकी पूर्ति न की जाए तो स्पष्ट है कि कालांतर में भूमि में उन तत्वों की कमी हो जाएगी। ज्ञातव्य है कि हमारे देश में प्रारंभ में अमोनियम सल्फेट, सुपरफास्फेट-जैसे उर्वरकों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता था, जिनसे गंधक एवं कैल्शियम-जैसे गौण तत्व की प्राप्ति के साथ ही विभिन्न सूक्ष्ममात्रिक तत्व थोड़ी बहुत मात्रा में प्राप्त हो जाते थे परंतु आजकल इन उर्वरकों का प्रयोग होने के कारण गौण एवं सूक्ष्मपोषक तत्वों की कमी का अनुभव होने लगा है। भारत में कई राज्यों से गंधक और जस्ते की कमी की सूचनाएं मिली हैं। यहां गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए प्रयोग किए जाने वाले उर्वरक स्रोतों के विषय में चर्चा की गई है।

गौण पोषक उर्वरकों में कैल्शियम, मैग्नीशियम और गंधक के उर्वरकों को सम्मिलित किया जाता है।

कैल्शियम

हमारे देश में डोलोमाइट, कैलसाइट, स्ट्रोमैटोलाइट, वात्या भट्ठी स्लैग, सीमेंट, वर्ज्य पदार्थ, उर्वरक उद्योग से प्राप्त अवक्षेपित कैल्शियम कार्बोनेट, जिप्सम, चूना, कागज उद्योग से प्राप्त चूना पंक से विविध

कैल्शियमयुक्त पदार्थ हैं, जिनका इस्तेमाल कैल्शियम की पूर्ति हेतु किया जा सकता है (सारणी 5.5)। इसके अलावा सिंगल सुपरफॉस्फेट, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट, डाइकैल्शियम फॉस्फेट, फ्यूज्ड कैल्शियम-मैग्नीशियम फास्फेट तथा अमोनिएटेड सुपरफॉस्फेट-जैसे उर्वरकों में भी कैल्शियम पाया जाता है।

हमारे देश में अम्लीय एवं क्षारीय मिट्टियों में कैल्शियम की कमी पाई जाती है। अम्लीय मिट्टियों में क्षारीय प्रभाव वाले चूना पदार्थों का इस्तेमाल लाभदायक होता है। क्षारीय भूमि में जिप्सम विशेष उपयुक्त पाया गया है। क्षारीय भूमि में यदि सुपरफॉस्फेट एवं अमोनियम सल्फेट-जैसे अम्लीय प्रभाव वाले उर्वरकों का प्रयोग किया जाए तो कैल्शियम की पूर्ति स्वत: हो जाते हैं।

सारणी 5.5: विभिन्न चूना पदार्थों में कैल्शियम की मात्रा

चूना पदार्थ	कैल्शियम की प्रतिशत मात्रा
बाजारू चूना (रांची)	34.4
कैल्साइट चूना पत्थर	29.1
खेलारी	29.1
हजारी बाग	32.9
चक्रधरपुर	28.0
डोलोमाइट चूना पत्थर	22.2
अवक्षेपित कैल्शियम कार्बोनेट (सिंदरी)	31.7
सीमेंट वर्ज्य (खेलारी)	27.9
स्टील स्लैग	
चूना पत्थर चूर्ण	29.7
भिलाई बेसिक स्लैग (खुली भट्ठी)	37.0
राउरकेला बेसिक स्लैग (खुली भट्ठी)	36.7
बेसिक स्लैग	33.0

सारणी 5.6 : विभिन्न उर्वरकों में कैल्शियम की मात्रा

उर्वरक	कैल्शियम की प्रतिशत मात्रा (कैल्शियम ऑक्साइड के रूप में)
कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	10-20
डाइकैल्शियम फॉस्फेट	32
सिंगल सुपरफॉस्फेट	25-30
ट्रिपल सुपरफॉस्फेट	17-20
रेनानिया फॉस्फेट	1
साधारण अमोनिएटेड सुपरफॉस्फेट	23-29
सांद्रित अमोनिएटेड सुपरफॉस्फेट	16.5-22.5

मैग्नीशियम

आर्द्र क्षेत्रों की हल्के गठन वाली मिट्टियों में मैग्नीशियम का अभाव पाया जाता है। इसके विपरीत शुष्क क्षेत्रों की मिट्टियों और भारी गठन वाली मिट्टियों में मैग्नीशियम के अभाव की कोई खास समस्या नहीं होती। पोटैशियम का अधिक मात्रा में इस्तेमाल करने पर हल्के गठन वाली मिट्टियों में फसल द्वारा मैग्नीशियम के अवशोषण पर कुप्रभाव पड़ता है। मैग्नीशियम की कमी को दूर करने के लिए कुछ देशों में मैग्नीशियम-अमोनियम फॉस्फेट नामक दानेदार उर्वरक का विकास किया गया है, जिसमें इस तत्व की मात्रा 14.8 प्रतिशत होती है। सारणी 5.7 में मैग्नीशियमयुक्त पदार्थ दर्शाए गए हैं।

सारणी 5.7 : मैग्नीशियम की पूर्ति के लिए उर्वरक सामग्री

उर्वरक सामग्री	मैग्नीशियम की प्रतिशत मात्रा
मैग्नेसाइट	40

मैग्नीशियम सल्फेट (मैग सल्फर)	16
देवीमाइको शक्ति	2
मल्टिप्लेक्स (चिलेटेड)	10
ऐरीज चेलामैग (चिलेटेड)	5
डोलामोइट	5-20
एलसीएफसी स्लैग	7

गंधक

भूमि से पौधों द्वारा गंधक का अवशोषण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और अगर इसकी भरपाई उचित समय पर नहीं की गई तो फसलोत्पादन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अत: यह अनिवार्य है कि किसान अन्य खादों के साथ-साथ फसलों में गंधक का भी प्रयोग अवश्य करें, जिससे उनकी फसलों की उपज बढ़ेगी तथा लाभ भी अधिक मिलेगा और साथ-साथ उनके खेतों की मृदा का स्वास्थ्य भी बना रहेगा।

सरसों, राया, तोरिया, मूंगफली, सूरजमुखी, अलसी, तिल व अरंडी आदि मुख्य तिलहनी फसलों को भारत में 21 करोड़ हेक्टेयर में उगाई जाती है। गंधक एक आवश्यक पोषक तत्व है। तिलहनी फसलों के लिए गंधक विशेष महत्वपूर्ण है। पौधों को गंधक की आवश्यकता फास्फोरस से अधिक है। सरसों के दानों में गंधक की मात्रा औसतन एक प्रतिशत होती है जबकि दालों में यह मात्रा 0.3 प्रतिशत व अनाजों में 0.2 प्रतिशत है। सरसों व राया की फसल को अन्य फसलों की तुलना में गंधक की अधिक आवश्यकता पड़ती है। सारणी 5.8 में विभिन्न उर्वरक सामग्रियों में गंधक की मात्रा दी गई है।

सारणी 5.8 : उर्वरकों में गंधक की मात्रा

उर्वरक	गंधक की मात्रा (%)	उर्वरक	गंधक की मात्रा (%)
सिंगल सुपर फास्फेट	12.0	पाइराइट (100% शुद्ध)	52.5
जिप्सम	13.18	मैग्नीशियम सल्फेट	13.0
पाइराइट	22.24	बेसिक स्लेग	3.0
अमोनियम सल्फेट	24.0	गंधक का तेजाब	32.7
पोटैशियम सल्फेट	18.0	पोटैशियम मैग्नीशियम सल्फेट	18.3
मैंग्नीज सल्फेट	21.2	गंधक (ऐलीमेन्टल)	85.95
अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	12.1	यूरिया जिप्सम	14.8
अमोनियम फॉस्फेट सल्फेट	15.0	यूरिया सल्फर	10.0
अमोनियम नाइट्रेट सल्फेट	12.1	ऐल्युमिनियम सल्फेट	14.4
फैरस सल्फेट	18.8	कैल्शियमपाली सल्फाइड	24.0
कॉपर सल्फेट	12.8	जिंक सल्फेट	17.8
जिप्सम (100% शुद्ध)	18.6		

सूक्ष्म पोषक तत्व

पौधों की समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए कुछ सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की आवश्यकता होती है। अब तक ज्ञात कुल सात सूक्ष्ममात्रिक

तत्वों में लोहा, मैंगनीज, जस्ता (जिंक), तांबा, (कॉपर), बोरोन मोलिब्डिनम तथा क्लोरीन शामिल हैं।

सूक्ष्मपोषक तत्वों की वास्तविक कमी के लक्षण प्रकट होने या उनकी पहचान होने के पूर्व फसल को काफी नुकसान हो चुका होता है। और सघन कृषि के फलस्वरूप यह समस्या दिनोंदिन अत्यंत विकट होती जा रही है। जस्ते की कमी की दशा में भी ऐसा अनुभव किया जा रहा है। यही कारण है कि अमेरिका-जैसे विकसित देशों में सूक्ष्मपोषक तत्वों का इस्तेमाल 'प्रीमियम श्रेणी' के उर्वरकों के माध्यम से सुरक्षा या अनुरक्षण की दृष्टि से करने का प्रचलन है। अमेरिका में ऐसे उर्वरकों के थैलों पर बोरॉन और मोलिब्डेनम की मात्राओं का स्पष्ट निर्देश रहता है। ऐसे उर्वरकों में इन तत्वों की अधिकतम मात्रा क्रमश: 0.03 और 0.001 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा बोरॉन की अधिकता से पौधों की विषालुता और मोलिब्डेनम की अधिकता से पशु चारों में विषालुता होने की आशंका रहती है। अमेरिका में उर्वरकों में कम से कम 0.02 प्रतिशत बोरॉन, 0.05 प्रतिशत कैल्शियम, 0.1 प्रतिशत लोहा, 0.05 प्रतिशत मैंगनीज, 0.005 प्रतिशत मोलिब्डेनम और 0.05 प्रतिशत जस्ता अवश्य होना चाहिए।

लोहा

लोहे की पूर्ति हेतु आक्साइड, लवण तथा संश्लेषित चिलेटों का उपयोग किया जाता है। परीक्षणों से पता चला है कि लोहे की कमी दूर करने के लिए इसका पर्णीय छिड़काव, मिट्टी में डालने की अपेक्षा विशेष प्रभावकारी सिद्ध होता है। लोहे के संश्लेषित चिलेटों या प्राकृतिक मिश्रणों का प्रयोग यद्यपि कुछ दशाओं में उपयोगी पाया गया है, परंतु आर्थिक दृष्टि से इनका इस्तेमाल भारतीय दशाओं में व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता। लोहा-उर्वरक के कुछ स्रोत सारणी 5.9 में दिए गए हैं।

सारणी 5.9: लोहा-उर्वरक के कुछ स्रोत

उर्वरक	प्रतिशत लोहा (लगभग)
फैरस सल्फेट	19
फैरिक सल्फेट	23
फैरस ऑक्साइड	77
फैरिक ऑक्साइड	69
फैरस अमोनियम फास्फेट	29
फैरस अमोनियम सल्फेट	14
आयरन फ्रिट्स	भिन्न-भिन्न
आयरन अमोनियम वाली फॉस्फेट	22
आयरन चिलेट	5-14
आयरन पाली फ्लेवोनोइड्स	9-10
आयरन लिगिनन सल्फोनेट्स	5-8
आयरन मिथाक्सीफेनिल प्रोपेन	5

मैंग्नीज

सारणी 5.10 में दिए गए मैंगनीज के विभिन्न यौगिकों एवं खनिजों में मैंगनीज सल्फेट प्रमुख हैं, जिनका इस्तेमाल मिट्टी में या पर्णीय छिड़काव द्वारा किया जाता है।

सारणी 5.10: प्रमुख मैंगनीज उर्वरक

उर्वरक	प्रतिशत मैंगनीज (लगभग)
मैंगनीज सल्फेट	26-28

मैंगनीज मिथोक्सीकेनिल प्रोपेन	10-12
मैंगनीज चिलेट	12
मैंगनीज कार्बोनेट	31
मैंगनीज क्लोराइड	17
मैंगनीज आक्साइड	63
मैंगनीज फ्रिट्स	10-25
मैंगनीज अकार्बनिक ऑक्साइड	69
क्षारीय मैंगनस सल्फेट	53

जस्ता

जस्ते की कमी के निवारण हेतु आमतौर पर जिंक सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग मिट्टी में तथा पर्णीय छिड़काव द्वारा बखूबी किया जाता है। इसके अलावा जिंक ऑक्साइड और जिंक फ्रिटस का इस्तेमाल भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। जिंक-ईडीटीए अथवा अन्य जिंक चिलेटों की क्षमता विभिन्न लवणों की तुलना में 3 से 10 गुणा अधिक होती है, परंतु अधिक महंगे होने के कारण इनका प्रयोग हमारे देश में नहीं किया जाता। जस्ते के कुछ उर्वरक स्रोत सारणी 5.11 में दिए गए हैं।

सारणी 5.11 : जस्ता उर्वरक के कुछ स्रोत

उर्वरक	जस्ता प्रतिशत
जिंक सल्फेट (मोनो हाइड्रेट)	36
जिंक सल्फेट (हेप्टा हाइड्रेट)	22
जिंक ऑक्साइड	60-80

जिंक कार्बोनेट	56
जिंक क्लोराइड	45-52
जिंक फॉस्फेट	50
जिंक नाइट्रेट (द्रव)	15
स्फालेराइट	60
जिंक ऑक्सीसल्फेट	52
जिंक मैगनीज अमोनियम सल्फेट	15
जिंक अमोनियम सल्फेट	10
जिंक डस्ट	99.8
द्रव जिंक	1
जिंक फ्रिट्स सिलिकेट	4 (भिन्न-भिन्न)
जिंक-चिलेट	
जिंक-ईडीटीए	14
जिंक एचईडीटीए	8
जिंक-एनटीए	13
जिंक पॉली फ्लेवोनोयड	10
जिंक लिग्निन सल्फोनेट	5

तांबा

इस तत्व की पूर्ति के लिए साधारणतया कॉपर सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा कॉपर ऑक्साइड, कॉपर सल्फेट व कॉपर हाइड्रॉक्साइड के मिश्रण का भी प्रयोग किया जा सकता है। तांबा के कुछ स्रोत सारणी 5.12 में दिए गए हैं।

सारणी 5.12 : तांबा उर्वरक के कुछ स्रोत

उर्वरक	तांबा प्रतिशत
कॉपर सल्फेट (पेंटाहाइड्रेट)	25
कॉपर सल्फेट (मोनोहाइड्रेट)	35
बेसिक कॉपर सल्फेट	13-53
मैलाकाइट	57
एजुराइट	55
क्यूप्राइट	89
क्यूप्रिक ऑक्साइड	75
चैल्कोसाइट	80
चैल्कोपाइराइट	35
कॉपर ऐसीटेट	32
कॉपर ऑक्सीलेट	40
कॉपर अमोनियम फॉस्फेट	32
कॉपर गंधक फ्यूजन	भिन्न-भिन्न
कॉपर चिलेट	13

बोरॉन

बोरॉन उर्वरकों के कुछ स्रोत सारणी 5.13 में दिए गए हैं। सामान्यतया बोरॉन की पूर्ति के लिए सोडियम टेट्राबोरेट का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग अन्य दानेदार उर्वरकों के साथ मिलकर मिट्टी में या द्रव उर्वरकों के साथ घोल तैयार करके पर्णीय छिड़काव किया जाता है।

मॉलिब्डेनम

विभिन्न सूक्ष्म मात्रिक तत्वों में मॉलिब्डेनम की आवश्यकता पौधों को सबसे कम मात्रा में पड़ती है। इसकी कमी को दूर करने के लिए साधारणतया सोडियम मॉलिब्डेट का प्रयोग किया जाता है। मॉलिब्डेनम के कुछ स्रोत सारणी 5.14 में दिए गए हैं।

सारणी 5.13: बोरॉन उर्वरक

उर्वरक	प्रतिशत बोरॉन
बोरेक्स	11
सोडियम पेन्टाबोरेट	18
सोडियम टेट्राबोरेट	14
उर्वरक बोरेट-46	20
उर्वरक बोरेटे-65	
सोलुबोर	20
बोरिक एसिड	17
कोलामाराइट	10
बोरॉन फ्रिट्स	2-6
कैल्शियम बोरेट	10

सारणी 5.14 : मॉलिब्डेनम उर्वरक

उर्वरक	प्रतिशत मॉलिब्डेनम
सोडियम मॉलिब्डेट	39
अमोनियम मॉलिब्डेट	54
मॉलिब्डेनम ट्राइऑक्साइड	66

मॉलिब्डेनम सल्फाइड	60
मॉलिब्डेनम फ्रिट्स	2-3
मॉलिब्डिक ऑक्साइड	47-66

सारणी 5.15 : सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए उर्वरक सामग्री की आवश्यक मात्रा

उर्वरक सामग्री	मात्रा
जिंक सल्फेट	सामान्य भूमि में 15-25 किग्रा./हे. और ऊसर भूमि में 50 किग्रा/हे.। धान के फसल-चक्र में बाद में आने वाली फसलें भूमि में अवशेष जिंक में लाभान्वित होती है। एक बार इस्तेमाल की गई जिंक की मात्रा 2 फसल-चक्र के लिए पर्याप्त होती है।
फेरस सल्फेट	50 किग्रा./हे.
मैंगनीज सल्फेट	20 किग्रा./हे.
कॉपर सल्फेट	15-20 किग्रा./हे.
बोरेक्स	5 से 10 किग्रा./हे.
सोडियम मॉलिब्डेट	1-2 किग्रा./हे.

सारणी 5.16: सूक्ष्म पोषक तत्व वाले उर्वरकों के पर्णीय छिड़काव की दर

वाहक	एक हेक्टेयर के लिए दर
जिंक सल्फेट	5 किग्रा. जिंक सल्फेट और 2.5 किग्रा. बुझा चूना 1000 लीटर पानी में घोलकर दो-तीन छिड़काव करें।
फेरस सल्फेट	एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 10 किग्रा. फेरस सल्फेट 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
मैंगनीज सल्फेट	5 किग्रा. मैंगनीज सल्फेट 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
कॉपर सल्फेट	2 किग्रा. कॉपर सल्फेट को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
बोरेक्स	1 किग्रा. बोरेक्स 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
सोडियम मालिब्डैट	100 ग्राम सोडियम मॉलिब्डेट 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

नोट: फसल की कल्ले निकलने की अवस्था/घुटने की ऊँचाई की अवस्था में पर्णीय छिड़काव प्रारंभ करना चाहिए। पूर्ण नियंत्रण के लिए साप्ताहिक अंतराल पर 2-3 छिड़काव आवश्यक होता है।

मिश्रित उर्वरक

मिश्रित उर्वरक से साधारणत: ऐसे उर्वरकों का बोध होता है, जो दो या तीन तरह के उर्वरकों को आपस में मिलाकर तैयार किए जाते हैं। ऐसे उर्वरक मिश्रण में दो या तीन प्रमुख पोषक तत्व मौजूद होते हैं। उर्वरक-ग्रेड के अनुसार नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाशधारी उर्वरकों को एक निश्चित मात्रा में मिलाकर उर्वरक मिश्रण तैयार किया जाता है। उर्वरक मिश्रण के निर्माण के समय साधारणतया किसी प्रकार की रासायनिक अभिक्रिया नहीं होती है।

उर्वरक मिश्रण तैयार करने के लिए जिन-जिन उर्वरकों का इस्तेमाल किया जाता है, उनकी सही-सही जानकारी नहीं हो पाती। ऐसे

मिश्रण गुप्त फार्मूले वाले मिश्रण कहलाते हैं। इसके विपरीत जिन मिश्रणों के उर्वरकों की घोषणा कर दी जाती है। उन्हें ज्ञात फार्मूले वाले मिश्रण कहते हैं। ज्ञात फार्मूले वाले उर्वरक-मिश्रण के प्रयोग का एक लाभ यह है कि उससे यह ज्ञात रहता है कि जो उर्वरक इस्तेमाल किया जा रहा है, उसमें फसल की आवश्यकता पूरी करने के लिए कौन-कौन से तत्व मौजूद हैं और उनकी विशिष्ट प्रकार ही मिट्टी में किस प्रकार की अभिक्रिया होगी।

उर्वरक मिश्रण के विषय में जानकारी के लिए निम्नांकित शब्दावली का सही अर्थ बोध होना चाहिए :

(क) उर्वरक ग्रेड

(ख) उर्वरक अनुपात

(ग) अनुकूलक

(घ) पूरक

उर्वरक ग्रेड

उर्वरक ग्रेड से हमें मिश्रित उर्वरकों में उपस्थित नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की न्यूनतम प्रतिशत मात्रा का बोध होता है। उर्वरक ग्रेड के अनुसार उर्वरक में विशिष्ट पोषक तत्वों की मौजूदगी की गारंटी रहती है। उदाहरण के रूप में 12-6-6 ग्रेड के 100 किग्रा. मिश्रित उर्वरक में कम से कम 12 किग्रा. नाइट्रोजन, 6 किग्रा. फास्फोरस और 6 किग्रा. पोटाश निश्चित रूप से मिलना चाहिए। अत: स्पष्ट है कि मिश्रित उर्वरकों के बोरों पर लिखी गई संख्याएं क्रमश: नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश की उपस्थित मात्रा को इंगित करती है।

उर्वरक अनुपात

उर्वरक अनुपात से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश तत्व किस

अनुपात में उपस्थित हैं, इसका बोध होता है। उदाहरण के लिए 12-6-6 ग्रेड वाले उर्वरक-मिश्रण में उर्वरक अनुपात 2:1:1 होता है।

अनुकूलक

अनुकूलक वह सामग्री है, जिसका प्रयोग उर्वरक मिश्रण तैयार करते समय इस आशय से किया जाता है ताकि मिश्रण की उर्वरक सामग्री नमी का अवशोषण न करें, जिससे उसमें ढेले न बनें। साथ ही उसकी भौतिक दशा में भी सुधार हो जाए।

पूरक

एक वांछित ग्रेड का उर्वरक-मिश्रण तैयार करते समय उसका निश्चित भार पूरा करने के लिए जिस सामग्री का प्रयोग किया जाता है उसे पूरक कहते हैं। ऐसी सामग्रियों में रेत, मिट्टी, कोयले के चूर्ण आदि की गणना की जाती है।

अध्याय-6

जैव-उर्वरक

फसलों से अच्छी पैदावार लेने के लिए लगभग अनेक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। मृदा में इन तत्वों में से किसी एक की कमी होने पर या तो बाहरी रूप से असामान्य लक्षण प्रकट हो जाते हैं अथवा बढ़वार में न्यूनाधिक कमी आ जाती है। इन्हीं में से एक तत्व नाइट्रोजन पौधों की बढ़वार के लिए आवश्यक होता है। नाइट्रोजन की आपूर्ति हम उर्वरकों से करते हैं। लेकिन रासायनिक उर्वरक महंगा होने की वजह से किसान संतुलित मात्रा में प्रयोग नहीं कर पाता है। अत: इन परिस्थितियों में जैव-उर्वरकों का विकास इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पिछले कुछ दशकों से संसार में दलहनी फसलों में जैव-उर्वरकों का उपयोग हो रहा है। लेकिन धान्य फसलों में जैव-उर्वरकों की कमी किसानों द्वारा काफी समय से महसूस की जा रही है। मिट्टी में पोषक तत्वों की होने वाली क्षति तथा रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती कीमत ने वर्तमान में कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि रासायनिक उर्वरकों का कोई उपयुक्त विकल्प खोजा जाए। इस दृष्टिकोण से कृषि वैज्ञानिकों ने धान्य फसलों के लिए जैव-उर्वरक की खोज कर ली है। इसे जीवाणु-खाद के नाम से भी जाना जाता है।

जैव-उर्वरक या जीवाणु खाद विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं का एक विशेष प्रकार के माध्यम (कोयला, मिट्टी, गोबर की खाद) में ऐसा मिश्रण है, जो कि वायुमंडल की नाइट्रोजन को लेकर पौधों को उपलब्ध कराता है। इसके साथ ही यह कुछ लाभदायक विटामिन, हारमोन्स तथा पौधों की वृद्धि में सहायक सूक्ष्म पोषक तत्वों का संश्लेषण भी करता है। ये सभी जैव-उर्वरक पूर्णत: प्राय: प्राकृतिक एवं सूक्ष्म जीवाणु पर

आधारित हैं। ये सभी जीवाणु मिट्टी एवं पौधों की जड़ों मे उपस्थित ग्रंथियों में भी पाए जाते हैं। इनका मिट्टी या वातावरण आदि पर कोई भी हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।

जैव-उर्वरकों को जैव-कल्चर अथवा जैव-टीके भी कहा जाता है। अकार्बनिक उर्वरकों की उच्च कीमतों तथा अप्राप्यता के परिप्रेक्ष्य में जैव-उर्वरक वैकल्पिक पदार्थों के रूप में प्रयोग किए जा रहे हैं। इन उर्वरकों का प्रयोग प्राचीन काल से किया जाता रहा है। दलहनी फसलों की जड़ों में जीवाणुओं द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिर करने की क्षमता होती है। यदि इन जीवाणुओं के कल्चर अथवा टीके मृदा में मिला दिए जाते हैं तो जीवाणुओं द्वारा स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। अब अनेक जीवाणुओं के टीके (कल्चर) प्रचलित हैं। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं।

1. राइज़ोबियम कल्चर (दलहनी फसलों के लिए)
2. एजोटोबैक्टर कल्चर (गेहूं तथा अन्य अनाज फसलों के लिए)
3. एजोस्पाइलर्स कल्चर (2 के लिए)
4. शैवाल टीके नील-हरित शैवाल (धान व अन्य अनाज की फसलों के लिए)
5. फास्फोबैक्टीरिन टीका (फास्फेट विलेय करने के लिए प्रयुक्त)

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के जैव-उर्वरकों का निर्माण किया जा रहा है। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के अधीन जैव-उर्वरकों पर अनुसंधान किए जा रहे हैं तथा नए-नए जैव-उर्वरकों का विकास किया जा रहा है। इन उर्वरकों के प्रचलित होने का प्रमुख कारण इनका अपेक्षाकृत सस्ता व अधिक अवशेषी प्रभाव होना है।

राइज़ोबियम कल्चर

यह सर्वाधिक प्रयोग होने वाले जैव-उर्वरक है। राइजोबियम सूक्ष्म जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों की गांठों के वे जीवाणु है जो अपने

पोषक पौधे के सहयोग से कार्य करते हैं और वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में जमा कर देते हैं। यह क्रिया विधि सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहलाती है। भारत में दलहनी फसलों द्वारा 50 से 150 किलोग्राम तक नाइट्रोजन वायु ग्रहण करके मृदा में जमा की जाती है। सनई व लोबिया द्वारा लगभग 90 किग्रा., बरसीम द्वारा 120 किग्रा. अरहर द्वारा 40 किग्रा., मटर व चने द्वारा 80-100 किग्रा. तक नाइट्रोजन प्रतिवर्ष स्थिर हो सकती है। कल्चर मिलाने के फलस्वरूप मृदा नाइट्रोजन में 15-20 प्रतिशत तक की वृद्धि संभव है। प्रत्येक फसल अथवा वर्ग के लिए राइज़ोबियम कल्चर भिन्न-भिन्न होता है क्योंकि फसलों के अनुसार सहजीवी जीवाणु भी भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ फसलों के नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जीवाणु निम्नलिखित हैं :

सारणी 6.1: दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जीवाणु

सूक्ष्म जीवाणु	वर्ग का नाम	फसलें
1. राइज़ोबियम	रिजका वर्ग	रिजका, स्वीट फ्लॉवर
2. राइज़ोबियम ट्राईफोली	तिपतिया वर्ग	बरसीम
3. राइज़ोबियम लेग्यूमिनोसेरम	मटर वर्ग	मटर, मसूर
4. राइज़ोबियम फेजियोला	बीन वर्ग	सेम, मोंठ
5. राइज़ोबियम जैपोनीकम	सोयाबीन वर्ग	सोयाबीन
6. राइज़ोबियम प्रजाति	लोबिया वर्ग	लोबिया, सेम, मूंगफली

इन जीवाणुओं के पृथक् कल्चर तैयार किए जाते हैं तथा विशिष्ट फसलों में प्रयोग किए जाते हैं। सम्मिलित रूप से इन्हें राइज़ोबियम कल्चर कहते हैं।

एजोटोबैक्टर कल्चर

यह कल्चर गैर-दलहनी फसलों में प्रयुक्त होते हैं। इनमें राइजोबियम सूक्ष्म जीवाणु के स्थान पर एजोटोबैक्टर अथवा एजोस्पाइरिलम जीवाणुओं का संवर्धन किया जाता है। ये कल्चर मुख्य रूप से गेहूं व धान में प्रयोग किए जा रहे हैं। चूंकि इन फसलों की जड़ों में गाठें नहीं होती हैं अत: ये मृदा में रहकर वायुमंडल की नाइट्रोजन जमा करते हैं। इस प्रकार का स्थिरीकरण असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहलाता है। इनमें प्रमुख जीवाणु *एजोटोबैक्टर, रोडो-स्यूडोमोनास, बेंजरिकिया* आदि प्रयुक्त किए जाते हैं। इनके प्रयोग से गेहूं व धान की उपज में अत्यधिक वृद्धि होती है।

फास्फोबैक्टीरिन कल्चर

इसे फास्फोरस विलेयक जीवाणु कहते हैं। फॉस्फोबैक्टर एक ऐसा जीवाणु है जो अविलेय तथा अप्राप्य फॉस्फोरस को विलेय करके प्राप्य बनाता है। प्राय: मृदाओं में फॉस्फोरस अविलेय अवस्था में रहता है। विलेय फॉस्फेटिक उर्वरक भी मृदा में प्रयोग करने पर शीघ्र ही अविलेय हो जाते हैं तथा पौधों को सुलभ नहीं रह पाते हैं। ऐसी मृदाओं में फॉस्फोबैक्टीरिन कल्चर का प्रयोग किया जाता है जिससे अविलेय फॉस्फोरस विलेय हो जाता है तथा अंत में पौधों को सुलभ होता है। देश में विभिन्न फसलों पर किए गए अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि फॉस्फो-बैक्टीरिन के प्रयोग से धान, गेहूं, मक्का, चना, उड़द मटर, अरहर आदि के लिए फॉस्फोरस की उपलब्धि 10-30 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। दलहनी फसलों में राइज़ोबियम के साथ इसका प्रयोग करने पर यह अधिक प्रभावशाली होता है।

कुछ फॉस्फेट विलेयकारी जीवाणु निम्नलिखित हैं:

1. *स्यूडोमोनास स्ट्रेटा*
2. *बैसिलस पोलीमिक्सा*

3. *बैसिलस मेगाटेरियम*

4. *एस्पर्जिलस अवामोरी*

शैवालिक कल्चर

नीली-हरी शैवाल वायुमंडल तथा अन्य स्रोतों से नाइट्रोजन लेकर उसको मृदा में जमा कर देती है। ये मृदा में धरातल तथा नीचे के संस्तरों में पाई जाती है, परंतु जो शैवाल धरातल पर होते हैं वे ही नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर पाते हैं क्योंकि उन्हीं में प्रकाश-संश्लेषण क्रिया हो सकती है। उत्तर प्रदेश व बिहार के धान के खेतों में नीले-हरे शैवालों के समुदाय के नाइट्रोजन स्थिर करने वाले शैवाल सर्वत्र अधिकता में पाए जाते हैं। इनमें *औलोसीरा फर्टिलीसिया*, एनाबीना, एम्बीगुआ, *एनाबीना फर्टिलिसिमा*, नोटस्टोक प्रजाति आदि प्रमुख हैं। शैवालों की बढ़वार, मृदा की प्रकृति, कार्बनिक पदार्थ, नमी की मात्रा, चूना अंश व पी-एच. मान पर निर्भर करती है। धान तथा अनाज की फसलों में नील-हरित शैवालों के कल्चर काफी प्रचलित हो रहे हैं। कल्चर वाले धान की उपज में 100-300 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई है।

नील-हरित शैवाल का प्रयोग ऊसर भूमि के सुधारों में भी किया जा सकता है। समुद्री शैवाल जिनमें पोटाश, अमोनियम सल्फेट, सूक्ष्म तत्व अनेक वृद्धिकारक तत्व होते हैं, बहुतायत में प्रयोग किए जा रहे हैं। भारत में शैवाल उर्वरकों का प्रयोग कम मात्रा में ही हो रहा है परंतु भविष्य में शैवाल कल्चर अकार्बनिक उर्वरकों का अच्छा विकल्प बन सकते हैं।

जैसा कि इसके नाम से विदित होता है, यह नीले-हरे रंग की होती है जो वायुमंडलीय स्वतंत्र नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करके फसल को प्रदान करती है जो धान की खेती के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। साथ ही इसका सबसे अच्छा फायदा यह है कि किसान इस उर्वरक को स्वयं अपने खेत या घर पर कम लागत में बना सकता

है। वैसे तो धान के खेत में ये शैवाल स्वत: ही उग आते हैं। यदि पर्याप्त मात्रा में एवं शुद्ध नील-हरित शैवाल का उपयोग किया जाए तो धान की पैदावार को काफी बढ़ाया जा सकता है। नील-हरित शैवाल की कुछ जातियां, जैसे नोस्टाक, एंनाबिना, ओलीसिरा इत्यादि धान की खेती के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इस शैवाल के तंतुओं में डिटरोसिस्ट नामक कोशिकाएं होती हैं जिनमें वायुमंडल की नाइट्रोजन का अमोनिया में परिवर्तन होता है तथा यहां से इनका स्थानांतरण पौधों की जड़ों में होता है। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि धान के खेत में दो प्रकार के शैवाल (काई) पाए जाते हैं। इनमें से एक को नील-हरित शैवाल एवं दूसरे को हरित शैवाल कहते हैं। नील-हरित शैवाल ही पौधों के लिए लाभदायक होता है तथा हरित शैवाल पौधों के लिए हानिकारक होता है। नील-हरित शैवाल लगभग 30-40 किग्रा. नाइट्रोजन/हे. उपलब्ध कराता है और एक हेक्टेयर में लगभग 10 किग्रा. नील-हरित शैवाल की आवश्यकता पड़ती है।

नील हरित शैवाल का खेत में उपयोग करने की विधि

1. खेत में एक आयताकार गड्ढा खोदें तथा उसी के आकार का पोलीथीन सतह पर बिछाएं।

2. इस गड्ढे में 3-4 किग्रा. अच्छी मिट्टी प्रति वर्ग मीटर की दर से डालें और 100 ग्राम सुपरफॉस्फेट प्रति वर्ग मीटर की दर से समान रूप से छिड़क दें।

3. लगभग 10-15 सेमी. ऊंचाई तक पूरे गड्ढे में पानी भर दें एवं 2 मिमी. मैलाथियान भी मिलाएं उसके पश्चात् एक दिन तक गड्ढे को ऐसे ही छोड़ दें।

4. जब मिट्टी तल में बैठ जाए तो 100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से नील-हरित शैवाल के मदर कल्चर का सतह पर छिड़काव करें।

5. जब तापमान 35 डि.से. या इससे अधिक होता है तब इस शैवाल में तीव्रता से वृद्धि होती है और 10 से 15 दिनों के अंदर

पानी की सतह पर शैवाल की मोटी तह बन जाती है। शैवाल की वृद्धि के समय गड्ढे को 10 सेमी. की ऊंचाई तक पानी से भरकर रखना चाहिए एवं जब शैवाल की मोटी तह बन जाए, तब पानी बंद कर देना चाहिए और शैवाल की सतह को धूप में सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए।

6. पूर्णत: सूखने के बाद शैवाल की तह मिट्टी से अलग हो जाएगी इन्हें निकाल कर पोलिथिन की थैलियों में भंडारण करें।

7. लगभग एक किलोग्राम नील-हरित शैवाल प्रति वर्ग मीटर क्षेत्रफल से प्राप्त किया जा सकता है। एक बार शैवाल को निकालने के बाद पुन: गड्ढे में सुपरफॉस्फेट एवं मदर कल्चर का छिड़काव करें और ऊपर दी गई विधि की पुनरावृत्ति करें।

सावधानी

शैवाल पैदा करने वाले गड्ढों में मच्छरों आदि को न रहने दें यदि जरूरी हो तो मैलाथियान का छिड़काव करें। नील-हरित शैवाल का रासायनिक उर्वरकों एवं रासायनिक दवाओं के साथ भंडारण न करें।

नील-हरित शैवाल के प्रयोग की विधि

1. नील-हरित शैवाल का 10 किग्रा./हे. की दर से रोपाई के 5-7 दिन बाद खेत में छिड़काव करें तथा लगभग 7 दिन तक खेत में शैवाल के छिड़काव के बाद पानी भर कर रखें।

2. यदि नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग करना हो तो 2/3 भाग रासायनिक उर्वरक का प्रयोग करें एवं शेष नील-हरित शैवाल का प्रयोग करके पूर्ति करें।

3. कीटनाशक दवाओं का प्रयोग एवं अन्य दवाओं का प्रयोग पूर्व की भांति करें। इसका शैवाल पर कोई भी हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।

नील हरित शैवाल के प्रयोग से आर्थिक लाभ

शैवाल को खेत में प्रयोग करने से इसकी लागत लगभग न के बराबर आती है। 10 किग्रा. शैवाल की कीमत 30 रु. आती है और एक हेक्टेयर में 25-30 किग्रा. नाइट्रोजन उपलब्ध कराता है जिसकी कीमत लगभग 100 रु. प्रति हेक्टेयर की बचत होती है। साथ ही पैदावार में लगभग 300 किग्रा./हे. की वृद्धि होती है। सबसे मुख्य बात यह है कि यह प्रदूषण मुक्त है।

ऐजोला

ऐजोला की कृषि में उपयोगिता संबंधी जानकारी सर्वप्रथम वियतनाम और थाइलैंड से पाप्त हुई। ऐजोला एक जलीय फर्न है। यह एनाबीना नामक नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले नीलहरित शैवाल की पृष्ठीय पत्तियों की गुहिकाओं में सहजीवी अणुजीव के रूप में पाया जाता है। नील-हरित शैवाल एवं ऐजोला के पारस्परिक सहजीवन के फलस्वरूप वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। केंद्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक में क्षेत्र परीक्षणों से पता चला है कि पूरे वर्ष भर ऐजोला की खेती की जा सकती है। ऐजोला में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं:

1. इसमें सौर ऊर्जा उपयोग करने की क्षमता पाई जाती है।

2. संयुक्त नाइट्रोजन की उपस्थिति में यह नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने में सक्षम होता है।

3. सघन पर्णघनत्व के कारण इनसे प्रति वर्ष प्रति हेक्टयर क्षेत्रफल से 37 टन जैव पदार्थ प्राप्त हो जाता है।

इन विशेषताओं के साथ ही इसमें निम्नलिखित दोष भी पाए जाते हैं :

1. यह तेज धूप एवं कम ताप के प्रति संवेदनशील होता है। इन दोनों ही दशाओं में इसमें एन्थोसायनिन का निर्माण होने लगता है।

2. यह नहरों एवं अन्य जल-स्रोतों में उगकर एक समस्या उत्पन्न कर देता है।

3. शीघ्र ही इनका स्वलयन हो जाने के कारण इनके संरक्षण एवं यातायात में बाधा पड़ती है। साथ ही इसकी बुआई में भी बाधा पड़ती है।

धान की रोपाई के बाद थोड़ी सी मात्रा में फर्न का निवेशन करने से प्रतिदिन 1-2 किग्रा./हे. की दर से नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। इसका गुणन बहुत ही जल्दी होता है। खेत में ऐजोला का 0.1 से 0.4 किग्रा./वर्ग मीटर की दर से निवेशन करने पर इसका विकास इतनी तेजी से होता है कि 8 से 20 दिन के अंदर एक हैक्टेयर से 8-15 टन हरा पदार्थ प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार साल भर में 347 टन हरा पदार्थ प्राप्त होता है, जिसमें 868.5 किग्रा. नाइट्रोजन होता है। उल्लेखनीय है कि हरे पदार्थ में 0.2 से 0.3 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा शुष्क पदार्थ में 4-5 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है। एजोला के हरे पदार्थ में 94 प्रतिशत जल होता है।

मिट्टी में एजोला के हरे पदार्थ के विघटन के फलस्वरूप अधिकांश नाइट्रोजन धान की फसल को उपलब्ध हो जाती है। जलाक्रांत दशा में धान के खेत में नाइट्रोजन की लगभग आधी मात्रा का खनिजीकरण तीन सप्ताह के अंदर हो जाता है और 6-8 सप्ताह के अंदर दो-तिहाई नाइट्रोजन का खनिजीकरण हो जाता है। अत: जलाक्रांत दशा में एजोला द्वारा धान की फसल में नाइट्रोजन की पूर्ति का महत्व स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है। अंतर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान, फिलीपाइन में किए गए प्रयोगों से पता चला है कि छह सप्ताह के उद्‌भवन के बाद एजोला द्वारा मुक्त किए गए कुल नाइट्रोजन का 62-75 प्रतिशत अमोनिया रूप में पाया जाता है।

एजोला के पौधों में नाइट्रोजन के अलावा शुष्क पदार्थ में 0.5 से 0.9 प्रतिशत फॉस्फोरस, 2-4 से 5 प्रतिशत पोटेशियम, 0.4 से 1.0 प्रतिशत कैल्शियम, 0.5 से 0.65 प्रतिशत मैग्नीशियम, 0.1 से

0.16 प्रतिशत मैंगनीज और 0.06 से 0.26 प्रतिशत लोहा पाया जाता है। अत: स्पष्ट है कि एजोला से नाइट्रोजन के साथ ही अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति होती है।

एजोला का खेत में उपयोग

एजोला के समुचित विकास के लिए खेत में 5-10 सेमी. ऊंचा पानी भरना तथा 4-8 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से फॉस्फेट का प्रयोग करना अति आवश्यक होता है। यदि पानी की समुचित व्यवस्था हो तो एजोला की बुआई (500-1000 किग्रा. ताजा एजोला प्रति टन) धान की रोपाई के एक महीने पहले कर देनी चाहिए। ज्ञातव्य है कि 2000 किग्रा./हे. की दर से एजोला की बुआई करने पर अपेक्षाकृत कम समय में ही हरे पदार्थ की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। कभी-कभी कीड़े भी नुकसान पहुंचाते हैं। ऐसी दशा में निवेशन करते समय ही 3-15 ग्राम की दर से कार्बोफ्युरान मिला दिया जाता है। लगभग 10-20 दिन के उद्‌भवन के पश्चात् संपूर्ण क्षेत्र एजोला से भर जाता है, जिसे पलटकर मिट्टी में मिलाने के बाद धान के पौध की रोपाई की जाती है।

जब समुचित मात्रा में पानी उपलब्ध न हो तो ताजे एजोला का निवेशन 200-1000 किग्रा./हे. की दर से सुपरफॉस्फेट व कीटनाशक रसायन के साथ धान की पौध की रोपाई होने के एक सप्ताह बाद किया जाता है। निवेशन के 20-40 दिन बाद सारा खेत एजोला की वृद्‌धि के फलस्वरूप ढक जाता है। यदि संभव हो सके तो खेत का पानी बाहर निकाल देना चाहिए। ऐसे जलाक्रांत दशा में भी मिट्टी में मिलाया जा सकता है, परंतु हरे पदार्थ के विघटन में अपेक्षाकृत समय अधिक लग जाता है जो फसल के हित में नहीं होता।

एजोला का धान की उपज पर प्रभाव

इन दोनों ही विधियों से एजोला का इस्तेमाल करने पर धान की उपज में प्रति हेक्टेयर औसतन 0.5 से 2 टन की वृद्‌धि होती है।

किए गए क्षेत्र परीक्षणों से पता चला है कि 10 टन/हे. की दर से धान के खेत में एजोला मिलाने से नियंत्रित प्रयोग की तुलना में धान के दाने व पुआल की उपज में 25 से 47 प्रतिशत वृद्धि हुई।

माइकोराइजा

वेसीकुलर अरवसकुलर माइकोराइजा (VAM) जो कि एक कवक है, भी जैव-उर्वरक की श्रेणी में आता है। ये पौधों की जड़ों के पास भागीदारी करके अपनी पोषण संबंधी आवश्यकता को पूरा करते हैं। ये पौधों द्वारा पानी तथा अन्य पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाते हैं तथा मूंगफली, सोयाबीन, मोटे अनाज, संतरा आदि के लिए उपुयक्त होते हैं।

मृदा में जैव-कल्चर प्रयोग करना

मृदा में प्राय: कल्चर का प्रयोग किया जाता है। इसकी प्रयोग की विधि नीचे दी गई है:

1. एक किलोग्राम पानी में 150 ग्राम गुड़ घोलकर उसे गर्म करके गुड़ का घोल तैयार कर लीजिए। इसे ठंडा कीजिए।
2. गुड़ के घोल में 200 ग्राम कल्चर डाल दीजिए और उसे अच्छी तरह मिला दीजिए।
3. गुड़ के घोल व कल्चर मिले मिश्रण में एक हेक्टयर खेत बोए जाने वाले बीज को अच्छी तरह मिलाइए तथा इसको 15 मिनट तक रहने दीजिए।
4. तदुपरांत बीज को छाया में सुखाकर खेत में बो दीजिए।

अन्य जैव-कल्चरों को बीज उपचार के द्वारा अथवा मृदा में सीधे मिलाया जा सकता है।

जैव-उर्वरकों के प्रयोग में असावधानियां

1. कल्चर सदैव ठंडे स्थान पर रखना चाहिए।
2. उपयोग में लाए जाने वाला कल्चर ताजा होना चाहिए, अत: उपयोग में लाने से पहले उपयोग की अंतिम तारीख देख लेनी चाहिए।
3. किसी फसल विशेष के लिए निर्देशित कल्चर का ही उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।
4. बुवाई से बचे बीजों को खाने के उपयोग में नहीं लाना चाहिए।
5. बीज को छाया में उपचारित करना चाहिए तथा सूर्य की तेज धूप एवं गर्म हवा से बचाना चाहिए।
6. कल्चर की लुगदी बनाते समय ज्यादा पानी उपयोग में नहीं लाना चाहिए। लुगदी ऐसी होनी चाहिए जिससे बीज पर कल्चर की एक समान परत चढ़ जाए।
7. उपचारित बीज को उर्वरकों एवं कीटनाशी रसायनों के सम्पर्क से बचाना चाहिए।
8. जीवनाशी रसायनों का उपचार कल्चर उपचार से पूर्व कर लेना चाहिए।
9. बचे हुए कल्चर को 40 डि.से. तापमान पर ठंडे स्थान पर अच्छी तरह बंद करके भंडारण करना चाहिए।

जैव-उर्वरकों का उपयोग नर्सरी की जड़ डुबोकर तथा मिट्टी में सीधे मिलाकर भी किया जाता है।

अध्याय-7

समस्याग्रस्त मृदाएं एवं मृदा सुधारक

मृदा में अनेक प्रकार की समस्याएं होती हैं जो फसल की उपज को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। ऐसी कुछ समस्याएं हैं: अम्लीयता, लवणीयता, क्षारीयता एवं जल-निकास। इन समस्याओं से प्रारंभ में ही पौधों की बाढ़ आंशिक रूप से प्रभावित होती हैं, और यदि समस्याओं का समाधान नहीं किया जाए तो फसलों का उगना संपूर्ण रूप से प्रभावित हो जाता है और फसलें पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती हैं।

समस्याग्रस्त भूमि को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। लवणीय भूमि, क्षारीय भूमि और अम्लीय भूमि। भारत में लवणीय-क्षारीय भूमि का लगभग 70 लाख हेक्टेयर और अम्लीय भूमि का 490 लाख हेक्टेयर क्षेत्र है। अब तक किए गए अनुसंधानों से पता चलता है कि इन मिट्टियों को सुधार कर कृषि योग्य बनाया जा सकता है। समस्याग्रस्त भूमि में खेती करने हेतु पोषक तत्वों का समुचित प्रबंध सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।

क्षारीय (ऊसर) भूमि

ऊसर भूमि का पी-एच मान 8.5 से अधिक होता है और विनिमयशील सोडियम की अधिकता होती है। साथ ही मिट्टी की भौतिक दशा बहुत ही खराब होती है और पोषक तत्वों, विशेष रूप से नाइट्रोजन, कैल्शियम, जस्ता, लोहा, मैंगनीज और ऑक्सीजन की कमी होती है। इन मिट्टियों में उगाई गई फसलें पोषक तत्वों की कमी से ग्रसित रहती हैं। ऐसी भूमि से उत्पादन के लिए सुधार तकनीकी के अतिरिक्त, पोषक तत्वों का उचित और संतुलित प्रबंध की जानकारी इस प्रकार है -

कैल्शियम

ऊसर मिट्टी में घुलनशील और विनिमयशील कैल्शियम की कमी होती है। अधिक ऊसर मिट्टियों में उगाई गई फसलें सोडियम की विषालता की तुलना में कैल्शियम की कमी के कारण शीघ्र मर जाती हैं। जिप्सम, पाइराइट, फॉस्फोजिप्सम-जैसे सुधारकों के प्रयोग से मिट्टी की भौतिक-रासायनिक दशा में सुधार के साथ ही पौधों को घुलनशील कैल्शियम की भो आपूर्ति होती है। अत: ऊसर भूमि में फसल की अच्छी उपज के लिए आवश्यक मात्रा में सुधारक का प्रयोग नितांत आवश्यक हो जाता है। कार्बनिक सुधारकों, जैसे गोबर की खाद, धान का पुआल, भूसी आदि के प्रयोग और ढैंचा की हरी खाद देने से मिट्टी में मौजूद कैल्शियम कार्बोनेट की घुलनशीलता बढ़ जाने से कैल्शियम पौधों को उपलब्ध होने लगता है। ऐसे भूमि सुधार के बाद सर्वप्रथम धान की फसल ली जाती है। धान के पौधों की जड़ों की जैविक क्रियाओं द्वारा भी मिट्टी में मौजूद कैल्शियम कार्बोनेट का कैल्शियम घुलनशील हो जाता है जो पौधों को उपलब्ध होता है।

नाइट्रोजन

ऊसर भूमि में नाइट्रोजन की विशेष कमी होती है। इसके कारण निम्नलिखित हैं :

जीवांश पदार्थ की कमी

ज्ञातव्य है कि मिट्टी में जीवांश पदार्थ नाइट्रोजन के बैंक रूप में होता है, चूंकि ऊसर मिट्टियों में किसी भी प्रकार की वनस्पति नहीं उगती, अत: प्राकृतिक वनस्पति से जीवांश पदार्थ की पूर्ति इन मिट्टियों में नहीं हो पाती। ऐसी अधिकांश मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की मात्रा 0.1 प्रतिशत से कम पाई जाती है।

अधिक पी-एच, क्षारीयता और कार्बन डाइऑक्साइड के कारण

सूक्ष्म जैविक क्रियाएं कम होती हैं जिसके कारण कार्बनिक नाइट्रोजन का अकार्बनिक नाइट्रोजन के रूप में रूपांतरण धीमी गति से होता है।

अधिक पी-एच/क्षारीयता और कैल्शियम कार्बोनेट के कारण प्रयुक्त नाइट्रोजन की गैस रूप में अधिकतम 60 प्रतिशत तक हानि हो सकती है।

ऊसर भूमि में उगाई जाने वाली फसलों में नाइट्रोजन की कमी को दूर करने के लिए उर्वरक प्रयोग की संस्तुतियां इस प्रकार हैं:

1. ऊसर मिट्टियों में सामान्य मिट्टी की तुलना में नाइट्रोजन को संस्तुत मात्रा 25 प्रतिशत अधिक कर देनी चाहिए। ऐसी भूमि में उगाई गई धान और गेहूं की फसल के लिए 150 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन के प्रयोग की संस्तुति की जाती है।
2. चूंकि सभी नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों से नाइट्रोजन की हानि सामान्यत: समान होती है, इसलिए यूरिया उर्वरक को अन्य उर्वरकों की तुलना में वरीयता दी जाती है। वैसे अमोनियम सल्फेट अम्लीय प्रभाव के कारण यूरिया की तुलना में विशेष कारगर सिद्ध हुआ है।
3. नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रयोग कई बार में करना चाहिए। उर्वरकों की संस्तुत मात्रा की एक-तिहाई मात्रा आधारीय (बेसल) रूप में डालने के बाद शेष मात्रा दो समान भागों में खड़ी फसल में टॉपड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करना चाहिए। धान की फसल में रोपाई के तीन और छ: सप्ताह के बाद नाइट्रोजन की टॉपड्रेसिंग करनी चाहिए। गेहूं की फसल में पहली सिंचाई के बाद और बुआई के 45 दिन बाद टॉपड्रेसिंग करनी चाहिए।
4. धान की फसल में यूरिया सुपरग्रेन्यूल का रोपाई के एक सप्ताह बाद 10 सेमी. की गहराई पर प्रयोग करने से नाइट्रोजन की क्षमता बढ़ जाती है। यह गंधक लेपित और नीम की खली में लेपित यूरिया की अपेक्षा अधिक कारगर पाया गया है।
5. धान में ढैंचा की हरी खाद देने से विशेष लाभ होता है। मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार के साथ ही इससे प्रति हेक्टेयर लगभग 60 किग्रा. नाइट्रोजन की पूर्ति हो सकती है।

फॉस्फोरस

खाली पड़ी ऊसर भूमि में कुल और निष्कर्षशील फॉस्फोरस की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। ऐसी भूमि में सतही मिट्टी की विद्युत् चालकता अधिक होने के कारण निष्कर्षणशील ओल्सन फॉस्फोरस (ओलसन विधि से निस्सारित) की मात्रा बढ़ जाती है। ऊसर सुधार हेतु खेत में पानी भरने पर घुलनशील सोडियम फॉस्फेट का निक्षालन होता है। साथ ही इन मिट्टियों में अधिक मात्रा में उपस्थित सोडियम कार्बोनेट मिट्टी में मौजूद कैल्शियम फॉस्फेट से क्रिया कर घुलनशील सोडियम फॉस्फेट बनाता है। ऊसर सुधार हेतु सुधारकों का प्रयोग करने पर भूमि की ऊपरी सतह का सोडियम फॉस्फेट कैल्शियम से क्रिया करके अघुलनशील कैल्शियम फॉस्फेट के रूप में बदल जाता है। इस प्रकार मिट्टी में निष्कर्षणशील फॉस्फोरस की मात्रा अधिक होने के कारण फॉस्फेटिक उर्वरकों के दीर्घकालीन क्षेत्र परीक्षण प्रयोग से उत्पादन प्रभावित नहीं होता है। करनाल में किए गए दीर्घकालीन क्षेत्र परीक्षण के परिणामों से यह ज्ञात हुआ है कि धान की फसल में प्रथम पांच वर्षों तक सिंगल सुपर फॉस्फेट के रूप में प्रति हेक्टेयर 22 किग्रा. की दर से फॉस्फोरस के प्रयोग से दाने की उपज अथवा पौधों में फॉस्फोरस की मात्रा पर कोई लाभदायक प्रभाव नहीं हुआ। पांच वर्षों के बाद जब मिट्टी में उपलब्ध फॉस्फोरस कम होकर क्रांतिक स्तर 11.4 किग्रा./हे. के बराबर हुई तो धान की फसल फॉस्फोरस के प्रयोग से लाभान्वित हुई। गेहूं की फसल फॉस्फोरसधारी उर्वरक के प्रयोग से तब लाभान्वित हुई जब मिट्टी की 0.5 और 15-30 सेमी. दोनों सतहों में उपलब्ध फॉस्फोरस क्रांतिक स्तर से कम हो गया। कानपुर में किए गए परीक्षणों में ऊसर भूमि में फॉस्फोरस के प्रयोग

से लाभदायक परिणाम मिले हैं। अत: मिट्टी परीक्षण द्वारा फॉस्फोरस उर्वरता स्तर जानने के बाद फॉस्फोरस के प्रयोग की संस्तुति मृदा परीक्षण के आधार पर ही की जानी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि सुधारकों का प्रयोग कर निक्षालन क्रिया पूरी करने के बाद मिट्टी के नमूने फॉस्फोरस की मात्रा निर्धारित करने हेतु लिए जाएं।

पोटैशियम

गंगा के मैदानी क्षेत्रों में पाई जाने वाली ऊसर मिट्टियों में इलाइट की प्रमुखता है जिसमें पोटाश अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाया जाता है। बंजर ऊसर भूमि में अमोनियम एसीटेट द्वारा निष्कर्षणशील पोटैशियम की मात्रा अधिक (60 पीपीएम तक) होती है। अत: इन मिट्टियों में प्रारंभ में पोटैशियम के प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती है। करनाल में किए गए दीर्घकालीन क्षेत्र परीक्षण में धान-गेहूं फसल-चक्र में 12 वर्षों तक पोटैशियम के प्रयोग से उपज में सार्थक वृद्धि नहीं हुई। पोटैशियम के प्रयोग से बाजरे की फसल भी प्रभावित नहीं हुई।

जिंक

सूक्ष्म पोषक तत्वों में जस्ता प्रमुख तत्व है जिसकी कमी ऊसर भूमि में अधिक पी-एच मान और अधिक सोडियम कार्बोनेट की उपस्थिति के कारण होती है। ऐसी दशा में मिट्टी में उपस्थित जिंक, जिंक कार्बोनेट के रूप में होती है जो कि एक कम घुलनशील यौगिक है। ऊसर भूमि में उगाई गई फसल जिंक की कमी से विशेष प्रभावित होती है जिसे उनमें उत्पन्न होने वाले विशेष लक्षणों द्वारा पहचाना जा सकता है। धान की फसल में जिंक की कमी के लक्षण रोपाई के 2-3 सप्ताह बाद ऊसर से तीसरी या चौथी पत्ती के किनारों पर लाल-भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो कि बाद में बड़े होकर आपस में मिल जाते हैं और पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं, फिर भी पत्तियों की मध्य शिरा हरी बनी रहती है। बाद में ये धब्बे गहरे

कत्थई/काले रंग में बदल जाते हैं और अंतत: प्रभावित क्षेत्र के ऊतक मर जाते हैं। जिंक की कमी से प्रभावित होने वाले पौधे धूमिल अथवा जला हुआ लक्षण दर्शाते हैं जिसे धान के खैरा रोग से जाना जाता है।

गेहूं में पहली सिंचाई के बाद भूरे पीले या कांसे-जैसे ऊतक धब्बे तीसरी या चौथी पूर्ण परिपक्व पत्ती पर दिखाई देते हैं। ये धब्बे आकार में बड़े होकर आपस में मिल जाते हैं और मुख्य शिरा के दोनों ओर लंबवत् पीले स्थान या सफेद रंग की धारियां बन जाती हैं। फसलों पर जिंक के प्रयोग से अपेक्षित सुधार मिट्टी में क्षार की मात्रा पर निर्भर करता है। यद्यपि फसलों में जिंक की कमी को रोकने हेतु विभिन्न जिंक उर्वरकों, जैसे– जिंक सल्फेट, जिंक ऑक्साइड, जिंक फ्रिट्स, जिंक किलेट्स और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व मिश्रणों का प्रयोग किया जा सकता है, परंतु जिंक सल्फेट सर्वाधिक प्रचलित उर्वरक है। परीक्षणों से पता चलता है कि जिंक सल्फेट का मिट्टी में बेसल ड्रेसिंग के रूप में इस्तेमाल जिंक ऑक्साइड में जड़ को डुबोने, बीज उपचार, पर्णीय छिड़काव से भी अधिक कारगर पाया गया। जिंक सल्फेट और जिप्सम का एक साथ प्रयोग करने से फसल की उपज में विशेष वृद्धि होती है। ऊसर भूमि सुधार हेतु जब जिप्सम 10 से 15 टन/हे. की दर से प्रयोग किया जाता है तो फसल-चक्र में धान की फसल में जिंक की कमी को दूर करने के लिए प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर 20-40 किग्रा. की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग आवश्यक होता है। यदि किसी कारणवश आधारीय प्रयोग न किया जा सका हो और खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे रहे हों तो ऐसी दशा में खड़ी फसल में 25 से 40 किग्रा./हे. की दर से जिंक सल्फेट ''टॉप ड्रेसिंग'' के रूप में या 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के मिश्रण का घोल बनाकर पत्तियों पर छिड़काव लाभदायक होता है। पौधे जिंक की कम उपलब्धता की अपेक्षा सोडियम की विपुलता और कैल्सियम की कमी से अधिक प्रभावित होते हैं। अत: अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए ऊसर भूमि सुधार के प्रारंभिक

वर्षों में भूमि सुधारक की भांति जिंक सल्फेट का इस्तेमाल अवश्य करना चाहिए। ऊसर भूमि में खेती की सफलता में जिंक की मुख्य भूमिका होती है।

क्षारीय भूमि के सुधार और फसलों में अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु हरी खाद का प्रयोग आवश्यक होता है। हरी खाद में प्रमुख तत्वों के साथ ही सूक्ष्म पोषक तत्व, विशेषकर जिंक, लोहा, मैंगनीज आदि की पूर्ति हो जाती है तथा किलेशन द्वारा इसकी उपलब्धता भी बढ़ जाती है और इससे अनुगामी फसल भी लाभान्वित होती है। ऊसर सुधार के प्रारंभिक वर्षों में हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी की क्षारीयता कम करने में मदद मिलती है और भौतिक दशा में उल्लेखनीय सुधार होता है।

लोहा और मैंगनीज

पौधों को आसानी से उपलब्ध होने वाले लोहा और मैंगनीज (जल विलेय और विनिमेय) की इन मिट्टियों में विशेष कमी होती है। मिट्टी के पी-एच मान और उसमें उपलब्ध लोहा-मैंगनीज की मात्रा के बीच ऋणात्मक संबंध होता है। अधिक पी-एच और सोडियम कार्बोनेट की अधिकता के कारण ऊसर मिट्टियों में लोहा और मैंगनीज की उपलब्धता विशेष प्रभावित होती है। धान की जलमग्न दशा का लोहा और मैंगनीज की घुलनशीलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। क्षारीय मिट्टियों में उगी फसलों में लोहे की कमी एक मुख्य समस्या है। चुनही और कार्बनिक पदार्थ की कमी वाली ऊसर-जैसी मिट्टियों में भी लोहे की बहुधा कमी पाई जाती है। इसकी कमी धान की नर्सरी, ज्वार, मक्का, धान और फल वृक्षों में दिखाई देती है। लोहे की कमी की दशा में सबसे नई पत्तियों की मध्य शिरा के बीच हरिमाहीनता के लक्षण दिखाई देते हैं और बाद में शिराएं भी पीली पड़ जाती हैं। पत्तियों की नोक और किनारे यद्यपि लंबी अवधि तक हरे बने रहते हैं किंतु उग्र कमी की दशा में पूरी पत्ती और नई निकलती हुई पत्तियों का हरा रंग समाप्त होता जाता है अथवा पत्तियां विरंजित हो जाती हैं। मैंगनीज की कमी

से धान की नई पत्तियों की शिराओं का मध्य भाग हरिमाहीन होने लगता है, बाद में शिराओं के मध्य भाग में हरिमाहीनता के लक्षण और ऊतकक्षयी धब्बे दिखाई देने लगते हैं। कुछ फसलों में मैंगनीज की कमी के लक्षणों को विशिष्ट नामों, जैसे जौ में ग्रे-स्पेक; गन्ने में पहला उकटा; मटर में मार्श स्पॉट और वृक्षों में फ्रेन्चिंग के नाम से जाना जाता है।

धान-गेहूं फसल-चक्र में हाल में सुधरी हुई ऊसर भूमि में गेहूं की फसल में मैंगनीज की कमी देखी गई है। गेहूं की फसल में पुरानी और बीच की पत्तियां हरिमाहीन हो जाती हैं तथा शिराओं के बीच सफेद धारियां या धब्बे बन जाते हैं। पत्तियों का रंग सफेदी लिए हुए पीला और पीला-हरा हो जाता है। ये लक्षण बाद में पत्तियों का रंग सफेदी लिए हुए पीला और पीला-हरा हो जाता है। ये लक्षण बाद में पत्तियों की नोंक की ओर बढ़ने लगते हैं। उग्र कमी की दशा में बालियां निकलने की अवस्था में पौधों की वृद्धि रुक जाती है और बालियां छोटी, कमजोर और ऐंठी हुई या हंसिए के आकार की दिखाई देती हैं जो कि अत्यंत कठिनाई से निकलती हैं।

लोहा और मैंगनीज की कमी को दूर करने के उपाय

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के सर्वोत्तम उपायों का निर्धारण मुख्यत: रोग विकार की प्रकृति, वृद्धि की दशाओं और फसल तथा मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा द्वारा होता है। मिट्टी में लोहे की कमी से उत्पन्न होने वाली हरिमाहीनता को सुधारने में बड़ी कठिनाई होती है। फैरस सल्फेट, फेरिक सल्फेट और आयरन चिलेट्स, जैसे– डीटीपीए, इडीटीए, इडीडीएचए सामान्य पदार्थ हैं जो लोहे की कमी को सुधारने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। क्षारीय मृदा में फेरस लवण मिट्टी में लोहे की कमी को सुधारने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। इन स्रोतों में चिलेटिंग सामग्री सबसे अधिक प्रभाव है, किंतु ये महंगे हैं। क्षारीय भूमि में फेरस लवणों का मिट्टी में प्रयोग लोहे की कमी को सुधारने में विशेष मदद नहीं करता क्योंकि मिट्टी

का पी-एच मान और क्षारीयता अधिक होने के कारण यह अनुपलब्ध रहता है। उदासीन फेरस सल्फेट के 0.5 प्रतिशत घोल का एक सप्ताह के अंतर पर 4 से 5 छिड़काव करके लोहे की कमी को कम किया जा सकता है। मिट्टी में लंबे समय तक जल भराव कर और कार्बनिक पदार्थ के प्रयोग से धान के खेतों और नर्सरियों में लोहे की कमी को नियंत्रित किया जा सकता है। परीक्षणों से पता चला है कि धान की रोपाई के पूर्व 15 दिन तक जल भरा रहने से दाने की उपज में सार्थक वृद्धि (5 से 25 प्रतिशत) होती है। धान की रोपाई के पूर्व खेत को जल से भरने के साथ-साथ उसमें अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद अथवा धान की भूसी (30 टन/हे.) का प्रयोग करने पर और अधिक लाभ होता है। प्रारंभिक जल भराव से धान के पौधों को अच्छा वातावरण प्राप्त होता है। मिट्टी का पी-एच मान और विनिमयशील सोडियम की प्रतिशत मात्रा घटने के अतिरिक्त पोषक तत्वों, विशेष रूप से लोहा और मैंगनीज की उपलब्धता बढ़ जाती है। मैंगनीज सल्फेट, मैंगनीज ऑक्साइड, मैंगनीज फॉस्फेट, मैंगनीज फ्रिट्स को सामान्यत: मैंगनीज की कमी के सुधार हेतु बखूबी प्रयोग किया जा सकता है।

लवणीय भूमि

फसल उत्पादन में मृदा लवणता की समस्या विश्वव्यापी है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में मृदा परिच्छेदिका में बहुत अधिक मात्रा में लवण पाए जाते हैं। सोडियम, क्लोराइड, मैगनीशियम सल्फेट और बोरेट-जैसे आयनों की पौधों के जड़ क्षेत्र में, अत्यधिक सांद्रता होने के कारण पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यद्यपि इन मिट्टियों में सोडियम की प्रधानता होती है फिर भी कैल्शियम और मैग्नीशियम पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। मिट्टी (संतृप्त लेई) का पी-एच मान 8.5 से कम और संतृप्त घोल की विद्युत् संचालकता 4 डेसी साइमन प्रति मीटर से अधिक होती है। अच्छे जल निकास की व्यवस्था एवं सिंचाई जल द्वारा लवणों का निक्षालन करने से ऐसी मिट्टियों को सफलतापूर्वक सुधारा जा सकता है। भारत में पाई जाने वाली लवणीय मिट्टियों को तीन प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है

1. शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की सामान्य मिट्टियां जो कि वर्षों से खारे पानी (लवणीय और/या क्षारीय) से सिंचाई करने के कारण लवणीय हुई हैं। ऐसी मिट्टियों का भू-जल स्तर सामान्यत: नीचे है, फिर भी कुछ निश्चित परिस्थितियों में भू-जल स्तर ऊपर होने की भी समस्या पाई जाती है।

2. मध्यवर्ती क्षेत्रों में भू-जल स्तर ऊपर होने के कारण बनी लवणीय मिट्टियां ऐसे क्षेत्रों में सामान्यत: खारे भू-जल की समस्या रहती है। साथ ही जल भराव तथा लवणों की अधिकता ऐसी मिट्टियों को जन्म देती हैं।

3. समुद्र तट के पास पाई जाने वाली लवणीय मिट्टियां: ऐसे क्षेत्रों में समुद्री खारे पानी के कारण मिट्टियां लवणीय हो जाती हैं तथा अस्थायी रूप से जल भराव की समस्या उत्पन्न हो जाती है। यहां की जलवायु आर्द्र से अर्धशुष्क होती हैं।

मृदा लवणता एवं पादप वृद्धि

इन मिट्टियों में सोडियम, क्लोराइड, सल्फेट, मैग्नीशियम और बोरेट आयनों की अधिक मात्रा में उपस्थिति पौधों के लिए विषालु हो जाती है जिससे पौधों में संपन्न होने वाली तमाम दैहिक क्रियाएं अनियमित हो जाती हैं। यही नहीं, लवणों की अधिकता के कारण पोषक माध्यम का जल विभव घट जाता है जिससे पौधे ठीक से जल का उपयोग नहीं कर पाते, साथ ही पौधों में कार्बन डाइ-ऑक्साइड का स्वांगीकरण, प्रोटीन संश्लेषण और श्वसन-जैसी महत्वपूर्ण उपापचय क्रियाएं और प्रभावित हो जाती हैं। मृदा विलयन में लवणों की अधिक सांद्रता के कारण पोषक तत्वों का अवशोषण भी असंतुलित होता है। मृदा लवणता के कारण पौधों की वृद्धि रुक जाती है। पत्तियां आकार में छोटी और रंग हल्का नीला हो जाता है। लवणीय मिट्टियों में सूखे की दशा के बिल्कुल विपरीत पौधों के सूखे-जैसे लक्षण शायद ही कभी दिखाई देते हैं। लवणों की अधिकता के साथ जल भराव के

कारण नमी की अधिकता का भी पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसी दशा में पौधों को ऑक्सीजन कम मिल पाता है, साथ ही तांबा और जिंक-जैसे पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है।

अनाज, चारे एवं सब्जी वाली फसलों की तुलना में फल वृक्ष मृदा लवणता के प्रति विशेष संवेदनशील होते हैं। मृदा लवणता की समस्या कम करने के लिए जल निकास की व्यवस्था एवं मीठे सिंचाई जल द्वारा लवणों का निक्षालन आवश्यक होता है। सभी परिस्थितियों में जल निकास का विकास संभव नहीं हो पाता और खारे भूजल की उपस्थिति के कारण मीठे जल द्वारा लवणों का निक्षालन भी संभव नहीं हो पाता। ऐसी दशा में कुशल कृषि प्रबंध द्वारा मृदा लवणता की समस्या काफी हद तक दूर की जा सकती है। संतुलित उर्वरक प्रयोग का लवणों के कुप्रभाव को कम करने में विशेष महत्वपूर्ण भूमिका है। शोध परिणामों से पता चला है कि प्रयुक्त उर्वरकों एवं मृदा लवणता के आपसी सार्थक अंतर्क्रिया की पुष्टि हुई है। फलत: पौधों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ने से कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि के प्रमाण मिले हैं।

नाइट्रोजन

लवणीय मिट्टियों में सामान्यत: नाइट्रोजन की विशेष कमी होती है। अत: नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के प्रयोग से उत्पादन में विशेष वृद्धि होती है। ज्ञातव्य है कि मृदा लवणता के कारण नाइट्रेट नाइट्रोजन की निक्षालन द्वारा विशेष हानि होती है। ऐसी दशा में कार्बनिक नाइट्रोजन का खनिजीकरण भी कम होता है और मिट्टी के बैक्टीरिया (जीवाणु) भी कम सक्रिय होते हैं। साथ ही दलहनी फसलों को मृदा लवणता के प्रति संवेदनशीलता के कारण राइजोबियम द्वारा दलहनी फसलों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण भी कम हो जाता है।

लवणीय भूमि में नाइट्रोजन के प्रयोग से कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। बाजरा, गेहूं, जौ आदि फसलों में प्रति हेक्टेयर 100 से 120 किग्रा. नाइट्रोजन देने की संस्तुति की जाती है।

कभी-कभी 120 किग्रा. से अधिक नाइट्रोजन देने पर भी उपज में वृद्धि होती है परंतु यह सभी परिस्थितियों में आवश्यक नहीं होता। नाइट्रोजन के प्रयोग से पूरा लाभ पाने के लिए लवणीय भूमि में सिंचाई के बाद ही टापड्रेसिंग करनी चाहिए ताकि लवण निक्षालित होकर जड़ क्षेत्र से दूर हट जाएं। समुद्र तट के पास की लवणीय मिट्टियों में धान की रोपाई के समय आधारीय (बेसल) प्रयोग करने के बजाए रोपाई के 30, 45 और 60 दिन बाद नाइट्रोजन की टॉपड्रेसिंग करने पर अच्छे परिणाम मिले हैं। जहां तक विभिन्न नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की क्षमता का प्रश्न है, कम और मध्यम लवणता स्तर वाली मिट्टियों में यूरिया का प्रभाव अमोनियम सल्फेट और कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट की तुलना में अच्छा रहता है किंतु अधिक लवणीय मिट्टियों में नाइट्रेटयुक्त उर्वरक अमोनियमयुक्त नाइट्रोजन उर्वरक की तुलना में विशेष अच्छे बैठते हैं। लवणीय मिट्टियों में यूरिया का पर्णीय छिड़काव आर्थिक दृष्टिकोण से विशेष लाभदायक पाया गया है। इससे एक सिंचाई की भी बचत हो जाती है अन्यथा उर्वरक की टॉपड्रेसिंग से पहले लवणों के निक्षालन हेतु अनिवार्य रूप से सिंचाई करनी होती है। ऐसा देखा गया है कि लवणीय मिट्टियों में उगाई गई फसलों में नाइट्रेट नाइट्रोजन प्रोटीन रूप में आसानी से परिवर्तित नहीं हो पाती जिससे पौधों में खनिज नाइट्रोजन संचित हो जाता है। अत: लवणीय भूमि की फसलों में नाइट्रोजन की कुल मात्रा के बजाए प्रोटीन-नाइट्रोजन की मात्रा नाइट्रोजन उपलब्धता का सही सूचक होता है। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और मध्य प्रदेश के कुछ भागों के भूजल में नाइट्रेट पाया जाता है, जो कभी-कभी पौधों के लिए विषाक्त हो जाता है। ऐसे जल के लगातार उपयोग से नाइट्रोजन की अधिकता के कारण फसलें देर में पकती हैं और इसकी दाने की गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस दोष को दूर करने के लिए नहरी जल और भूजल का मिश्रित प्रयोग करना चाहिए।

फॉस्फोरस

लवणीय भूमि में फास्फोरस के प्रयोग का विशेष महत्व है। कुछ

निश्चित दशाओं में फास्फोरस का प्रयोग लवणीय भूमि में खेती की सफलता और असफलता का निर्णायक होता है। ज्ञातव्य है कि अधिक लवणीय भूमि में कम लवणीय भूमि की तुलना में उर्वरक फॉस्फोरस अपेक्षाकृत अधिक अधिशोषित हो जाता है। अत: स्पष्ट है कि मृदा लवणता बढ़ने के साथ-साथ फॉस्फोरस की उपलब्धता कम होती जाती है। मृदा लवणता की जड़ों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण तत्व के अवशोषण हेतु सतही क्षेत्र भी काफी कम हो जाता है। साथ ही एक अगतिशील तत्व होने के कारण पौधे फॉस्फोरस का अवशोषण कम कर पाते हैं। लवणीय मिट्टियों में क्लोराइड आयन की प्रधानता होती है। क्लोराइड और फॉस्फेट के अवशोषण में आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण फॉस्फोरस का अवशोषण प्रभावित होता है। ऐसा इसलिए भी होता है कि इन दोनों तत्वों के अवशोषण की प्रक्रिया एक समान है। कुछ लवणीय मिट्टियों में क्लोराइड की भी अधिकता पाई जाती है जिसका फॉस्फोरस के अवशोषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: लवणीय भूमि में फॉस्फोरस के प्रयोग से उत्पादन में विशेष वृद्धि होती है। उर्वरक फॉस्फोरस के प्रयोगोपरांत मिट्टी में फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ने से यह पौधों को सुलभ हो जाता है, साथ ही इससे क्लोराइड और फ्लोराइड का विषालु प्रभाव भी काफी कम हो जाता है। गोबर की खाद या कंपोस्ट के साथ फॉस्फोरस का प्रयोग करने पर लवणों की अधिकता के कारण फसल के जल जाने-जैसे लक्षण में काफी सुधार हो जाता है।

पोटैशियम

लवणीय मिट्टियों में साधारणत: उपलब्ध पोटैशियम की मात्रा मध्यम से उच्च पाई जाती है। किंतु निक्षालन द्वारा पोटैशियम की हानि होने की दशा में इसकी कमी के भी प्रमाण हैं। ऐसा देखा गया है कि लवणीय भूमि में उगाई गई फसल में सोडियम/पोटैशियम एवं कैल्शियम/पोटैशियम अनुपात विशेष असंतुलित रहता है। कभी-कभी तो सोडियम, कैल्शियम या मैग्नीशियम की अधिकता पौधों में पोटैशियम

की कमी का कारण बन जाती है। लवणीय मिट्टियों में पोटैशियमधारी उर्वरकों के प्रयोगोपरांत उत्पादन में सार्थक वृद्धि के प्रमाण हैं। म्यूरेट ऑफ पोटाश के प्रयोग से इसके पोटैशियम और क्लोराइड आयन पौधों द्वारा आसानी से अवशोषित कर लिए जाते हैं जो कि पत्तियों के परासरण दबाव को बनाए रखने में मदद करते हैं। उल्लेखनीय है कि सल्फेट आयन की तुलना में क्लोराइड आयन द्वारा उत्पन्न लवणता अपेक्षाकृत कम खतरनाक होती है।

लवणीय मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की विशेष कमी नहीं होती फिर भी फसल में तत्व विशेष के अभाव के विशिष्ट लक्षण दिखाई पड़ें तो पौधों के रासायनिक विश्लेषण के आधार पर पुष्टि हो जाने पर इन्हें दूर करने हेतु संस्तुति के अनुसार उपचार करना चाहिए।

अम्लीय भूमि

ऐसा अनुमान है कि भारत में लगभग एक हजार लाख हेक्टेयर भूमि ऐसी है जिसका पी-एच मान 7 से कम है। पूर्व अनुमान के अनुसार 480 लाख हेक्टेयर, अर्थात् कुल कृषिगत क्षेत्रफल का 30 प्रतिशत अम्लीय है। इसमें 250 लाख हैक्टेयर का पी-एच 5.6 और 6.5 के बीच है। असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात और मध्य प्रदेश में अम्लीय मिट्टियां पाई जाती हैं। अम्लीय मिट्टियों का निर्माण आर्द्र जलवायु और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में चट्टानों के विघटन के फलस्वरूप हुआ है। लेटेराइटीकरण, वनमृदा निर्माणीकरण, अधिक निक्षालन और जीवांश पदार्थ के एकत्रीकरण/संचयन के फलस्वरूप अम्लीय मिट्टियां बनती हैं। भारत की अम्लीय मिट्टियों को 7 वर्गों में बांटा गया है: 1. लेटेराइट; 2. लेटेराइट और लेटेराइटिक लाल मिट्टियां; 3. मिश्रित लाल और पीली मिट्टियां; 4. लोहायुक्त लाल मिट्टियां; 5. भूरी पहाड़ी वन मिट्टियां; 6. पर्वत के तलहटी की

मिट्टियां और 7 पीट मिट्टियां। इसके अतिरिक्त केरल राज्य के कुरंड क्षेत्र की एसिड सल्फेट मिट्टियां भी महत्वपूर्ण हैं।

अम्लीय मिट्टियों की उर्वरता एवं उर्वरक प्रयोग

पोषक तत्वों की उपलब्धता की दृष्टि से 6.5 से 7.5 के बीच का पी-एच मान विशेष उपयुक्त होता है। मिट्टी का पी-एच मान 6 से कम होने पर उसे अम्लीय कहा जाता है। मृदा-अम्लीयता के कारण अनेकों पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है जैसे कि उल्लिखित है।

नाइट्रोजन

लाल और लेटेराइट मिट्टियों में साधारणत: जीवांश पदार्थ कम मात्रा में पाया जाता है। अत: इनमें नाइट्रोजन की कमी होती है। कुछ जंगली वनस्पति तथा पहाड़ की तलहटी वाली मिट्टियों में नाइट्रोजन की मात्रा मध्यम है। इन क्षेत्रों की खास कृषि-जलवायु एवं अधिक वर्षा के कारण नाइट्रोजन की निक्षालन द्वारा हानि हो जाती है। धान के पुआल का प्रयोग चारे के रूप में तथा छप्पर आदि बनाने के लिए कर लिए जाने और उसका पुन:चक्रण न किए जाने के कारण नाइट्रोजन की कमी हो जाती है। अत: अम्लीय भूमि में नाइट्रोजन के प्रयोग से उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। अम्लीय भूमि में धान में अमोनियम या एमाइड नाइट्रोजन वाले उर्वरक इस्तेमाल किए जाने चाहिए, नाइट्रेटधारी उर्वरक प्रयोग नहीं किए जाने चाहिए। ऊंचे स्थानों की अम्लीय मिट्टियां जहां दलहन, तिलहन और रेशे वाली फसलें उगाई जाती हैं वहां सभी नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की क्षमता एक जैसी रहती है। रोपाई किए गए धान की फसल में नाइट्रोजन का इस्तेमाल तीन बार में (आधारीय 25 प्रतिशत, किल्ले निकलने की अवस्था 50 प्रतिशत, फूल बनते समय 25 प्रतिशत) करना चाहिए। लाइन में बोई गई फसलों में नाइट्रोजन का कूड़ में प्रयोग विशेष कारगर सिद्ध होता है। धान के परीक्षणों में यूरिया सुपरग्रेन्यूल विशेष लाभकारी पाया गया, परंतु अभी इसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

16—1/CSTT/ND/05

फॉस्फोरस

अम्लीय और लेटेराइट मिट्टियों में मृदा विलयन में ऐल्युमिनियम और लोहा की प्रधानता होने के कारण घुलनशील फास्फोरस की अच्छी-खासी मात्रा स्थिरीकृत हो जाती है। अत: अधिकांश फसलों में फॉस्फोरस की सामान्य मात्रा में अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। अम्लीय भूमि में रॉक फॉस्फेट-जैसे अघुलनशील फास्फोरसधारी उर्वरक का बखूबी प्रयोग किया जा सकता है। अम्लीकृत रॉक फॉस्फेट या राइफॉस्फेट और सुपर फॉस्फेट के मिश्रित प्रयोग से रॉक फॉस्फेट का इस्तेमाल फसल की बुआई/रोपाई के एक सप्ताह पूर्व छिटकवां विधि द्वारा करना चाहिए। जल विलेय फास्फोरसधाारी उर्वरक का प्रयोग कूड़ में करना चाहिए। दानेदार उर्वरक विशेष कारगर सिद्ध होते हैं। असिंचित दशा में सिंचित नमी पर बुआई करना हो तो जल विलेय उर्वरक का 10 सेमी. की गहराई पर कूड़ में प्रयोग करना विशेष लाभकर होगा।

पोटैशियम

ऐसी अधिकांश मिट्टियों की धनायन विनिमय क्षमता कम होती है, साथ ही विनिमेय पोटैशियम की मात्रा भी कम होती है। अत: इन मिट्टियों में पोटैशियम की अपेक्षाकृत अधिक कमी होती है। पोटाशयुक्त उर्वरक के प्रयोग से पश्चिम बंगाल और बिहार की लेटेराइट मिट्टियों में प्रति किलोग्राम पोटाश द्वारा औसतन 6.7 किग्रा. दाने की उपज में वृद्धि पाई गई है। कृषकों के खेतों में किए गए उर्वरक परीक्षणों में लेटेराइट भूमि में प्रति हेक्टेयर 22.5 और 45.0 किग्रा. पोटाश देने पर क्रमश: 194 किग्रा. और 295 किग्रा. की वृद्धि तथा लाल दोमट भूमि में 217 और 295 किग्रा. की वृद्धि हुई।

गंधक

लेटेराइट और लाल मिट्टियों में उपलब्ध गंधक की मात्रा कम है। आर्द्र उष्ण क्षेत्र में 70 से 90 प्रतिशत गंधक कार्बनिक रूप में पाया

जाता है। खरीफ की धान की फसल में गंधक के प्रयोग से उपज में सार्थक वृद्धि आंकी गई है।

कैल्शियम

अनुसंधानों से इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि चूने के प्रयोग द्वारा मृदा अम्लता दूर करने की अपेक्षा ऐसी भूमि में पोषक तत्व के रूप में कैल्शियम की कमी दूर करना विशेष महत्वपूर्ण होता है। इन मिट्टियों में ऐल्युमिनियम की विषालुता की तुलना में कैल्शियम की कमी की समस्या विशेष गंभीर है। रांची की अम्लीय बलुई दोमट मिट्टी (पी-एच मान 5.6) में प्रति हेक्टेयर 2 से 4 क्विंटल की दर से कैल्शियम कार्बोनेट का कूड़ में प्रयोग करने पर सोयाबीन की उपज में 19 से 32 प्रतिशत तथा मूंगफली की उपज में 21 से 48 प्रतिशत वृद्धि हुई। उड़ीसा में उन क्षेत्रों में जहां बहुफसली खेती होती है, चूने का प्रयोग लाभकारी पाया गया है। दलहनी फसलें आम तौर पर हल्के गठन वाली सीमांत मिट्टियों में उगाई जाती हैं जहां निक्षालन के कारण कैल्शियम की विशेष कमी होती है। यहां कैल्शियम के प्रयोग से विशेष लाभ होता है। चूंकि लाल और लेटेराइट मिट्टियों की चूना आवश्यकता बहुत अधिक आंकी गई है, अत: व्यावसायिक श्रेणी के चूने का इस्तेमाल आर्थिक दृष्टि से महंगा पड़ता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए बेसिक स्लैग, ब्लास्ट फर्नेस स्लैग, पेपर मिल से प्राप्त लाइम स्लज, चीनी मिल के कार्बोनेशन प्लांट से प्राप्त प्रेस मड और चूना पत्थर-जैसे औद्योगिक बेकार पदार्थों का प्रयोग लाभकर सिद्ध होता है। कुल चूना आवश्यकता का 25 प्रतिशत मृदा सुधारक द्वारा देने की संस्तुति की जाती है।

सूक्ष्म पोषक तत्व

अम्लीय मिट्टियों में जिंक के प्रयोग में फॉस्फोरस में सार्थक वृद्धि देखी गई है। अधिक निक्षालित बलुई मिट्टियों में जिंक की

कमी अधिक होती है। 25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट का इस्तेमाल करने की संस्तुति की जाती है। इन मिट्टियों में तांबा, लोहा और मैंगनीज की उपलब्ध मात्रा पर्याप्त है। इसके विपरीत लगभग सभी अम्लीय मिट्टियों में मॉलिब्डेनम की कमी पाई जाती है। 250-500 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से सोडियम मॉलिब्डेट डालकर मॉलिब्डेनम की दूर की जा सकती है। 0.05 से 0.1 प्रतिशत सांद्रता के घोल का पत्तियों पर छिड़काव भी लाभप्रद होता है। हल्के गठन वाली अम्लीय मिट्टियों में बोरॉन की भी कमी पाई जाती है। इसकी रोकथाम के लिए 10 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बोरेक्स का भूमि में प्रयोग या 0.1 से 0.2 प्रतिशत सांद्र घोल का पर्णीय छिड़काव करने की संस्तुति है। पश्चिम बंगाल के तराई क्षेत्र में बोरॉन और मॉलिब्डेनम की कमी की गंभीर समस्या है। नारियल में कोने का बंद होना, केले के फलों का कूड़ा एवं भूरा होना, अरकानट का फटना, बंदगोभी व फूलगोभी का बीच का भाग खोखला होना आदि समस्याएं इन तत्वों की कमी से उत्पन्न हो रही हैं जिनका सही समय पर निदान एवं उपचार होना चाहिए। अम्लीय मिट्टियों में विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के साथ ही लोहा-जैसे तत्व की विषालुता होती है। इस समस्या के हल के लिए खेत के चारों ओर गहरी नाली खोदकर जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। चूने के प्रयोग से विषालुता पर नियंत्रण पाया जा सकता है। पोटाश और मैंगनीज के प्रयोग से लोहे की विषालुता का कुप्रभाव कम हो जाता है। प्रति हेक्टेयर 60 किग्रा. की दर से पोटाश और 10 किग्रा. मैंगनीज सल्फेट डालने से उत्साहवर्धक परिणाम मिले हैं।

मृदा सुधारक

जिन सामग्रियों के इस्तेमाल से इन मिट्टियों की दशा में सुधार किया जाता है, उन्हें भूमि सुधारक कहते हैं। साधारणत: अम्लीय भूमि के सुधार के लिए चूना और लवणीय-क्षारीय भूमि के सुधार के लिए जिप्सम एवं पाइराइट का इस्तेमाल किया जाता है।

अम्लीय मिट्टियों के लिए सुधारक एवं इनकी उपयोगिता

अम्लीय मिट्टी के सुधार हेतु आमतौर पर चूने के प्रयोग की संस्तुति की जाती है। चूने का प्रयोग इस आशय से किया जाता है कि विनिमेय संमिश्र पर हाइड्रोजन और ऐलुमिनियम आयनों की प्रचुरता कम और कैल्शियम का सांद्रण अधिक हो जाए। कैल्शियम के साथ ही विनिमय संमिश्र पर मैग्नीशियम आयन की मात्रा बढ़ा देने से भी मिट्टी की अम्लता कम की जा सकती है। किंतु कैल्शियम (Ca^{++}), मैग्नीशियम (Mg^{++}) अथवा दोनों आयनों के इस्तेमाल से ही मिट्टी की अम्लता की समस्या का हल नहीं निकल सकता। किन लवणों से इन आयनों की पूर्ति की जा रही है, उनकी मिट्टी में अभिक्रिया कैसी होगी, आदि बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वैसे तो जिप्सम अथवा कैल्शियम क्लोराइड-जैसे प्रबल अम्ल वाले लवणों से भी कैल्शियम की पूर्ति की जा सकती है परंतु इनका मिट्टी की अम्लता पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह विचारणीय है। वास्तव में इन लवणों के प्रयोग से मिट्टी की अम्लता में कमी के बजाए वृद्धि हो जाती है। अत: कभी भी अम्लीय अभिक्रिया वाले कैल्शियमयुक्त लवणों का प्रयोग अम्लीय मिट्टियों में नहीं करना चाहिए। मृदा अम्लता का निवारण करने के लिए आमतौर पर कैल्शियम और मैग्नीशियम के ऑक्साइड, कार्बोनेट, हाइड्रॉक्साइड, सिलिकेट, डोलोमाइट, बेसिक स्लैग, मार्ल आदि का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा चीनी मिलों के कार्बोनेशन संयंत्र से प्राप्त प्रेसमड, सिंदरी फर्टिलाइजर फैक्ट्री से प्राप्त अवक्षिप्त चूना और शंख-सीप आदि का भी प्रयोग अम्लीय मिट्टियों के सुधार हेतु किया जाता है।

अम्लता को दूर करने वाले विभिन्न सुधारकों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :

चूना पत्थर (कैल्शियम कार्बोनेट)

विभिन्न चूना पदार्थों में चूना पत्थर एक प्रमुख अम्लता सुधारक

235

है। यह या तो कैल्साइट या डोलोमाइट या इन दोनों का मिश्रण हो सकता है। इसके अतिरिक्त मिट्टी में बुझे हुए चूने और फुके हुए चूने का प्रभाव भी कैल्शियम कार्बोनेट की तरह ही होता है। विशुद्ध कैल्साइट में कैल्शियम की मात्रा 40 प्रतिशत होती है।

डोलोमाइट चूना पत्थर से कैल्शियम के साथ मैग्नीशियम की भी पूर्ति हो जाती है। डोलोमाइट में कैल्शियम कार्बोनेट और मैग्नीशियम कार्बोनेट का एक-एक अणु समान अनुपात में पाया जाता है। शुद्ध डोलोमाइट में भार की दृष्टि से 54.3 प्रतिशत कैल्शियम कार्बोनेट और 45.7 प्रतिशत मैग्नीशियम कार्बोनेट पाया जाता है। इसमें कैल्शियम और मैग्नीशियम की मात्राएं क्रमश: 21.6 और 13.1 प्रतिशत पाई जाती है। डोलोमाइट और कैल्साइट के अंतर को उनमें उपस्थित मैग्नीशियम की मात्रा द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ डोलोमाइट, कैल्साइट और डोलोमाइट चूना-पत्थर में मैग्नीशियम की मात्रा क्रमश: 11.7-13.1, 6.5-11.7 और 1.3 से 6.5 प्रतिशत तक पाई जाती है। मैग्नीशियम प्रचुर चूना पत्थर और कैल्शियम-प्रचुर चूना पत्थर से मैग्नीशियम की प्रतिशत मात्रा क्रमश: 0.6 से 1.3 और 0-0.06 होती है। इन पदार्थों का मिट्टी सुधार हेतु प्रयोग करने से पहले यह आवश्यक है कि इन्हें बारीक पीस लिया जाए।

जिस शैल से चूना पत्थर प्राप्त किया जाता है उसमें सिलिका आदि सामग्री अशुद्धियों के रूप में विद्यमान रहती है, जो कि चूने के प्रभाव को कम कर देती है। रवेदार चूना पत्थर की प्रभावात्मकता उनके रवों की बारीकी और उनमें उपस्थित चिकनी मिट्टी आदि अशुद्धियों की उपस्थिति से प्रभावित होती है।

चूना पत्थर की रासायनिक प्रभावात्मकता को इसके कैल्शियम कार्बोनेट समतुल्यांक द्वारा व्यक्त किया जाता है। व्यापारिक चूने का समतुल्यांकी मान सामान्यत: 65-70 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत तक या इससे भी थोड़ा अधिक होता है। आमतौर पर प्रयोग में आने वाले चूना पत्थरों का समतुल्यांकी मान 90-98 प्रतिशत तक होता है। इनमें

अशुद्धियों के रूप में चिकनी मिट्टी आदि के मिले रहने के कारण इनकी प्रभावात्मकता कम हो जाती है। विभिन्न चूना पदार्थों के समतुल्यांक मान का विवरण सारणी 7.1 में दिया गया है।

सारणी 7.1: विभिन्न चूना सामग्री की उदासीनीकरण शक्ति

चूना पदार्थ	उदासीनीकरण शक्ति
कैल्शियम कार्बोनेट	100
कैल्शियम ऑक्साइड	176
कैल्शियम हाइड्रॉक्साइड	136
डोलोमाइट	109
सिलिका	86

खड़िया मिट्टी (मार्ल या चाक)

यह सुगमता से टूट जाने वाला कैल्शियम कार्बोनेट का निक्षेप है। यह अत्यधिक मुलायम होता है। पीट मिट्टियों के नीचे प्राय: मार्ल के निक्षेप पाए जाते हैं। इसमें चिकनी मिट्टी, कार्बनिक पदार्थ और मैग्नीशियम कार्बोनेट विभिन्न मात्रा में पाए जाते हैं। इनका कैल्शियम कार्बोनेट समतुल्यांक मान 500-80 प्रतिशत तक है। यह अशुद्धियों के अनुसार परिवर्तनशील है। यह रवाहीन पदार्थ है जो सूखने पर सुगमता से चूर्ण बन जाता है। इसे मिट्टी में प्रयोग करने से पहले पीसने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि मिट्टी में डालने पर यह स्वत: चूर्ण रूप में परिवर्तित हो जाता है।

धातुमल (स्लैग)

यह लोहे और इस्पात के कारखानों से प्राप्त होने वाला उप-पदार्थ

है जिसमें सिलिका की प्रधानता पाई जाती है।

कृषि में प्रयुक्त धातुमल मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं।

1. धमन भट्टी धातुमल
2. विद्युत् भट्टी धातुमल
3. क्षारीय धातुमल

धमन भट्टी वाला धातुमल पिग आयरन से इस्पात बनाते समय प्राप्त होता है। इसमें 20 प्रतिशत लोहा और 10 प्रतिशत मैंगनीज पाया जाता है। इसका कैल्शियम कार्बोनेट समतुल्यांक मान 70 से 90 प्रतिशत तक है। यह उन मिट्टियों में भी प्रयोग किया जा सकता है जहां लोहे और मैंगनीज का अभाव हो।

विद्युत् भट्टी वाला धातु मल राख या कचड़े के रूप में प्राप्त होने वाला फॉस्फोरस उद्योग का उप-पदार्थ है। इसमें फॉस्फोरस की मात्रा 0.9 से 2.3 प्रतिशत तक होती है। इसका कैल्शियम कार्बोनेट समतुल्यांक मान 65-80 प्रतिशत है। क्षारीय धातुमल (बेसिक स्लैग) इस्पात उद्योग से प्राप्त होता है। इसे चूना पदार्थ एवं फॉस्फोरस उर्वरक दोनों ही रूप में प्रयोग में लाते हैं। इसका कैल्शियम कार्बोनेट समतुल्यांक मान 60-70 प्रतिशत है। इसमें 5 से 10 प्रतिशत फॉस्फोरस रहता है। यह मुख्यतया कैल्शियम-मैग्नीशियम-ऐलुमिनो सिलिकेट है, जिसमें अन्य तत्व भी उपस्थित रहते हैं।

अन्य चूना पदार्थ

अन्य चूना पदार्थों में चीनी मिलों से प्राप्त प्रेस मड, संगमरमर उद्योग से प्राप्त रेत या कचड़ा, कागज उद्योग से प्राप्त गंदा पानी, उर्वरक उद्योगों से प्राप्त तलछट-चूना, कैल्शियम कार्बोनेट संयंत्रों, जल मृदुकारक संयंत्रों, सीसे की खानों से प्राप्त अनेक उपजात तथा शंख-सीप आदि सम्मिलित हैं। इनमें से प्रेसमड और तलछट चूना का

अम्लीय मिट्टियों के सुधार में विशेष महत्व है। इन पदार्थों का प्रयोग निकटवर्ती क्षेत्रों में ही विशेष रूप से होता है क्योंकि इसे अन्य दूरवर्ती क्षेत्रों में ले जाने का ही मूल्य बहुत हो जाता है।

मिट्टियों की चूना आवश्यकता

अधिक अम्लीय मिट्टियों का पी-एच मान 6.5 तक लाने के लिए चूने की जो भी मात्रा आवश्यक होती है, उसे मिट्टी-विशेष की चूना आवश्यकता के रूप में व्यक्त किया जाता है। अम्लीय मिट्टियों की चूना आवश्यकता को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में उसके पी-एच, गठन, प्रकार उसमें उगाई जाने वाली फसल और उसमें उपस्थित जीवांश पदार्थ की मात्रा, उसकी धनायन विनिमय क्षमता और अनुमापनीय अम्लता का विशेष प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर मिट्टी के पी-एच मान और गठन के अनुसार ही चूने की मात्रा का निर्धारण किया जाता है।

विशिष्ट अम्लीय मिट्टी की चूना-आवश्यकता की सही जानकारी के लिए मिट्टी परीक्षण आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए 5.4 पी-एच मान वाली दुमट मिट्टी की अम्लता के निवारण के लिए प्रति हेक्टेयर 1,237 किग्रा. चूने की आवश्यकता पड़ेगी।

लवणीय, क्षारीय मिट्टियों के लिए सुधारक एवं उनकी उपयोगिता

उल्लेखनीय है कि लवणीय भूमि के सुधार हेतु किसी प्रकार के सुधारक के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। खेत में पानी भर कर लवणों का निक्षालन करने के बाद भू-सतह पर बचे पानी को जल निकास का उचित प्रबंध करके खेत से बाहर निकाल देने से लवणीय भूमि का सुधार हो जाता है। परंतु क्षारीय या लवणीय-क्षारीय भूमि में, जैसे कि बताया जा चुका है कि विनिमयशील सोडियम की बहुलता होती है, अत: किसी कुशल रासायनिक सुधारक के प्रयोग द्वारा सोडियम का विस्थापन करने के उपरांत ऐसी भूमि का सुधार संभव

239

हो पाता है। लवणीय-क्षारीय भूमि के सुधार हेतु इस्तेमाल किए जाने वाले सुधारक और एक टन जिप्सम के समतुल्य उनकी मात्रा संबंधी आंकड़े सारणी 7.2 में दिए गए हैं।

सारणी 7.2: क्षारीय भूमि के लिए सुधारक

सुधारक	एक टन जिप्सम के समतुल्य मात्रा
जिप्सम	1.00
सल्फ्यूरिक अम्ल	0.57
फेरस सल्फेट	1.62
ऐलुमिनियम सल्फेट	1.29
गंधक	0.19
कैल्शिसम क्लोराइड	0.85

इसके अलावा चीनी मिलों से प्राप्त प्रेसमड का इस्तेमाल भी क्षारीय भूमि के सुधार के लिए किया जाता है। परीक्षणों से पता चला है कि पाइराइट का इस्तेमाल क्षारीय भूमि के सुधार हेतु सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

जिप्सम

भारत में क्षारीय भूमि के सुधार हेतु प्रयोग किया जाने वाला यह सर्वाधिक लोकप्रिय सुधारक है। भारत में जिप्सम का अनुमानित भंडार 10,040 लाख टन है, जिसकी 90 प्रतिशत पूर्ति अकेले राजस्थान से होती है। इसके अलावा तमिलनाडु, गुजरात और हिमाचल प्रदेश में भी जिप्सम पाया जाता है।

इसके अलावा यह टार्टरिक अम्ल, फार्मिक अम्ल, आक्जैलिक अम्ल, सिट्रिक अम्ल, साधारण नमक और फास्फोरिक अम्ल तैयार करने

वाले उद्योगों से गौण पदार्थ के रूप में प्राप्त होता है। राक फॉस्फेट को गंधक के अम्ल से उपचारित करके फॉस्फोरिक अम्ल तैयार करने की आर्द्र विधि के अंतर्गत प्राप्त होने वाली गौण सामग्री को फास्फोजिप्सम के नाम से जाना जाता है। ज्ञातव्य है कि एक टन फॉस्फोरस तैयार होने पर गौण सामग्री के रूप में 5.5 टन जिप्सम प्राप्त होता है, जिसमें लगभग 25 प्रतिशत नमी होती है।

भारतीय मानक संस्थान (अब ब्यूरो) द्वारा विभिन्न ग्रेड के जिप्सम के लिए निर्धारित विशिष्टताएं सारणी 7.3 में दी गई हैं।

ग्रेड 5 वाले जिप्सम का इस्तेमाल लवणीय-क्षारीय भूमि के सुधार के लिए किया जाता है।

मिट्टी की जिप्सम आवश्यकता

जिप्सम आवश्यकता की सही जानकारी स्कुनोवर द्वारा विकसित प्रयोगशाला विधि द्वारा की जा सकती है। उल्लेखनीय है कि इस विधि से अनुमानित जिप्सम की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक बैठती है, क्योंकि विनिमयशील सोडियम को विस्थापित करने के लिए आवश्यक जिप्सम के अलावा घुलनशील सोडियम कार्बोनेट को उदासीन करने के लिए आवश्यक जिप्सम की मात्रा भी इसमें सम्मिलित होती है। केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में अब्रोल और सहयोगियों (1975) ने स्कुनोवर की उपरोक्त विधि का भारतीय दशाओं के अनुसार संशोधन किया है, जिससे जिप्सम आवश्यकता का सही अनुमान लगाया जा सकता है। संशोधित विधि के अंतर्गत मौजूद घुलनशील कार्बोनेट को 60 प्रतिशत सांद्रता वाले एल्कोहल से धुलाई करने के बाद स्कुनोवर विधि द्वारा जिप्सम की आवश्यक मात्रा की जानकारी की जाती है।

241

सारणी 7.3: विभिन्न ग्रेड के जिप्सम की विशिष्टताएं (भार के अनुसार अधिकतम प्रतिशत मात्रा)

विवरण		विभिन्न ग्रेड के लिए आवश्यक मान				
		1	2	3	4	5
1.	मुक्त जल	1.0	-	1.0	-	-
2.	कार्बन डाइ-ऑक्साइड	1.0	-	3.0	-	-
3.	सिलिका एवं अन्य अविलेय सामग्री	1.0	6.5	6.5	-	-
4.	लोहा और ऐल्युमिनियम	1.0	1.5	1.0	-	-
5.	मैग्नीशियम ऑक्साइड	0.5	1.0	1.5	3.0	-
6.	जिप्सम	96.0	86.0	83.8	80-85	70-80
7.	क्लोराइड	0.1	0.01	0.01	0.5	-

क्षारीय भूमि की जिप्सम-आवश्यकता की गणना के लिए अग्रवाल एवं उनके सहयोगियों (1979) ने निम्नलिखित सूत्र विकसित किए हैं :

$$\frac{\text{ESP (प्रारंभिक)} - \text{ESP (अंतिम)} \times \text{CEC}}{100} = \text{जिप्सम आवश्यकता मि. ई. (मिली इक्विलेंट) प्रति 100 ग्राम मिट्टी हेतु}$$

जिस क्षारीय भूमि की गणना करनी हो, उसमें मौजूद विनिमयशील सोडियम की प्रतिशत मात्रा (ESP) ज्ञात करनी चाहिए। यही ESP का प्रारंभिक मान है। अंतिम ESP को 10 मान लिया जाता है, क्योंकि

इस मान पर अधिकांश मिट्टियों की भौतिक दशाएं फसल उगाने हेतु सर्वथा उपयुक्त रहती हैं। ज्ञातव्य है कि धान, गेहूं और जौ-जैसी लवण एवं क्षार के प्रति सहनशील फसलें तो 10 से अधिक ESP मान पर भी उगायी जा सकती हैं। CEC मिट्टी की धनायन विनिमय क्षमता इकाई (सी.मोल (पी+) किग्रा.$^{-1}$) का संकेतक है। इसकी इकाई अब सी.मोल (पी+) किग्रा.$^{-1}$ लिखी जाती है। उदाहरण के लिए ऐसी मिट्टी जिसकी प्रारंभिक ESP 60, अंतिम ESP 10 और CEC 30 मि.ई. प्रति 100 है, उसके जिप्सम आवश्यकता की गणना निम्नानुसार की जाएगी :

$\frac{60-10\times30}{100}=15$ मि.है. जिप्सम प्रति 100 ग्राम मिट्टी हेतु

चूंकि एक हेक्टेयर खेत के 15 सेमी. गहराई की मिट्टी पर भार लगभग 20,00,000 किग्रा. होता है और 1 मिलीइक्विवलेंट (मिली समतुल्य) विस्थापन योग्य जिप्सम ($CaSO_4.2H_2O$) सुधारक के प्रति 10 लाख भाग में 860 भाग के बराबर होता है, अत: जिप्सम की आवश्यक मात्रा होगी:

$\frac{860\times20,000,000\times18}{1,000,000}=860\times2\times15=25,800$ किग्रा. या लगभग 26 टन।

जिप्सम की वास्तविक मात्रा की गणना उसकी प्रतिशत शुद्धता के अनुसार कर लेनी चाहिए। विशिष्ट भूमि की जिप्सम आवश्यकता की जानकारी हो जाने पर अन्य सुधारकों की समतुल्य मात्रा की गणना आसानी से की जा सकती हैं।

मिट्टी के पी-एच मान तथा उसमें मौजूद विनिमयशील सोडियम की प्रतिशत मात्रा में पारस्परिक सह-संबंध को दृष्टि में रखते हुए अब्रोल और भुंबला (1973) ने मिट्टी के पी-एच मान के अनुसार

243

विभिन्न प्रकार के गठन वाली मिट्टियों की जिप्सम आवश्यकता ज्ञात करने का विवरण प्रस्तुत किया है। स्पष्ट है कि भारी गठन वाली मिट्टियों की जिप्सम आवश्यकता हल्के गठन वाली मिट्टियों की तुलना में अधिक होती है।

जैव-सुधारक

क्षारीय भूमि के सुधार के लिए जिन जैविक सामग्रियों का इस्तेमाल किया जाता है, उनमें गोबर-कूड़े की खाद, शीरा, चीनी मिल से प्राप्त प्रेसमड, हरी खाद, फसलों के अवशेष तथा विभिन्न खरपतवार, खासकर सत्यानासी प्रमुख हैं। इन सामग्रियों का इस्तेमाल या तो अकेले अथवा किसी अन्य जैविक या रासायनिक सुधारक के साथ किया जाता है। भारत में किए गए परीक्षणों से पता चलता है कि जैविक सामग्री का रासायनिक सुधारकों के साथ उपयोग ज्यादा कारगर एवं आर्थिक दृष्टिकोण से भी विशेष लाभकर होता है।

गोबर-कूड़े की खाद

जिप्सम के साथ गोबर-कूड़े की खाद के इस्तेमाल से एक-दूसरे की क्षमता में काफी वृद्धि हो जाती है।

शीरा और चोटा या प्रेसमड

क्षारीय भूमि के सुधार के लिए चीनी मिलों से उपजात सामग्री के रूप में प्राप्त चोटा या शीरा प्रेसमड के इस्तेमाल की संस्तुति डॉ. धर (1935) ने बहुत पहले की थी। शीरे में साधारणत: 3 प्रतिशत नाइट्रोजन, 3.5 प्रतिशत पोटाश और 1.3 से 2.5 प्रतिशत चूना पाया जाता है। साथ ही कार्बोहाइड्रेट तथा कार्बनिक पदार्थ भी काफी मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही कार्बोहाइड्रेट की काफी अधिक मात्रा होने के कारण भूमि में मिलाने से शीरे का विघटन शीघ्र ही प्रारंभ हो जाता है। विघटन की क्रिया के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल बनते हैं।

कार्बोनेशन पद्धति से प्राप्त प्रेसमड में लगभग 70 प्रतिशत कैल्शियम कार्बोनेट, 8 प्रतिशत जैविक पदार्थ, 0.4 से 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन और 1.25 प्रतिशत फॉस्फोरस पाया जाता है। डॉ. धर ने ऊसर भूमि के सुधार हेतु चीनी उद्योगों से प्राप्त शीरे का इस्तेमाल भी उपयोगी बताया है परंतु शीरे की तुलना में प्रेसमड विशेष प्रभावकारी होता है। कार्बोनेशन पद्धति से प्राप्त प्रेसमड की तुलना में सल्फिटेशन पद्धति से प्राप्त प्रेसमड ज्यादा कारगर पाया जाता है।

हरी खाद और फसलों की अवशेष सामग्री

जैविक सामग्री के विघटन के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न जैविक अम्ल मिट्टी का पी-एच मान कम करने में सहायक होते हैं। साथ ही मिट्टी में मौजूद पोषक तत्वों में से घुलनशील कैल्शियम मिट्टी की क्षारीयता कम करने में सहायक होता है।

खरपतवार

क्षारीय भूमि के सुधार के लिए सत्यानासी (*अर्जीमोन मैक्सिकाना*) नामक खरपतवार की उपयोगिता का परीक्षण बंथरा (लखनऊ), उत्तर प्रदेश में किया गया। इसमें 1.8 प्रतिशत पोटैशियम नाइट्रेट, 1.8 प्रतिशत मोनो कैल्शियम फॉस्फेट, 0.4 प्रतिशत जिप्सम, 4.2 प्रतिशत जैविक अम्ल और 9.8 प्रतिशत शर्करा पाया जाता है। सत्यानासी के विघटन के फलस्वरूप उत्पन्न जैविक अम्लों का मिट्टी के पी-एच मान पर जबरदस्त प्रत्यारोधन प्रभाव पड़ता है। सत्यानासी के पौधों के चूर्ण का 2.5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करने पर मिट्टी का पी-एच मान 10.0 से घटकर 7.8 हो गया जो कि 30 दिन की अवधि के अंदर धीरे-धीरे अपने आप 8.5 हो गया। इस परीक्षण से यह भी पता चला कि इसकी आधी मात्रा प्रयोग करने पर लगभग उतना ही सुधार हुआ। इसके अलावा कुछ लोगों ने सदाबहार की विभिन्न प्रजातियों एवं विभिन्न वृक्षों की सूखी पत्तियों का इस्तेमाल भी क्षारीय भूमि के सुधार हेतु किया है।

घास की रोपाई

शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों के कट जाने से मिट्टी के कणों की संरचना खराब हुई है। ऐसे क्षेत्रों में दूब, जनेवा, मुसले, अंजन घास लगाने से लाभ होता है।

वृक्षारोपण

वृक्षारोपण के फलस्वरूप जड़ों के नीचे प्रवेश करने से अवभूमि ढीली हो जाती है जिससे मिट्टी की पारगम्यता में सुधार हो जाता है। पत्तियों की बिछाली और जड़ों के अवशेष से मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है जिसके विघटन के फलस्वरूप मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार होता है।

विभिन्न जैविक एवं रासायनिक सुधारकों के कुशल उपयोग के लिए पानी की उचित व्यवस्था का होना नितांत आवश्यक है। सुधारकों के प्रयोग के बाद खेत में पानी भरकर लवणों का निक्षालन किया जाता है। इसके बाद बचे हुए जल को जल-निकास की उचित व्यवस्था द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार मिट्टी में मौजूद विनिमयशील सोडियम का कैल्शियम द्वाराविस्थापन हो जाता है। फलत: मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में उल्लेखनीय सुधार हो जाता है।

अध्याय-8

मृदा परीक्षण : आवश्यकता और महत्व

कृषि उपादानों में सबसे कीमती निवेश उर्वरक है। लेकिन किसान उर्वरक उपयोग में प्राय: लापरवाही बरतते हैं। फसल बोने से पहले ही खेत की मिट्टी का परीक्षण करा लेना चाहिए। मिट्टी परीक्षण से यह पता चल जाएगा कि उक्त भूमि में किन तत्वों की कितनी कमी है और कैसे या कौन-से तत्वों की पूर्ति की जाए। भूमि में सभी तत्वों की कमी नहीं होती, किसी तत्व की मात्रा भूमि में बहुत ही कम या मध्यम होती है तो किसी में उस तत्व की मात्रा अधिक होती है। मिट्टी परीक्षण से ही भूमि में पोषक तत्वों की सही स्थिति का पता लग सकता है। यदि किसी तत्व की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध है तो उस तत्वधारी उर्वरक पर पैसा खर्च करना धन का अपव्यय होगा। यदि किसी तत्व की उपलब्ध मात्रा कम या मध्यम है तो उस तत्वधारी उर्वरक की कितनी मात्रा उपयोग की जाए, यह भी मिट्टी परीक्षणों के बाद पता चलता है।

संतुलित उर्वरक उपयोग का अर्थ यह नहीं कि नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश की मात्रा एक समान भूमि में डाली जाए। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि भूमि में जिस-जिस तत्व की कमी पाए जाए, उसी तत्वधारी उर्वरक को भूमि में दिया जाए। बड़े किसानों के अतिरिक्त छोटे किसान भी मिट्टी परीक्षण न कराकर इस तथ्य से अपरिचित ही रहते हैं। इसीलिए किसानों को मिट्टी की जांच कराकर और उसकी रिपोर्ट के अनुसार ही उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

मिट्टी का परीक्षण कराए बिना उर्वरक का प्रयोग न केवल धन का अपव्यय है, अपितु इससे कोई लाभ भी नहीं होता है। अत: मिट्टी

17—1/CSTT/ND/05

का परीक्षण कराकर ही उर्वरकों का उपयोग करना किसान के हित में है। मिट्टी की उर्वरता का मूल्यांकन करने के लिए और उर्वरकों का वैज्ञानिक उपयोग करने के लिए मिट्टी परीक्षण और उसके आधार पर फसलों की अनुक्रिया संबंधी अनुसंधान किया जाता है। मिट्टी परीक्षण से यह पता चल सकता है कि कौन-सी मिट्टी ऐसी है, जिसमें उर्वरक देने से फसल पर ज्यादा असर पड़ेगा और कौन-सी ऐसी है, जिसमें अधिक उर्वरक देने से प्रभाव या तो बिल्कुल नहीं होगा या कम होगा।

''मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों के वैज्ञानिक विश्लेषण को मिट्टी का परीक्षण कहते हैं। मृदा परीक्षण के अंतर्गत मुख्य रूप से नाइट्रोजन, आर्गेनिक कार्बन, पोटाश, फॉस्फोरस, पी-एच एवं घुलनशील लवण हेतु विश्लेषण किया जाता है।''

इन विश्लेषणों के आधार पर मिट्टी में उर्वरक का सही और संतुलित उपयोग कर अधिक पैदावार ली जा सकती है। मृदा परीक्षण किसानों के लिए वरदान है जिसके द्वारा उर्वरकों का उपयोग नियंत्रित रूप से करके अधिक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं।

मृदा परीक्षण से निम्नलिखित जानकारी मिल सकती है:

1. मृदा परीक्षण से पता चलता है कि भूमि अम्लीय है या क्षारीय। इसकी जानकारी पी-एच द्वारा प्राप्त होती है, और यदि मिट्टी अधिक क्षारीय या अम्लीय है तो पौधे आसानी से अपना भोजन ग्रहण नहीं कर सकते हैं। अधिक अम्लीय मृदा में चूना तथा ऊसर भूमि में जिप्सम का उपयोग करना चाहिए।

2. मृदा में कौन-सा पोषक तत्व कितनी मात्रा में मौजूद है व भूमि की उपजाऊ शक्ति कितनी है?

3. फसलों की पैदावार कम क्यों है?

4. अधिक पैदावार के लिए कौन-सी व कितनी खाद व उर्वरक देना चाहिए?

5. मिट्टी में पाए जाने वाले संपूर्ण घुलनशील लवणों की मात्रा का पता चलता है जिसके कारण मिट्टी ऊसर हो जाती है।

6. भूमि किस फसल के लिए अधिक उपयुक्त है और किन फसलों से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है?

मृदा परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोगशाला को प्राप्त नमूना खेत की संपूर्ण मिट्टी का प्रतिनिधित्व करे, क्योंकि बहुत बड़े जमीन के टुकड़े से अर्थात् लगभग एक हेक्टेयर समतल जमीन से एक नमूना लेना होता है जिस पर इस भूमि का सही परीक्षण निर्भर करेगा।

परीक्षण के लिए खेत से मृदा का सही नमूना क्यों महत्वपूर्ण है?

मृदा के रासायनिक परीक्षण के लिए पहली आवश्यक बात है- खेतों से मृदा के सही नमूने लेना। न केवल अलग-अलग खेतों की मृदा की आपस में भिन्नता हो सकती है, बल्कि एक खेत में अलग-अलग स्थानों की मृदा में भी भिन्नता हो सकती है। परीक्षण के लिए खेत से मृदा का नमूना सही होना चाहिए। मृदा का गलत नमूना होने से परिणाम भी गलत मिलेंगे। खेत की उपजाऊ शक्ति की जानकारी के लिए ध्यान देने योग्य बात यह है कि परीक्षण के लिए मृदा का जो नमूना लिया गया है वह आपके खेत के हर हिस्से का प्रतिनिधित्व करता हो।

नमूना लेने के उद्देश्य

रासायनिक परीक्षण के लिए मृदा के नमूने एकत्रित करने के तीन उद्देश्य हैं:

1. फसलों में रासायनिक खादों के प्रयोग की सही मात्रा निर्धारित करने के लिए।

2. ऊसर भूमि के सुधार तथा उसे उपजाऊ बनाने के सही ढंग जानने के लिए।

3. बाग व पेड़ लगाने में भूमि की योग्यता निश्चित करने के लिए।

मृदा नमूना लेने की विधि

1. सामान्यत: मिट्टी का नमूना लेने के लिए जिस भूमि का नमूना लेना हो, उसके लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर 8-10 निशान लगा लें।

2. मिट्टी का नमूना लेते सगय ऊपरी सतह पर पड़े खरपतवार, पत्तों तथा पौधों के अवशेष आदि को इस प्रकार निकाल देना चाहिए जिससे भूमि की ऊपरी सतह सुरक्षित बनी रहे।

3. फसल काटते ही मिट्टी का नमूना शीघ्रातिशीघ्र लेने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि अगली फसल के लिए परीक्षण परिणाम समय पर प्राप्त हो सके। फसल खड़ी होने पर नमूना न लें।

4. यदि एक ही खेत में विभिन्न प्रकार की मिट्टी हो या खेत के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न फसलें ली गईं हों तो हिस्से का अलग-अलग नमूना लेना चाहिए।

5. ऐसे स्थान, जैसे– गड्ढा, नाली, मेड़, सड़क आदि के नमूने नहीं लेने चाहिए।

6. नमूना लेने के लिए खेत में 8-10 स्थान छांट लें जो गोबर के ढेरों से काफी दूर हों।

7. नमूने के लिए 10×10 वर्ग सेमी. के आकार का 15 सेमी. गहरा गड्ढा खुरपी या अन्य यंत्र की सहायता से बना लें, तब ऐसे गड्ढे की दीवार की ओर से पतली व बराबर परतें निकाल लें। भूमि की सतह से उस गहराई की मिट्टी इकट्ठा कर लें।

8. एकत्रित की गई मिट्टी को खूब मिला लें और उसमें बड़े पत्थर जो कि भूमि में सामान्य तौर पर नहीं होते, हटा दें।

9. पूरी मिट्टी को लेकर एक जगह मिला लें और उसे चार बराबर भागों में बांटकर आमने-सामने के दो भाग की मिट्टी लेकर अन्य दोनों भागों की मिट्टी हटा दें।

10. बचे हुए भाग की मिट्टी को पूर्ववत् फैला लें और बराबर भागों में बांट लें और इस बार दूसरे आमने-सामने के भागों की मिट्टी प्राप्त करें। इस क्रिया को तब तक दुहराना चाहिए जब तक कि आधा किलोग्राम नमूना न रह जाए।

11. मृदा नमूनों को परीक्षण के लिए साफ-सुथरी थैलियों में डाल दें और लेबल लगाकर नाम, पता, खेत का खसरा नंबर व फसल-चक्र आदि का ब्यौरा लिख दें तथा प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेज दें, जहां उसकी जांच होती है।

मृदा नमूना लेने के संबंध में विशेष सावधानियां

1. जिन स्थानों की मिट्टी क्षार, लवण या अम्लीयता से ग्रसित हो, वहां विभिन्न गहराइयों से मिट्टी के नमूने भेजे जाने चाहिए।

2. नमूना कंपोस्ट आदि के ढेर, नीची जमीन या पानी की नाली के बिल्कुल नजदीक से न लें।

3. ध्यान रहे कि नमूना लेने वाली जगह पर ताजी खाद, चूना या कोई भूमि सुधारक रसायन तत्काल न डाला गया हो।

4. खेत का नूमना बुआई से करीब एक महीने पहले लें।

5. जहां तक संभव हो एक खेत का एक ही नमूना लें।

6. खड़ी फसल वाले खेत से नमूना न लें। यदि नमूना लेना जरूरी हो तो पौधों की लाइनों के बीच वाले स्थान से नमूना लें।

7. मिट्टी परीक्षक की रिपोर्ट के अनुसार उर्वरकों और भूमि सुधारक रसायनों का सही मात्रा में इस्तेमाल करें।

प्रयोगशाला में प्राप्त नमूने की जांच आधुनिक विधि के उपकरणों की सहायता से प्रशिक्षित सहायकों द्वारा सामान्यत: 7-8 दिन में कर ली जाती है। परिणाम के आधार पर उर्वरक संस्तुति को नमूना देने वाले को भेज दिया जाता है।

हमारे देश में किए गए शोध कार्यों के आधार पर मिट्टी में जैव-कार्बन और क्षारीय परमैंगनेट विधि द्वारा अनुमानित उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा के अनुसार उर्वरता का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जाता है :

उर्वरता स्तर	जैव-कार्बन की प्रतिशत मात्रा	उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा (किग्रा./हे.)
निम्न	0.5 से कम	280 से कम
मध्यम	0.5 से 0.75	280 से 560
उच्च	0.75 से अधिक	560 से अधिक

ओल्सन विधि द्वारा अनुमापित फॉस्फोरस की मात्रा के अनुसार मिट्टी की उर्वरता का निर्धारण निम्नवत् किया जाता है :

फॉस्फोरस की मात्रा (किग्रा./हे.)	फॉस्फोरस उर्वरता-स्तर
10 से कम	निम्न
10-25	मध्यम
25 से अधिक	उच्च

अमोनियम ऐसीटेट द्वारा अनुमानित पोटैशियम की मात्रा के आधार पर उर्वरता का निर्धारण निम्नानुसार किया जाता है:

पोटैशियम की मात्रा (किग्रा./हे.)	पोटैशियम उर्वरता-स्तर
110 से कम	निम्न
110-280	मध्यम
280 से अधिक	उच्च

अध्याय-9

उर्वरकों का सक्षम उपयोग

उर्वरकों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उर्वरक प्रयोग का उपयुक्त समय व उपयुक्त प्रयोग विधि का निर्धारण अति आवश्यक है। मृदा में जिन पोषक तत्वों की कमी होती है, उन्हीं के अनुसार उपयुक्त उर्वरक उस मृदा में डालने चाहिए। प्रयोग किए जाने वाले उर्वरकों की जल विलेयता तथा मृदा विलयन में गतिशीलता भिन्न-भिन्न होती है। मृदा का गठनात्मक प्रकार भी प्रयुक्त उर्वरकों की गति को नियंत्रित करता है। इसी प्रकार विभिन्न पौधों की पोषक तत्वों की आवश्यकता भी उनके प्रकार तथा विकास की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, पौधों द्वारा नाइट्रोजन उनके संपूर्ण वृद्धि काल तक लिया जाता रहा है जबकि फॉस्फोरस का अवशोषण वृद्धि की आरंभिक दशा में तीव्र दर से होता है।

मिट्टी में जिन पोषक तत्वों की कमी हो उन्हीं के अनुसार उपयुक्त उर्वरक या उर्वरकों का मिश्रण उस मिट्टी में डालने की आवश्यकता है, परंतु फसल द्वारा उनका सदुपयोग इस बात पर निर्भर है कि उनको मिट्टी में किस प्रकार और किस समय डाला जाता है। अधिकांश मिट्टियों पर विभिन्न उर्वरकों के प्रयोग का बहुत जल्दी असर होता है क्योंकि वे कमजोर होती हैं। यदि उर्वरक सही तरीके से और ठीक समय पर डाले जाएं तो और भी अच्छा असर हो सकता है।

उर्वरकों के कुशल उपयोग के सिद्धांत

1. मिट्टी में पोषक तत्व की ज्ञात कमी के आधार पर उपयुक्त उर्वरक का उपयोग

अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए उर्वरक की कितनी मात्रा अनुकूलतम रहेगी, यह एक ओर इस बात पर निर्भर है कि फसल को किस तत्व की कितनी आवश्यकता है और दूसरी ओर मिट्टी में किन-किन पोषक तत्वों की कमी है। भारत में प्रमुख फसलों की नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश में आवश्यकताएँ अलग-अलग हैं। गेहूं को नाइट्रोजन काफी अधिक मात्रा में, जौ और ज्वार को सामान्य मात्रा में और धान तथा बाजरा को कम मात्रा में चाहिए। यही बात फॉस्फोरस के बारे में है, परंतु इन सभी फसलों की पोटाश की आवश्यकता काफी अधिक है। गन्ने की फसल को सभी तत्वों की अधिकतम मात्रा में आवश्यकता होती है। विभिन्न फसलों के लिए पोषक तत्वों की अनुकूलतम मात्रा उनकी मिट्टियों में पाई जाने वाली कमी पर निर्भर है। यह दो प्रकार से सूचित होती है - उर्वरक के प्रभाव से और मिट्टी की परख से।

पोषक आयनों के यौगिकीकरण को कम करना

फसलें पोषक तत्वों का पूर्ण उपयोग कर सकें, इसके लिए पोषक तत्वों को फसलों में ऐसी जगह डालना चाहिए जहां वे मिट्टी में मौजूद नमी या पानी में तुरंत ही घुल जाएं। पौधों के पोषक तत्व मिट्टी में किस गति से और कितनी दूर तक जा सकते हैं, इसका भी ज्ञान होना आवश्यक है। आमतौर पर फॉस्फेट आयन, जहां फॉस्फेट डाला जाता है, वहां से केवल थोड़ी दूर तक ही जा सकते हैं। इसलिए उन्हें खेत में ऐसी जगह डालना चाहिए जहां तक पौधों की जड़ें पहुंचती हों जिससे वे पौधों को अपनी जड़ों द्वारा तुरंत ही मिल सकें। यौगिकीकरण का मतलब पौधों के पोषक तत्वों और मिट्टी की परस्पर ऐसी रासायनिक और भौतिक क्रियाओं और प्रक्रियाओं से है जिनके कारण पोषक तत्व फसलों को कम मात्रा में मिल पाते हैं। जिन मिट्टियों में लोहे का अंश अधिक होता है उनमें फॉस्फेटों के रासायनिक यौगिक बहुत जल्दी बन जाते हैं और इस प्रकार वे पौधों को नहीं मिल पाते। परंतु जिन मिट्टियों में लोहे का अंश कम होता है उनमें ऐसा कम होता है। अम्लीय और क्षारीय प्रतिक्रियाओं वाली मिट्टियों

में लगभग उदासीन मिट्टियों की अपेक्षा फॉस्फेटों के यौगिक बहुत जल्दी बनते हैं। इससे मिट्टी में फॉस्फेट डालने पर भी उसमें उगे हुए पौधे काफी समय तक उनका लाभ नहीं उठा सकते। इसलिए यह अति आवश्यक है कि फॉस्फेटधारी और पोटाशधारी उर्वरकों को बीज बोने की नली की मदद से मिट्टी में इस प्रकार डाला जाए कि वे बीज या पौधों की जड़ों के निकट गिरें। इसमें किसानों को तीन प्रकार से लाभ होते हैं -

1. उर्वरक का मिट्टी के साथ कम संपर्क रहने से फॉस्फोरस और पोटाश से यौगिक कम बनते हैं।

2. मिट्टी में पोषक तत्व ऐसी जगह रहते हैं जहां पौधों की जड़ें आसानी से पहुंच सकती हैं। इस प्रकार यदि उर्वरक सावधानी से डाले जाएं तो मिट्टी में उनके जमा हो जाने और पौधों पर विषैला प्रभाव पड़ने की संभावना बहुत कम हो जाती है। इसके अलावा मिट्टी में मिलाकर डालने से उर्वरकों का प्रभाव बहुत हल्का हो जाता है, परंतु इस प्रकार डालने से वह भी भय नहीं रहता।

3. पौधों की कतारों की बगल में, पट्टियों पर जो उर्वरक डाले जाएं, उनसे कतारों के बीच में उगे हुए खरपतवारों को कोई पोषण या खुराक नहीं मिलती।

फॉस्फोरस और पोटाश के आयनों का यौगिकीकरण कम से कम करने के लिए इन उर्वरकों को मिट्टी में उचित जगह पर डालना चाहिए। उर्वरकों को डालने के अलग-अलग तरीके हैं। उदाहरण के लिए, उर्वरकों को बीजों के साथ मिलाया जा सकता है, उनको बीज बोने की नली से बीज की कतार के नीचे डाला जा सकता है या उन्हें बीज की कतारों के दोनों ओर पट्टियों में डाला जा सकता है।

धान की खेती के मामले में पौधों को उर्वरकों का अधिकतम लाभ पहुंचाने के लिए उर्वरकों को विशेषकर नाइट्रोजनधारी उर्वरकों को मिट्टी में गहरा नीचे की मिट्टी में डालना चाहिए जिससे उनकी

नाइट्रोजन रिसकर नष्ट न हो सके। दूसरे धान के पौधे अपनी बढ़वार की आरंभिक अवस्था में नाइट्रोजन, अमोनियम के रूप में ग्रहण करते हैं। इसलिए नाइट्रोजनधारी उर्वरक मिट्टी में डालते ही उदासीन नहीं होने चाहिए, वे मिट्टी या मटियार के कणों में समाए हुए रहने चाहिए।

3. उर्वरक डालने का समय

पौधों के प्रमुख पोषक तत्वों में नाइट्रोजन एक ऐसा तत्व है जिसकी पौधों की अपनी बढ़वार के दिनों में हमेशा जरूरत रहती है, जबकि फॉस्फेट एवं पोटाश की जरूरत बढ़वार के केवल आरंभिक दिनों में ही होती है। फॉस्फोरस के मामले में यह अनुमान लगाया गया है कि जब फास्फोरस पौधों में डाली जाती है तब वह तो पचास प्रतिशत तक खप जाती हैं परंतु पौधों की बढ़वार केवल 20 प्रतिशत ही हो पाती है। अत: फास्फेटधारी और पोटाशधारी उर्वरक खेत में फसल की बुआई या रोपाई के समय ही डाले जाते हैं। परंतु नाइट्रोजनधारी उर्वरक डालने का समय मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी और फसल की अवधि के अनुसार निर्धारित किया जाता है।

4. मिट्टी के पी-एच मान को ठीक करके पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाना

मिट्टी के पौधों के पोषक तत्व चाहे पहले से मौजूद हों या उर्वरकों के रूप में डाले गए हों, उनका उपलब्धता पर मिट्टी की प्रतिक्रिया का बड़ा असर पड़ता है। नाइट्रोजन की पर्याप्त आपूर्ति के लिए मिट्टी की अभिक्रिया, अर्थात् मिट्टी का पी-एच मान 6 और 8 के बीच होना चाहिए। फॉस्फोरस की उपलब्धता के लिए पी-एच मान 6.5-7.5 को सबसे उपयुक्त समझा जाता है। पी-एच मान 5.5 से कम होने पर फॉस्फेट अघुलनशील लोहे और ऐल्युमीनियम के यौगिकों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं और पौधों के लिए अनुपलब्ध हो जाते हैं और पी-एच मान 6 से 8 केवल कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों को छोड़कर अन्य अधिकांश पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए

सर्वोत्तम हैं। जब पी-एच मान 7.5 से बढ़ जाता है तब पौधों को लोहा, मैंगनीज, बोरॉन, तांबा और जस्ते की उपलब्धि बहुत कम हो जाती है।

भारत में विभिन्न राज्यों की मिट्टियों की प्रतिक्रिया या पी-एच मान में बड़ा अंतर पाया जाता है। उदाहरण के लिए, अधिक वर्षा होने वाले क्षेत्रों की मिट्टियां प्राय: अम्लीय होती हैं और शुष्क तथा अर्ध शुष्क प्रदेशों की मिट्टियां उदासीन या क्षारीय होती हैं।

अम्लीय मिट्टी वाले क्षेत्रों में मिट्टी को ठीक रखने के लिए किए जाने वाले उपायों के रूप में चूने का उपयोग करना चाहिए। चूने का मुख्य गुण या प्रभाव मिट्टी में सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया बढ़ाकर जैविक सामग्री से नाइट्रोजन मुक्त करना है। मिट्टी में चूना डालने से उसमें उगी हुई फसल के पौधों को नाइट्रोजन और अन्य पोषक तत्व अधिक मात्रा में मिलने लगते हैं और इस प्रकार फसल की पैदावार में तुरंत ही सुधार होने लगता है। इस संबंध में एक पुरानी कहावत है कि ''चूना और चूने बिना खाद खेत और किसान दोनों को कमजोर बनाते हैं।'' क्षारीय मिट्टियों में जिप्सम डालने से उनका खारापन कम हो जाता है और उसमें मौजूद या डाले जाने वाले पोषक तत्व पौधों को आसानी से मिलने लगते हैं। खेत में हरी खाद और गोबर, कूड़े की खाद डालने से उसकी मिट्टी खुल जाती है और उसका खारापन कम हो जाता है। मिट्टी के सोडियम नमकों को रिसाकर बाहर निकालने की व्यवस्था करके भूमि को स्थायी तौर पर सुधारा जा सकता है।

5. मिट्टी में पर्याप्त नमी

पौधे पोषक तत्वों को मिट्टी के माध्यम से अपनी जड़ों द्वारा ग्रहण करते हैं। अत: एक तो यह आवश्यक है कि भूमि में पौधों की जड़ों के क्षेत्र में काफी नमी रहे जिससे पोषक तत्व उसमें घुल सकें। दूसरे, पोषक तत्वों को ग्रहण करके पौधे बहुत तेजी से बढ़ते

हैं। उनकी पत्तियों के जरिए मिट्टी की नमी भाप बनकर उड़ती रहती है। उसको पूरा करने के लिए भी मिट्टी में काफी नमी होनी चाहिए। यही कारण है कि वर्षा पर आश्रित क्षेत्रों की अपेक्षा सिंचाई की अच्छी व्यवस्था वाले क्षेत्रों में उर्वरकों का असर जल्दी और अच्छा होता है।

पानी में बहुत जल्दी घुलने वाले पोषक तत्व वर्षा या सिंचाई के पानी में घुलकर बाहर जा सकते हैं या रिसकर भूमि में नीचे चले जाते हैं और इस प्रकार पौधों की पहुंच से बाहर हो जाते हैं। भारी मिट्टियों की अपेक्षा बलुआर मिट्टियों में और पेड़-पौधों से ढकी मिट्टियों की अपेक्षा नंगी या खुली मिट्टियों में यह क्रिया बहुत ज्यादा होती है। अनुमान लगाया गया है कि मोटे तौर पर फसल की कटाई से नाइट्रोजन की जितनी हानि होती है उसका दसवां हिस्सा पानी रिसने से होती है, पोटाश की हानि नाइट्रोजन की तुलना में बहुत कम होती है और फास्फोरस की हानि तो नगण्य है। रिसने से होने वाली हानि को रोकने के लिए नाइट्रोजनधारी उर्वरकों को इस्तेमाल करने में फसल के लिए आवश्यक नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की कुल मात्रा एक ही बार में डाली जा सकती है, परंतु बलुआर और बलुआर दुमट मिट्टियों में या हल्की मिट्टियों में फसल की अवधि और मौसम की परिस्थितियों के अनुसार नाइट्रोजन की कुल मात्रा दो या तीन बार में देनी चाहिए।

6. भूमि के कटाव से होने वाले पोषक तत्वों के नाश को कम करना

हवा और पानी द्वारा कटने वाली मिट्टि के साथ ही बहुत-से पोषक तत्व नष्ट होते रहते हैं। कटन की कमी या अधिकता के अनुसार ही उसके साथ नष्ट होने वाले पोषक तत्वों की मात्रा कम या अधिक होती है। मेंड़बंदी, सीढ़ीदार खेत, ढलानों पर खेती, पट्टियों में दलहनी पौधे और घासें उगाना, आदि उपाय अपनाकर और साथ ही उर्वरकों का उपयोग करके भूमि को कटाव से बचाने और सुधारने के उपाय करने चाहिए। इससे मिट्टी की कटान के साथ होने वाली पोषक तत्वों की हानि काफी कम हो जाएगी।

7. मिट्टी की विनिमय क्षमता पर आधारित उर्वरकों का उपयोग

मिट्टियों में मटियार, खनिज, जैविक-सामग्री और लोहे से भरे कण होते हैं। ये सभी मिट्टी के धनायन-विनिमय में भाग लेते हैं और मिट्टी में मौजूद विनिमयशील धनायनों पर इनकी प्रतिक्रिया होती है। मिट्टी में जैविक-सामग्री जितनी अधिक होती है और मटियार एवं लोहे से भरी सामग्री की प्रतिशत मात्रा जितनी ज्यादा होती है, उसके कण पोषक तत्वों के आयनों को उतनी ही अधिक मात्रा में फसलों के भावी उपयोग के लिए संचित करके रख सकते हैं। बलुआर मिट्टियों में उर्वरक जब अधिक मात्रा में डाले जाते हैं तो उनके कुछ ऋणायन और धनायन मिट्टी में जड़-क्षेत्र में नहीं रह सकते। वे मिट्टी की निचली परतों में चले जाते हैं और वहां से पौधों की जड़ें उन्हें ग्रहण नहीं कर सकतीं। बलुआर मिट्टियों में जैविक-सामग्री डालने से उनकी विनिमय क्षमता बढ़ जाती है और उसके फलस्वरूप उस मिट्टी में डाले जाने वाले उर्वरकों का अच्छा उपयोग हो जाता है। इसी प्रकार अम्लीय मिट्टी में पोषक सामग्री डालने से उसकी पोषक तत्व संचित रखने की क्षमता बढ़ जाती है और पौधों की जड़ों की मिट्टी के ऊपरी परत में ही अपने लिए खुराक मिल जाती है।

उर्वरकों की प्रयोग विधियां

खेत में उर्वरकों के प्रयोग या वितरण की तीन विधियां हैं – उर्वरकों को खेतों में भुरकना, उर्वरकों को खेत में अपनी सही जगह पर डालना और पौधों पर उर्वरकों के घोल का चूर्णीय छिड़काव। यदि खेत में फसल घनी उगी हुई हो तो उन पर उर्वरक छिटकना उपयोगी रहता है क्योंकि घनी फसल की जड़ें खेत की सारी मिट्टी में फैली रहती हैं और उसमें किसी भी जगह गिरा उर्वरक पौधों के काम आ जाता है। इसी प्रकार जब उर्वरक अधिक मात्रा में डालने हों, नाइट्रोजनधारी उर्वरक तुरंत ही घुल जाने वाले हों या पोटाशधारी उर्वरक हल्की मिट्टियों में डालने हों या बेसिक स्लैग-जैसा जल्दी न घुलने वाला उर्वरक न देना हो तो भुरकना ही अच्छा रहता है। उर्वरक को

निश्चित जगह पर रख देने की विधि वहीं प्रयोग की जाती है जहां उर्वरक की थोड़ी मात्रा देनी हो तथा उसका ठीक प्रयोग करना हो। आवश्यकतानुसार उर्वरक घोल भी छिड़का जा सकता है।

उर्वरक प्रयोग की विभिन्न प्रचलित विधियां निम्नलिखित हैं:

ठोस रूप में उर्वरक का प्रयोग

अ. छिटकवां विधि

1. बुआई के समय छिटकना/भुरकना।
2. खड़ी फसल में छिटकना।

(i) साइड ड्रेसिंग

(ii) स्पॉट ड्रेसिंग

ब. संस्थापन विधि

1. कूंड़ की तली में रखना
2. गहन संस्थापन
3. अधो-मृदा संस्थापन

स. स्थानिक संस्थापन

1. स्पर्श अथवा ड्रिलिंग संस्थापन
2. डिबलिंग संस्थापन
3. पट्टी संस्थापन

क. हिल संस्थापन

ख. रो-संस्थापन

4. पैलेट (टिकिया) संस्थापन
5. साइड ड्रेसिंग
6. वलय संस्थापन

अ. छिटकवां विधि

सूखे तथा ठोस उर्वरक को सारे खेत में समान रूप से फैलाना या बिखेरना तथा बीज की बुआई करके मिट्टी में मिला देना आमतौर पर उर्वरक का भुरकना या छींटना कहलाता है। इस प्रकार की मृदा की सतह पर छिटकी हुई खाद जुताई के बाद स्वत: ही कूंड़ की तलों में पहुंच जाती है। यह भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है।

1. बुआई के समय छिटकना

भारत में अधिकांश उर्वरक खेतों में बुआई के समय ड्रिल अथवा हाथ से छिटक कर बोए जाते हैं। प्राय: नाइट्रोजन उर्वरक की 1/2 या 2/3 मात्रा, फास्फेटिक व पोटाश उर्वरक की संपूर्ण मात्रा बोने के समय खेत में डाली जाती है। गौण पोषक तत्व तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों के उर्वरक भी बुआई के समय छिटकवां विधि से आमतौर पर खेतों में डाले जाते हैं। अधिक क्षेत्रफल अथवा पहाड़री क्षेत्रों में उर्वरक छिटकने के लिए यंत्रों या वायुयानों का प्रयोग किया जाता है।

2. खड़ी फसल में उर्वरक छिटकना

खड़ी फसल में उर्वरक छिटकना टॉप ड्रेसिंग कहलाती है। गेहूं, धान, गन्ना, ज्वार, बाजरा आदि अधिक पादप घनत्व वाली फसलों में नाइट्रेट तथा कभी-कभी अमोनियम नाइट्रोजन-युक्त उर्वरकों का प्रयोग खड़ी फसलों में किया जाता है। इसका उद्देश्य खड़ी फसल में पोषक तत्वों की त्वरित आपूर्ति करना होता है। यदा-कदा फास्फेटिक व पोटाशिक खाद भी छिड़क कर बोए जा सकते हैं।

(i) कतारों में खड़ी फसल में या बुआई के पश्चात् यदि उर्वरक खेत में छिटक कर डाला जाता है उसे पौधे की बगल में उर्वरक डालना साइड ड्रेसिंग कहते हैं।

(ii) दूर-दूर बोई जाने वाली फसलों में पौधें के चारों ओर अथवा एक ओर पौधे के पास उर्वरक रखना स्पॉट ड्रेसिंग कहलाता है।

टॉप ड्रेसिंग प्राय: शाम के समय सूखी पत्तियों पर करना चाहिए। नम पत्तियों पर उर्वरक डालने पर पत्तियां जल जाती हैं। बड़े क्षेत्रों में खड़ी फसल में उर्वरकों का छिड़काव करने के लिए हल्के वायुयानों का प्रयोग किया जाता है। कीटनाशक दवाइयां भी इसी प्रकार डाली जाती हैं। चरागाहों व प्राकृतिक घासों के मैदानों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशिक उर्वरक आमतौर पर खड़ी घास में छिटके जाते हैं। एक फसल में कई बार टॉप ड्रेसिंग (फसल अवधि के आधार पर) किया जा सकता है।

उर्वरक छिटकने की विधि के दोष

1. इससे खेत में उगे खरपतवार भी उर्वरक का लाभ उठाते हैं और इस प्रकार उर्वरकों का अल्प भाग ही मुख्य फसल को प्राप्त हो पाता है।
2. छिटककर बोए गए उर्वरक का पूर्ण लाभ पौधों को नहीं मिलता क्योंकि कुछ उर्वरक खाली भूमि पर चला जाता है।
3. मिट्टी के संपर्क में आने पर उर्वरक का कुछ भाग स्थिर हो जाता है जो पौधों को प्राप्त नहीं होता है।

उपरोक्त हानियों के अतिरिक्त भी यह विधि उपयोगी एवं व्यावहारिक है।

ब. संस्थापन विधि

उर्वरकों को खेत में निर्धारित उपयुक्त स्थान पर रखना संस्थापन कहलाता है। वास्तव में पौधों की जड़ें पौधे के आस-पास एक निश्चित क्षेत्र में ही सक्रिय होती हैं। अत: यह आवश्यक है कि उर्वरक की अधिक उपयोग क्षमता के लिए उसे उसी प्रभावी क्षेत्र में ही रखा जाए। फॉस्फेट अथवा अन्य कम गतिशील उर्वरकों में संस्थापन अधिक महत्वपूर्ण है। यह भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है।

1. कूंड़ की तली में रहना

कूंड़ बनाने वाले हल से जुताई करते समय उर्वरक कूंड़ की तली में रखे जाते हैं। कूड़ों में रखा गया उर्वरक बगल की मिट्टी में स्वत: ही ढक जाता है। इस प्रकार उर्वरक मिट्टी के नीम वाले क्षेत्र में रखा जाता है जहां पौधों की अधिकांश जड़ों का जमाव रहता है। शुष्क क्षेत्रों में भी उर्वरक इसी विधि से डालना उपयुक्त रहता है। उर्वरक डालने के लिए विशेष यंत्र प्रयोग में लाए गए हैं। अमेरिका आदि विकसित देशों में यह यंत्र अधिक प्रचलित है।

2. गहन संस्थापन

इस विधि में उर्वरक मृदा में अधिक गहराई पर रख दिया जाता है ताकि उर्वरक का ह्रास नियंत्रित किया जा सके। फिलीपाइन्स तथा जापान में धान में नाइट्रोजनधारी उर्वरक जड़ों के नीचे गहराई पर रख दिए जाते हैं जिससे वे पानी के साथ बह नहीं पाते हैं। उर्वरकों के अपचयित संस्तर में होने पर उससे अमोनिया का ह्रास भी नहीं होता है तथा पौधों को नाइट्रोजन निरंतर प्राप्त होता रहता है।

अधोमृदा संस्थापन

इस विधि में भारी मशीनों तथा यंत्रों की सहायता से उर्वरक अधोमृदा में रख दिए जाते हैं। इस विधि का प्रयोग आमतौर पर नम क्षेत्रों की अम्लीय मृदाओं में किया जाता है। प्राय: फॉस्फेटिक खाद व पोटैशिक खाद ही इस विधि द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं।

स. स्थानिक संस्थापन

उर्वरकों को बीज अथवा पौधे के समीप स्थान विशेष पर रखना स्थानिक संस्थापन कहलाता है। इसकी भिन्न-भिन्न विधियां निम्नलिखित हैं:

1. स्पर्श अथवा ड्रिलिंग संस्थापन

बुआई के समय खाद तथा बीज को साथ-साथ कूड़ में बोना स्पर्श अथवा ड्रिलिंग संस्थापन कहलाता है। खाद्यान्नों तथा कतार में बोई जाने वाली फसलों में यह विधि प्रचलित है। इस विधि में ड्रिल तथा नारी का प्रयोग भी आमतौर से किया जाता है। कभी-कभी बीज व उर्वरक को साथ-साथ तथा कभी-कभी पृथक्-पृथक् ड्रिल किया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से अंकुर को नष्ट होने से बचाने के लिए उर्वरक को बीज से अलग रखना चाहिए। यह विधि शुष्क खेतों में अत्यंत उपयोगी है।

2. डिब्लिंग

इस विधि में उर्वरक विशेष प्रकार के डिब्लर यंत्र (खूंटीयुक्त यंत्र) द्वारा मृदा में डाले जाते हैं। इस यंत्र में खूंटी होती है, जिनको खेत में दबाने पर छिद्र बनते हैं जिनमें बीज व खाद साथ-साथ डाल दिए जाते हैं। यह विधि महंगी तथा अनुपयुक्त है क्योंकि खाद व बीज साथ-साथ बोने पर अंकुर नष्ट हो जाते हैं।

पट्टियों में रखना

इस विधि में उर्वरक को पौधे की बगल में पट्टियों में रख दिया जाता है। यह विधि प्राय: उन फसलों में प्रयोग में लाई जाती है जहां पौधों व कतारों के मध्य की दूरी अधिक होती है। यह विधि आलू, मक्का, गन्ना, कपास आदि फसलों में फॉस्फेटिक व पोटाशिक खाद के प्रयोग हेतु काम में लाई जाती है। इससे उर्वरक का अधिकतम उपयोग संभव है।

4. पैलेट संस्थापन

इस विधि में उर्वरक व नम मिट्टी की छोटी-छोटी टिकियां अथवा गोली बनाकर पौधों के समीप सतह के 4-5 सेमी. नीचे रख दिया जाता है। केंद्रीय धान अनुसंधान केंद्र, कटक, उड़ीसा द्वारा धान में

नाइट्रोजनी उर्वरकों के ह्रास को रोकने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी उर्वरक को कागज में लपेटकर भी गोलिकाओं के रूप में प्रयोग किया जाता है। धान में यूरिया की उपयोग क्षमता में वृद्धि करने के लिए यह सर्वोत्तम विधि है।

5. साइड ड्रेसिंग

इस विधि के अंतर्गत उर्वरकों को फसलों की चौड़ी कतारों के मध्य अथवा फलों के पौधों के चारों ओर समान रूप से छिटका जाता है। यह विधि पृथक्-पृथक् उपयोग में अधिक उपयुक्त होती है।

6. वलय संस्थापन

उर्वरकों का अधिक लाभ उठाने के लिए उसे ठीक स्थान पर डालना आवश्यक है। फलों के पेड़ों में थालों में वलय के रूप में अथवा दूर-दूर बोई जाने वाली फसलों के पौधे के चारों ओर उर्वरक की रिंग बनाकर उर्वरक डालना, वलय संस्थापन कहलाता है। यह विधि बागों में अत्यधिक उपयोगी है।

उर्वरक संस्थापन के लाभ

उर्वरक को खेत में छिटकने की बजाए उपयुक्त जगह पर रखने से निम्नलिखित लाभ हैं:

1. उर्वरक के साथ मिट्टी न्यूनतम मात्रा में रहती है और उस उर्वरक के पोषक तत्वों का स्थिर होना काफी कम हो जाता है।
2. छोटे-छोटे पौधे भी उर्वरक को आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। बीजों के संपर्क में न होने से इससे बीजों को कोई हानि नहीं पहुंचती और न खड़ी फसल को ही कोई नुकसान होता है। जब उर्वरक बहुत तेज होते हैं, जैसे यूरिया, तब सूखी बलुआर मिट्टी में उनसे सबसे अधिक हानि होती है।

3. उर्वरक को मिट्टी के उस भाग में रखा जाता है जहां नमी होती है और जहां पौधों की जड़ें आसानी से घुस सकती हैं और उसमें मिले पोषक तत्वों को सुगमता से ग्रहण कर सकती हैं।
4. सारे खेत में उगे हुए खरपतवार उर्वरक को अपने लिए इस्तेमाल नहीं कर सकते। मिट्टी में मौजूद जीवाणुओं की क्रिया के फलस्वरूप अमोनियम आयन नाइट्रेट में परिवर्तित हो जाते हैं।
5. मक्का पर अभी हाल में इस संबंध में जो अनुसंधान हुए हैं उनसे मालूम हुआ है कि यदि मिट्टी में पोषक तत्व काफी मात्रा में मौजूद हों और उनको ग्रहण करने से किसी प्रकार की बाधा न हो तो पौधे की केवल एक ही जड़ उसके लिए आवश्यक सारे पोषक तत्व मिट्टी से ग्रहण कर सकती है। इस प्रकार की जड़ मौसम भर निरंतर सक्रिय रहती है और मिट्टी से पोषक तत्व ग्रहण करती है। इस प्रकार पट्टियों में उर्वरक डालने की विधि काम में लाने पर मिट्टी से पोषक तत्व ग्रहण करने के लिए पौधों में बहुत ज्यादा जड़ों की आवश्यकता नहीं होती।
6. उर्वरक पट्टी में आयनों का जमाव अधिक होने से जड़ों में उनके पहुंचने और संचालन में सुविधा रहती है। ऐसा जड़ की सतह की समता के कारण नहीं, बल्कि उसकी सघनता के कारण होता है क्योंकि प्राय: बहुत-ही कम जड़ें उर्वरक को फोड़कर बाहर जाती हैं।
7. छिटके गए उर्वरक की तुलना में पट्टी में डाले गए उर्वरक का प्रभाव फसल लेने के बाद भी मिट्टी में काफी बना रहता है।

द्रव रूप में उर्वरकों का प्रयोग

प्राथमिक घोल के रूप में

सब्जियों में पौध रोपण के समय उर्वरकों $N-P_2O_5-K_2O$ के 1 : 1 : 2 अथवा 1 : 2 : 1 अथवा 1 : 1 : 1 के अनुपात में बने

प्रारंभिक विलयनों का प्रयोग किया जाता है। यही विलयन प्राथमिक विलयन कहलाते हैं। इन विलयनों में उर्वरक बहुत कम मात्रा में मिलाते हैं तथा इसका उपयोग पौध को स्थापित करने के लिए जल के स्थान पर किया जाता है। इनके उपयोग से पौधों को प्रारंभिक अवस्था में ही पोषक तत्व प्राप्त हो जाते हैं, यद्यपि इस प्रयोग से लागत में वृद्धि होती है।

पर्णीय छिड़काव

इस विधि के अंतर्गत पौधों पर उर्वरकों के तनु विलयनों का छिड़काव किया जाता है। एक साथ एक अथवा अधिक पोषक तत्वों का छिड़काव किया जा सकता है।

पौधे की पत्तियों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण होता है। अवशोषण शीघ्रता से होता है तथा इस प्रकार पोषक तत्वों का प्रभाव मृदा द्वारा ग्रहण किए गए तत्व से अधिक होता है। पर्णीय छिड़काव सामान्य स्प्रेयर अथवा पॉवर स्प्रेयर द्वारा किया जा सकता है। यह निम्नलिखित परिस्थितियों में लाभदायक रहता है:

1. जब कम अवधि में उर्वरक का प्रभाव वांछनीय हो।
2. जब मृदा अथवा फसल पद्धति मृदा उर्वरक उपयोग के अनुकूल नहीं होती है। पर्णीय छिड़काव शुष्क खेती तथा देर से बोई गई फसल में लाभदायक होता है।
3. कीटनाशक, जीवाणुनाशकों का छिड़काव करना हो।
4. फसल की अवस्था ऐसी हो जब खाद के छिड़काव की जरूरत हो।
5. फसल में पौधों का घनत्व अधिक हो।

पर्णीय छिड़काव से अग्रलिखित लाभ होते हैं:

1. उर्वरक की कम मात्रा आवश्यक होती है।
2. संपूर्ण खेत में उर्वरक का समान वितरण हो जाता है।
3. पोषक तत्वों का मृदा में स्थिरीकरण नहीं हो पाता है।
4. सूक्ष्म तत्वों की अल्प मात्रा पर्याप्त लाभ देती है क्योंकि मृदा उपयोग द्वारा इनका प्रभाव विषैला हो जाता है।
5. असमान स्थलाकृति वाले खेतों में भी उर्वरक का समान वितरण संभव है।
6. शुष्क खेती में विशेष रूप से लाभदायक होता है।

पर्णीय छिड़काव में अनेक लाभों के साथ निम्नलिखित हानियां भी होती हैं:

1. प्राय: तनु विलयनों का छिड़काव किया जाता है जिससे पौधों को अल्प मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त हो पाते हैं।
2. सांद्र घोल का छिड़काव अधिक होने पर पत्तियां व पौधे झुलस जाते हैं।
3. यूरिया के विलयन का छिड़काव करने पर नाइट्रेट पत्तियों में पहुंच जाता है जो एक विषैला पदार्थ है।
4. कुछ तत्वों का पत्तियों द्वारा अवशोषण विवादास्पद है।
5. छिड़काव करने में मजदूरी आदि में अधिक लागत आती है।

छिड़काव के लिए यूरिया के घोल का सांद्रण

सारणी 9.1 में छिड़काव हेतु यूरिया घोल का सांद्रण दर्शाया गया

सारणी-9.1: छिड़काव के लिए यूरिया घोल का सांद्रण (प्रतिशत)

फसल	हाई वाल्यूम स्प्रेयर (600-300 ली./हे.)	लो वाल्यूम स्प्रेयर (100-150 ली./हे.)
गेहूं	3-6%	10-30%
धान	2-4%	10-20%
मक्का	2-4%	10-20%
बाजरा तथा ज्वार	3-6%	10-20%
गन्ना	4-6%	15-30%
कपास	1-2%	10-15%
जूट	1-2%	10-15%
सब्जियां	0.5-1.5%	5-10%
फल	0.2-1.0%	3-5%
तेल वाली फसलें	1.5-2.0%	12-18%
फूलों वाली फसलें	0.5%	1-2.0%

छिड़काव करते समय सावधानियां

प्रभावशाली छिड़काव के लिए निम्नलिखित सावधानियां अपनानी चाहिए:

1. फसलों की उचित अवस्था पर छिड़काव करें।
2. सुबह 8 बजे के पश्चात् फसल से ओस सूख जाने पर छिड़काव करें। दिन का गर्म भाग भी छिड़काव से बचाना चाहिए।
3. जिस दिन वर्षा की संभावना हो अथवा तेज हवाएं चलती हों, छिड़काव न करें।

4. छिड़काव सब जगह बराबर करने के लिए स्प्रेयर का बारीक नोज़ल प्रयोग करें।
5. स्प्रेयर की किस्म फसल की किस्म व अवस्था के अनुसार ही रसायन के घोल की सांद्रता तैयार करें।
6. यदि उर्वरक के साथ अन्य खरपतवारनाशी, कीटनाशी अथवा कवकनाशी आदि का प्रयोग करना हो तो यह ज्ञात होना चाहिए कि क्या इन रसायनों का मिश्रण अनुरूप है, अर्थात् किसी तत्व की आपस में विपरीत क्रिया न हो और न ही अवक्षेप बनना चाहिए।
7. यूरिया का छिड़काव करते समय यह ध्यान रहे कि उसमें बाइयूरेट की मात्रा 1.0% प्रतिशत से अधिक न हो।

सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव

यूरिया की तरह सूक्ष्म तत्वों का भी फसल की आवश्यकतानुसार पर्णीय छिड़काव किया जाता है। इसके विलयनों की सांद्रता निम्नलिखित होती है:

सारणी-9.2: सूक्ष्म तत्वों का सांद्रण

तत्व	स्रोत	यौगिक का सांद्रण (%)
जिंक	$ZnSO_4$	0.50
	$Ca(OH)_2$	0.25
आयरन	$FeSO_4$	0-40
	$Ca(OH)_2$	0.20
बोरोन	बोरेक्स	0.20
कॉपर	$CuSO_4$	0.10
	$Ca(OH)_2$	0.05

मैंगनीज	$MnSO_4$	0.60
	$Ca(OH)_2$	0.30
मॉलिब्डेट	सोडियम मॉलिब्डेट	0.05

उर्वरक विलयन का मृदा में प्रत्यक्ष प्रयोग

पश्चिमी देशों में विलयन अथवा द्रव उर्वरकों का अत्यधिक प्रचलन है। हमारे देश में भी विभिन्न विलयन अथवा द्रव के रूप में उपलब्ध हैं। नाइट्रोजन उर्वरकों के द्रव उर्वरक दाबहीन व दाबयुक्त विलयनों के रूप में उपलब्ध हैं। मुख्य-मुख्य द्रव उर्वरक निम्नलिखित हैं:

सारणी 9.3: मुख्य द्रव उर्वरक

टाइप	विशिष्ट घनत्व		N% as NH_3 – NH_4NO_3 – यूरिया	
320	1.3	–	16.3	15.7
300	1.301	–	15.3	14.7
280	1.283	–	14.0	14.0
190	1.253	–	19.0	–
200	1.124	–	–	20.0
*410	1.1162	15.6	20.3	5.1
*410	1.338	18.3	22.7	–

*ये उर्वरक विलयन दाबयुक्त हैं।

इन विलयनों का उपयोग मृदा में सीधे यंत्रों की सहायता से सतह के नीचे किया जाता है तथा खेत को सदैव नम रखा जाता है।

सिंचाई जल के साथ प्रयोग

नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश के विलयन उर्वरकों को सिंचाई जल के साथ नालियों में डाला जाता है जिससे पोषक तत्व सिंचाई जल के साथ संपूर्ण खेत में पहुंच जाते हैं। इस विधि से उर्वरक उपयोग की लागत की बचत होती है तथा उर्वरक समान रूप से संपूर्ण खेत में वितरित हो जाते हैं।

बीजों को उर्वरक घोल में भिगोना

बीजों को बोने से पूर्व निश्चित अवधि के लिए उर्वरकों के तनु विलयनों में डुबोकर रख देते हैं जिससे बीज उर्वरक विलयन सोख लेता है जो अंकुरण के बाद उसके उपयोग में आता है। इस विधि में कभी-कभी बीज पर हानिकारक प्रभाव पड़ जाता है और उसकी अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है।

पौधों में उर्वरक घोल के इंजेक्शन देना

इस विधि में उर्वरक के तनु विलयनों के इंजेक्शन पौधों तथा मृदा में लगाए जाते हैं। पौधों में प्राय: सूक्ष्म तत्वों के विलयनों के इंजेक्शन जाइलम में दिए जाते हैं जहां से ये विलयन जल के साथ पौधे के अग्र भाग में पहुंचकर पौधे के उपयोग में आते हैं। प्रमुख तत्व, जैसे – नाइट्रोजन, फॉस्फोरस आदि के विलयन मृदा में विशेष यंत्रों द्वारा पहुंचाए जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह विधि प्रमुख रूप से प्रयोग में लाई जाती है।

द्रव उर्वरकों का प्रयोग

संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिकांश फार्मों में निर्जल अमोनिया का प्रयोग बहुत बढ़ गया है क्योंकि इसमें नाइट्रोजन की प्रति इकाई लागत बहुत कम आती है। आशा है कि भारत में भी यह उर्वरक शीघ्र ही लोकप्रिय हो जाएगा। तरल रूप में इस्तेमाल किए जाने वाले

कुछ ऐसे अन्य उर्वरक हैं, जो कम दबाव में एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाए जा सकते हैं। कुछ विदेशों में इनका चलन बढ़ रहा है। इनके इस्तेमाल के लिए मिट्टी में उनके इंजेक्शन देने के अनेक प्रकार के यंत्र विकसित किए गए हैं। मिट्टी में तरल उर्वरक का इंजेक्शन देने वाले यंत्र पर आमतौर पर लोहे की एक भारी टंकी रहती है जिसमें 100 गैलन से 200 गैलन तक तरल सामग्री आ सकती है। उस टंकी में स्वचालित सेफ्टी वाल्व लगे रहते हैं। यंत्र के साथ ही एक मीटर लगा रहता है। यंत्र में लगे फाल विभिन्न आकार-प्रकार के होते हैं परंतु उनके खिंचाव के लिए कम ताकत की आवश्यकता होती है। फाल लिस्टर की तरह संकुचित आकार के होते हैं। फाल भूमि में 15 सेमी. से 25 सेमी. तक गहरे चलते हैं और उनके जरिए मिट्टी में छोड़ी जाने वाले गैस फाल की तली से मिट्टी में छूटती रहती है। मैसूर राज्य के हब्बल फार्म में निर्जल अमोनिया मिट्टी में छोड़ने के लिए बैलों से खींचा जाने वाला एक अच्छा यंत्र तैयार किया गया है। इसमें एक पहियादार छकड़े पर रखा हुआ गैस का एक सिलिंडर लगा रहता है। इस सिलिंडर में से गैस छूटकर कूंड़ में गिरती रहती है। यदि मिट्टी न ज्यादा सूखी और न ज्यादा नम यानी सामान्य अवस्था में होती है तो निर्जल अमोनिया की हानि बहुत कम होती है।

मिट्टी अच्छी तरह जुती हुई होनी चाहिए और उसमें काफी नमी होनी चाहिए। अमोनिया मिट्टी के कोलाइडी कणों पर क्षारक विनिमय (बेस एक्सचेंज) में तुरंत ही स्थिर हो जाता है।

उर्वरक प्रयोग की उचित विधि का चुनाव

उर्वरक प्रयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उर्वरक प्रयोग की विधि का उचित चुनाव किया जाना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

1. नाइट्रोजनी उर्वरक जल में शीघ्रता से विलेय होकर तेजी से मृदा

में फैल जाते हैं। यदि इनको मृदा सतह पर डाला जाए तो ये शीघ्र ही पौधों की जड़ों के समीप पहुंच जाते हैं। अत: इन उर्वरकों को बुआई के समय मृदा सतह पर छिटककर डाला जा सकता है।

2. चूंकि नाइट्रोजनधारी उर्वरक शीघ्रता से निक्षालित हो जाते हैं, अत: इनको दो-तीन बार में फसल की आयु व अवस्था के अनुसार दिया जा सकता है। इस प्रकार ये उर्वरक खड़ी फसल में छिटककर अथवा साइड ड्रेसिंग द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं।

3. फॉस्फोरस उर्वरक प्रयोग स्थल से आसानी से गति नहीं करते हैं। अत: इनको वहीं संस्थापित किया जाए जहां से पौधे की जड़ें इसे सुगमता से ग्रहण कर सकें।

4. फॉस्फोरस उर्वरकों का मृदा में शीघ्रता से स्थिरीकरण (अप्राप्य अवस्था में बदलना) हो जाता है। अत: इनको बीज अथवा पौधे की जड़ों के समीप रखा जाना चाहिए ताकि पौधे इसे तुरंत ग्रहण कर सकें।

5. उर्वरकों का स्थानिक प्रयोग अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक लाभदायक है।

6. शुष्क खेती में उर्वरक उपयोग सतह के नीचे प्रयोग किए जाने चाहिए।

7. क्षारीय मृदाओं में सतह पर नाइट्रोजनी उर्वरक डालने से अमोनिया का ह्रास होता है। अत: ऐसी मृदाओं में उर्वरकों का गहरा स्थापन लाभदायक होता है।

8. बारानी खेती, क्षारीय मृदा तथा अधिक घनत्व वाली फसलों में पर्णीय छिड़काव द्वारा शीघ्र पोषण संभव है। इससे उर्वरकों की उपयोग क्षमता में भी वृद्धि होती है।

9. पोटैशियम के उर्वरक मृदा में गतिशील नहीं होते हैं। अत: इनको भी बीज या पौधे की जड़ के समीप रखना चाहिए।

10. गहरे जल के धान में उर्वरक सतह के नीचे अपचयित संस्तर में रखना चाहिए ताकि पोषक तत्वों का ह्रास कम से कम हो।

उर्वरक प्रयोग के समय का चुनाव

उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि के लिए उर्वरक प्रयोग के समय का सही निर्धारण आवश्यक है। उर्वरक प्रयोग के सही समय का चुनाव करने के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए:

उर्वरकों में दो प्रकार के लक्षण होते हैं: चल पोषक लवण और अचल पोषक लवण। चल उर्वरक लवणों में नाइट्रेट, क्लोराइड और सल्फेट प्रमुख हैं। अचल पोषक लवणों में लोहा, मैंगनीज, मोलिब्डेनम आदि प्रमुख हैं।

चल पोषक तत्वों को हमेशा जरूरत के समय ही प्रयोग करना चाहिए जबकि अचल पोषक तत्वों का बुआई या रोपाई अथवा फसल की प्रारंभिक अवस्था के समय प्रयोग किया जाना चाहिए। उर्वरक प्रयोग में उचित समय के निर्धारण में निम्नलिखित बिंदु सहायक हैं:

1. नाइट्रोजनधारी उर्वरक दो-तीन बार में प्रयोग की जानी चाहिए। गेहूं, धान-जैसी फसलों में 1/2 : 1/4 : 1/4 अनुपात में मात्रा तीन बार में प्रयोग होनी चाहिए।
2. दीर्घकालीन फसलों में नाइट्रोजन 4-5 बार में दी जा सकती है।
3. नाइट्रोजन पौधे के संपूर्ण जीवनकाल में आवश्यक होता है। अत: इसकी पौधों को आपूर्ति निरंतर बनी रहनी चाहिए।
4. फॉस्फोरस की 2/3 मात्रा पौधों की प्रारंभिक अवस्था में आवश्यक होती है तथा 1/3 बाद की वृद्धि के लिए आवश्यक होती है। अत: फॉस्फोरस की संपूर्ण मात्रा बुआई अथवा रोपाई के समय दी जानी चाहिए।

5. पोटैशियम उर्वरक भी बुआई के समय एक साथ दिए जाने चाहिए।
6. हल्के कणाकार की मृदाओं में उर्वरक कई बार में थोड़ी मात्रा में प्रयोग करने चाहिए।
7. उर्वरक देने का समय फसल की अवस्था, मृदा की मूल उर्वरता, सिंचाई की व्यवस्था आदि कारकों पर निर्भर करता है।
8. खड़ी फसल में उर्वरक उस समय दिए जाएं जब पोषक तत्व की कमी के लक्षण पौधों पर दिखाई दें।

उर्वरकों के प्रयोग की विधि और समय निम्न कारकों पर निर्भर करता है :

1. उर्वरक की प्रकृति
2. मृदा का प्रकार
3. पौधों की प्रकृति तथा उनके द्वारा आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता में विभिन्नता

उर्वरक प्रयोग के उपयुक्त समय निर्धारण के सिद्धांत

नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के लिए

1. पौधों को नाइट्रोजन की आवश्यकता लगातार उनके वृद्धिकाल तक पड़ती है, अत: इसका अवशोषण पादप वृद्धि दर के अनुसार होता रहा है। प्रारंभ में सभी पौधों की गति धीमी, मध्य में तीव्र तथा अंत में पुन: धीमी होती है। अत: पौधों में नाइट्रोजन का अवशोषण भी प्रारंभ में कम, मध्य में तीव्र तथा पक जाने के समय पुन: धीमी गति से होता है।
2. नाइट्रोजनधारी उर्वरक जल में विलेय होते हैं तथा मृदा विलयन में सभी दिशाओं में तेजी के साथ गतिमान होते हैं। अत: निक्षालन द्वारा हानि होने की संभावना रहती है।

अत: एक ही समय बहुत अधिक मात्रा में नाइट्रोजनधारी उर्वरक का प्रयोग न कर, थोड़ा-थोड़ा करके संपूर्ण वृद्धिकाल तक प्रयोग करना उत्तम होता है।

फॉस्फेटधारी उर्वरकों के लिए

1. पौधों को फॉस्फोरस की आवश्यकता वृद्धि की आरंभिक अवस्थाओं में तथा जड़ों के विकास के लिए होती है। इन अवस्थाओं में पौधे फॉस्फोरस की संपूर्ण आवश्यकता का 2/3 भाग प्रयुक्त कर लेते हैं।
2. सभी फॉस्फेटधारी उर्वरकों से फॉस्फोरस धीमी गति से निर्मुक्त होता है। फॉस्फेटधारी उर्वरकों में महत्वपूर्ण उर्वरक सुपर फॉस्फेट है, जिसमें जल विलेय फॉस्फेट होता है। सुपर फॉस्फेट के मृदा में डाले जाने के बाद उसका विलेय फॉस्फेट तुरंत हल्के अविलेय रूप में या डाइकैल्शियम फॉस्फेट में या साइट्रेट विलेय फॉस्फेट में परिवर्तित हो जाता है और इस रूप में पौधों को फॉस्फोरस धीमी गति से प्राप्त होता है। अत: फॉस्फेटधारी उर्वरकों की संपूर्ण मात्रा बुआई या रोपाई के पूर्व भूमि में एक ही बार में डालना अच्छा होता है।

पोटाशधारी उर्वरकों के लिए

पोटाश अंशत: नाइट्रोजन तथा अंशत: फॉस्फोरस की तरह व्यवहार करता है। पौधों द्वारा अवशोषण की दर की दृष्टि से, यह नाइट्रोजन की ही भांति पूरे वृद्धिकाल तक आवश्यक होता है, परंतु फॉस्फोरस की भांति पूरे वृद्धि काल तक आवश्यक होता है, परंतु फॉस्फोरस की भांति यह धीरे-धीरे उपलब्ध होता है। अत: पोटाशधारी उर्वरकों की संपूर्ण मात्रा को बुआई के समय भूमि में प्रयोग करना उत्तम होता है। चूंकि हल्की रेतीली भूमि में भारी भूमियों की तुलना में निक्षालन द्वारा पोटाश की हानि अधिक होती है, अत: हल्की (रेतीली) भूमियों में इसको थोड़ा-थोड़ा करके कई बार में प्रयोग किया जा सकता है।

19—1/CSTT/ND/05

खाद देने की मात्रा

खेत में खाद की कितनी मात्रा डाली जाए, ये निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है:

1. बोई जाने वाली फसल की किस्म
2. भूमि का उर्वरता स्तर
3. भूमि की किस्म
4. खाद की किस्म
5. खाद का मूल्य
6. फसल-चक्र
7. कृषि की गहनता
8. खादों के देने की विधि
9. बुआई का समय
10. भू-क्षरण
11. फसल की अवधि

खाद देने का समय

खेत में खाद डालने का समय मुख्यत: निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है:

1. फसल की जाति तथा बोने का समय
2. खाद में उपस्थित पोषक तत्व तथा उसकी उपलब्धता
3. भूमि की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशा
4. भूमि का प्रकार
5. जलवायु

6. भूमि में नमी की दशा
7. खरपतवार का प्रकोप
8. सिंचाई के साधन
9. मृदा क्षरण
10. किसान की आर्थिक स्थिति

उपर्युक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए खाद/उर्वरक देने के निम्नलिखित समय हो सकते हैं:

1. बुआई से पहले खाद देना
2. बुआई के समय खाद देना
3. बुआई के पश्चात् खड़ी फसल में खाद देना
4. विभाजित मात्रा में विभिन्न समय पर खाद का प्रयोग

अध्याय-10

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

गत वर्षों में उर्वरक उपयोग में अच्छी वृद्धि हुई है, लेकिन उर्वरक उपयोग की तुलना में फसलों द्वारा भूमि से पोषक तत्वों के अधिक अवशोषण के कारण भूमि की घटती उर्वरा शक्ति को रोका नहीं जा सका है। अत: भूमि की उर्वरता को बनाए रखने के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन पर विशेष जोर दिया जाना बहुत ही आवश्यक है। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन से तात्पर्य पादप पोषक तत्वों के विभिन्न स्रोतों के समुचित व समन्वित उपयोग से है। समन्वित पौध पोषक तत्व प्रबंध के अंतर्गत उर्वरकों के साथ-साथ पोषक तत्वों के दूसरे स्रोत, जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, फसल अवशेष और जैव उर्वरकों आदि के प्रयोग पर विशेष बल दिया जाता है।

आमतौर पर किसानों को पोषक तत्वों के विभिन्न स्रोतों की आवश्यकता व महत्व के बारे में साधारण जानकारी तो है लेकिन कुछ ऐसी व्यावहारिक समस्याएं हैं जिनके कारण इनका उपयोग अपेक्षित मात्रा में नहीं हो पा रहा है। अधिकतर छोटे व मंझले किसानों की कमजोर आर्थिक स्थिति होने के कारण वे उर्वरकों की सिफारिश की गई मात्रा में प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं। गोबर का ईंधन के रूप में प्रयोग होने के कारण देशी खाद व कंपोस्ट आदि के लिए इसकी उपलब्धता काफी कम है। भूसा व फसल अवशेषों का प्रयोग पशु चारे के रूप में होने के कारण मृदा में इनके प्रयोग की संभावना काफी कम है। जैव-उर्वरकों से स्पष्ट व समान लाभ न मिलना और किसानों को जैव-उर्वरकों के प्रयोग के बारे में जानकारी न होना इनके प्रयोग में बाधक सिद्ध हो रहा है।

ऐसा देखा गया है कि लगातार एक ही फसल-चक्र अपनाने से मृदा की उर्वराशक्ति एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: भविष्य में फसल-चक्र में कम अवधि की दलहनी फसलों को अपनाना चाहिए। फसल अवशेषों को खेत में जला देने की अपेक्षा इनकी जुताई करके सड़ा-गला देना अधिक लाभकर रहता है। अच्छी गुणवत्ता वाले कंपोस्ट खाद का निर्माण करके कम खाद सामग्री से पोषक तत्वों की पूर्ति यथोचित मात्रा में की जा सकती है। उर्वरकों का सही समय पर, सही विधि से व संतुलित मात्रा में उपयोग किया जाना चाहिए। मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है।

आजकल बाजार में कुछ ऐसे जैव-उर्वरक (बायोफर्टिलाइजर) उपलब्ध हैं जो वायुमंडल की नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके इसे फसलों को उपलब्ध कराते हैं। दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर और धान में नील-हरित शैवाल एजोला का प्रयोग करना चाहिए। कुछ ऐसे लाभकारी सूक्ष्म जीव भी पहचाने गए हैं जो मृदा में मौजूद अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील बना देते हैं। इन्हें फॉस्फोरस घोलक बैक्टीरिया (पी.एस.बी.) के नाम से जाना जाता है। फॉस्फोरस उर्वरकों की बढ़ती कीमतों को देखते हुए उपयोग की आवश्यकता और भी बढ़ गई है।

यह निर्विवाद सत्य है कि मृदा की गिरती हुई उर्वराशक्ति को समन्वित पोषक तत्व प्रबंध के बिना नहीं रोका जा सकता है क्योंकि पोषक तत्वों का कोई भी स्रोत (उर्वरक, देशी खाद, कंपोस्ट व जैव उर्वरक) इस स्थिति में नहीं हैं कि वह अकेला पोषक तत्वों की पूर्ति कर सके। पोषक तत्व प्रबंध की सफलता पोषक तत्वों के विभिन्न स्रोतों की उपलब्धता के साथ-साथ इनके सक्षम उपयोग बढ़ाने पर निर्भर करेगी।

समन्वित पौध पोषण प्रणाली टिकाऊ खेती की कुंजी है क्योंकि इसका उद्देश्य रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को कम करना तथा पौधों

के पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति अन्य दूसरे स्रोतों से करने से है।

समन्वित पौध पोषण प्रणाली क्या है?

समन्वित पौध पोषण प्रणाली से अभिप्राय है कि मृदा उर्वरता को बढ़ाने अथवा बनाए रखने के लिए पादप पोषक तत्वों के सभी उपलब्ध स्रोतों से मृदा में पोषक तत्वों का इस प्रकार से सामंजस्य रखा जाए जिससे मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ताओं पर हानिकारक प्रभाव डाले बगैर लगातार उच्च आर्थिक उत्पादन लिया जा सके।

आजकल साहित्य में तीन परिभाषाओं (1) समन्वित पौध पोषण; (2) समन्वित पोषक तत्व आपूर्ति प्रणाली (3) समन्वित या समेकित पोषक तत्व प्रबंधन को एक ही अर्थ (भाव) दर्शाने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। ऊपर से देखने में तो यह तीनों एक-जैसी दिखती हैं लेकिन वास्तव में यह सब एक नहीं हैं तथा अलग-अलग अर्थ रखती हैं।

समन्वित पोषक तत्व आपूर्ति प्रणाली केवल समन्वित पौध पोषण प्रणाली के उद्देश्यों की प्राप्ति का एक साधन है। इसमें इस प्रकार व्यूह रचना की जाती है जिससे उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन का आशय फसलोत्पादन में स्थानीय स्तर पर पोषक तत्वों के विभिन्न स्रोतों के भली-भांति प्रबंधन से है। इसका उद्देश्य पोषक तत्वों के विभिन्न स्रोतों, जैसे – रासायनिक उर्वरक, कार्बनिक खादें, फसल अवशेष तथा जैव-उर्वरकों के इस तरह से उपयोग से है जिससे मृदा स्वास्थ्य तथा पर्यावरण को बगैर हानि पहुंचाए लगातार कृषि उत्पादन किया जा सके। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन इस प्रकार से होना चाहिए कि किसी भी फसल-चक्र प्रणाली में फसल की आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों की संतुलित एवं इष्टतम मात्रा में आपूर्ति का सामंजस्य हो।

समन्वित पौध पोषण प्रणाली के घटक

1. रासायनिक उर्वरक
2. कार्बनिक खादें, जैसे – गोबर की खाद, कंपोस्ट खाद, हरी खादें, फसल अवशेष तथा दलहनी फसलें
3. जैव-उर्वरक

उद्देश्य

समन्वित पौध पोषण प्रणाली के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि करना
2. फसलों की उत्पादकता को बढ़ाना
3. मृदा उर्वरता बढ़ाना एवं उसे बरकरार रखना
4. किसानों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा में बदलाव लाना तथा
5. पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाना

समन्वित पौध पोषण कैसे करें?

1. रासायनिक उर्वरकों के साथ कार्बनिक खादों का समावेश करके।
2. रासायनिक उर्वरकों के साथ फसल अवशेषों का समावेश करके।
3. हरी खाद का प्रयोग।
4. जैव-उर्वरकों का प्रयोग।
5. फसल-चक्र में दलहनी फसलों का प्रयोग एवं भूमि सुधारकों का प्रयोग करके।
6. पोषक तत्व और पानी का उचित प्रयोग एवं प्रबंध।

रासायनिक उर्वरकों के साथ कार्बनिक खादों का समावेश

सघन खेती में उर्वरक समन्वित पौध पोषण आपूर्ति प्रणाली का

एक महत्वपूर्ण घटक है। भारत में ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व में कृषि उत्पादन में 50 प्रतिशत बढ़ोतरी केवल रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से हुई है। लेकिन फसलों द्वारा उर्वरकों की उपयोग क्षमता लगभग 50 प्रतिशत या इससे भी कम है तथा शेष मात्रा विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा नष्ट हो जाती हैं। आजकल उच्च विश्लेषण उर्वरकों, जैसे– यूरिया, डाइ-अमोनियम फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रचलन अधिक बढ़ गया है जो केवल नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के अलावा अन्य पोषक तत्व प्रदान नहीं करते हैं, जबकि पारंपरिक निम्न विश्लेषण उर्वरकों के प्रयोग से फसलों को गौण तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व प्राप्त होते रहते हैं। उच्च विश्लेषण उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मिट्टी में गौण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी आ रही है। भारत में 47 प्रतिशत मृदाओं में जस्ता, 11.5% में लोहा, 4.8% में तांबा तथा 4% मृदाओं में मैंगनीज की कमी है जिनका प्रभाव फसलों की उपज पर भी पड़ रहा है। दलहन, तिलहन तथा अधिक उपज देने वाली फसलों में गंधक का प्रयोग जरूरी हो गया है। भारतीय मृदाओं में कार्बनिक कार्बन की सर्वत्र कमी है। कार्बनिक खादें, जैसे - गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट मृदा उर्वरता बनाए रखने, उत्पादन को स्थिर रखने एवं पोषक तत्वों का सही परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं। कार्बनिक खादें वर्तमान फसल को तो लाभ पहुंचाती ही है, साथ ही साथ दूसरी फसल को भी अवशेषी प्रभाव द्वारा लाभ पहुंचाती हैं। एक टन गोबर की खाद से लगभग 12 किग्रा. पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश) प्राप्त होते हैं तथा 3.6 किग्रा. उर्वरक तत्वों के बराबर अनाज पैदा करती हैं। खरीफ की फसलों में गोबर की खाद के प्रयोग से उत्पादकता में बगैर हानि पहुंचाए उर्वरक प्रयोग में कटौती की जा सकती है। रासायनिक उर्वरकों की मांग को कम करने के लिए उपलब्ध अवशिष्ट पदार्थों को कार्बनिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षण के परिणामों से पता चलता है कि लगातार धान-गेहूं फसल-चक्र अपनाने से मृदा के कार्बनिक कार्बन स्तर

में प्रारंभिक मात्रा से भी कमी आई है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की इष्टतम मात्रा के प्रयोग से कार्बनिक कार्बन स्तर में 3.5 प्रतिशत तक कमी आई जो कि उर्वरकों के साथ गोबर की खाद प्रयोग करने से 25% रह गई। लगातार 18 वर्षों तक केवल रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उपज में बहुत कमी आई जबकि रासायनिक उर्वरकों के साथ गोबर की खाद प्रयोग करने से उत्पादकता 25-28 वर्षों तक या तो बढ़ी या फिर स्थिर रही। अत: समन्वित पौध पोषण में केवल रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग की अपेक्षा कार्बनिक खादों के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अधिक लाभकारी है।

रासायनिक उर्वरकों के साथ फसल अवशेषों का समावेश

भारत में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पहले केवल कार्बनिक पदार्थ ही पौधों के पोषक तत्वों के आपूर्ति हेतु बाह्य स्रोत थे। पिछले तीन दशकों में अधिक खाद्यान्न उत्पादन हेतु रासायनिक उर्वरकों के अधिकाधिक प्रयोग से पादप अवशेषों द्वारा मृदा उर्वरता बनाए रखने के महत्व को नकार दिया गया। लेकिन वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप टिकाऊ कृषि उत्पादन प्राप्त करना, रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती हुई कीमतों तथा पर्यावरण पर होने वाले संभावित खतरे को ध्यान में रखते हुए हमें पोषक तत्वों के अन्य दूसरे स्रोतों के बारे में सोचने को मजबूर होना पड़ा। भारत में फसल अवशेषों और फार्म औद्योगिक अवशिष्टों, जैसे– धान और गेहूं का भूसा, धान का छिलका, गन्ने के अवशेष, आलू के डंठल, अखाद्य केक, चाय, तंबाकू तथा कपास अवशिष्ट, प्रेसमड, वन का कूड़ा-कचरा तथा जलकुंभी आदि के कृषि में प्रयोग की बहुत संभावनाएं हैं।

कम नाइट्रोजन की मात्रा वाले फसल अवशेष जिनका कार्बन तथा नाइट्रोजन अनुपात विस्तृत होता है जैसे कि अनाजों तथा अन्य गैर-दलहनी फसल अवशेषों को जमीन में मिलाने पर थोड़े समय के लिए घुलनशील नाइट्रोजन का स्थिरीकरण हो जाता है जिससे पौधों को नाइट्रोजन की उपलब्धता कम हो जाती है। यदि यही फसल अवशेष

फसल की बुआई से तीन-चार सप्ताह पूर्व जमीन में मिला दिए जाएं तो नाइट्रोजन स्थिरीकरण की संभावना भी कम हो जाती है। अधिकतम पादप सुलभ नाइट्रोजन 25-30 दिन तक स्थिरीकृत होती है। यदि इस समय को छोड़कर फसल की बुआई की जाए तो इस फसल के अलावा अगली फसल को भी फायदा होगा, परंतु सघन कृषि क्षेत्रों के बहुफसलीय फसल-चक्र में, फसल अवशेषों को जमीन में मिलाने तथा सड़ाने के लिए दो फसलों के बीच शायद ही कोई समय मिल पाता हो। ट्रॉपिकल तथा सब-ट्रॉपिकल दशा में द्विफसलीय फसल-चक्र में दो फसलों की बुआई के बीच एक-दो महीने का खाली समय मिल जाता है। यह समय उपलब्ध फसल अवशेषों को जमीन में मिलाने के लिए उपयुक्त होता है।

फसल अवशेषों को बुआई के समय प्रयोग करने से अल्पकालीन कोई लाभ नहीं होता। यद्यपि बिछावन के रूप में जमीन की सतह पर डालने से मृदा नमी में बचत तथा तापमान नियंत्रित किया जा सकता है। फसल अवशेषों को रबी की अपेक्षा खरीफ में मिलाना अधिक अच्छा होता है क्योंकि खरीफ में तापमान अच्छा होने की वजह से सड़न अच्छी होती है। देश के बहुत से हिस्सों में पादप अवशेषों को जला दिया जाता है। इसके अलावा किसानों द्वारा फसल अवशेषों को अन्य दूसरे प्रयोगों, जैसे - पशुओं का चारा, जलाने एवं घर आदि बनाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। जमीन में मिलाने एवं कंपोस्ट बनाकर प्रयोग करने की तकनीक अभी किसानों द्वारा प्रचलन में नहीं है। किसानों को फसल अवशेषों के महत्व को समझाने के लिए उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

रासायनिक उर्वरकों के साथ जैव-उर्वरकों का समावेश

जैव-उर्वरक एक या अधिक जीवाणुओं से मिश्रित (संरचना) होते हैं। जैव-उर्वरक वायुमंडल से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं और अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील बनाते हैं अथवा जैव-पदार्थों को सड़ा-गलाकर उसमें प्राप्त तत्वों को पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं।

इस समय हमारे देश में 4,000 टन ही जैव-उर्वरक उपलब्ध हैं जिसमें राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम तथा नील हरित शैवाल आदि हैं। राइज़ोबियम, एजोटोबैक्टर तथा ऐजोस्पाइरिलम लगभग 20-40 किग्रा. नाइट्रोजन प्रदान करते हैं। राइजोबियम दलहनी फसलों की 70-80% तक नाइट्रोजन की जरूरत पूरी कर देता है और 10-15% तक उसकी उत्पादकता बढ़ाता है। एजोटोबैक्टर 5 किग्रा./हे. की दर से उपयोग करने पर 20-30 किग्रा. नाइट्रोजन मिलती है तथा 10-20% तक उपज भी बढ़ती है। 10 टन एजोला मिलाने से लगभग 3-4 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति टन की दर से उपलब्ध होती है। वी.ए.एम. (वैम) और जैव-उर्वरकों से मिलने वाले लाभ भी मिट्टी को उपलब्ध होते हैं। फफूंदी फॉस्फोरस को घुलनशील बनाती है तथा धान की फसल की उत्पादकता बढ़ाती है। इसलिए पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए जैव उर्वरकों का उत्पादन बढ़ाना होगा। इन उर्वरकों की उपयोगिता बढ़ाने के लिए अभी निम्नलिखित विषयों में अधिक अनुसंधान करना होगा :

1. चूंकि जैव-उर्वरकों की जीवनावधि बहुत कम होती है, अत: जीवनावधि बढ़ाई जाए
2. स्थान विशेष के लिए उपयुक्त प्रभेदों का चयन किया जाए
3. स्थानीय प्रभेदों से स्पर्धा करने में अधिक सक्षम प्रभेदों को खोजा जाए
4. उपयुक्त एवं सस्ते संवाहकों का विकास किया जाए
5. प्रयोग करने की विधियों का विकास जिससे कार्यक्षमता बढ़ सके

रासायनिक उर्वरकों के साथ हरी खादों का समावेश

हरी खाद के बदले अधिक आय देने वाली किसी अन्य फसल को उगाने की चाहत से हरी खाद का प्रचलन बहुत कम हो गया है। साथ ही अच्छे किस्म के बीजों की अनुपलब्धता, सिंचाई जल का अभाव, श्रमिकों की कमी तथा कम समय इसके प्रचलन में मुख्य बाधाएं हैं। हरी खाद के प्रयोग से 40-60 किग्रा./हे. नाइट्रोजन की

बचत की जा सकती है। आजकल हरी खाद की ओर अब फिर ध्यान आकृष्ट हुआ है जिसके फलस्वरूप भारत में लगभग 67 लाख हेक्टेयर जमीन पर हरी खाद उगाई जा रही है। सनई एवं ढैंचा भारत की सर्वाधिक प्रचलित हरी खाद हैं तथा सेम, लोबिया और बरसीम आदि को भी कभी-कभी हरी खाद के रूप में प्रयोग करते हैं। हरी खाद मृदा की भौतिक दशा में सुधार के साथ-साथ पोषक तत्वों को भी प्रदान करती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों, जैसे– असम, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु और पूर्वी प्रदेश तथा सिंचित गन्ना, धान तथा आलू वाले क्षेत्रों में हरी खाद के प्रचलन के लिए विशेष बढ़ावा दिया जाए।

फसल-चक्र में दलहनी फसलों का समावेश

दलहनी फसल आधारित फसल-चक्र को मृदा उर्वरता पोषक फसल चक्र कहा जाता है। ऐसा फसल-चक्र मिट्टी की उर्वराशक्ति पर अनुकूल प्रभाव डालता है। इसलिए दो धान्य फसलों के बीच दलहनी फसल अवश्य लगाएं। दलहनी फसलों का प्रयोग हरी खाद के रूप में भी किया जा सकता है। दलहनी फसलें वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती हैं तथा अपनी आवश्यकता से बची हुई नाइट्रोजन को दूसरी फसलों को प्रदान करती हैं। विभिन्न दलहनी फसलों की नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। सामान्यत: दलहनी फसलें 30-50 किग्रा/हे. नाइट्रोजन अगली फसल को प्रदान करती हैं। ऐसी जमीनें जिनमें नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है उनमें वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण अधिक होता है। दलहनी फसल में उचित मात्रा में पोषक तत्व तथा राइजोबियम के निवेशन से नाइट्रोजन स्थिरीकरण को और भी बढ़ाया जा सकता है।

भूमि सुधारकों का प्रयोग

अम्लीय भूमियों के लिए चूना एवं क्षारीय भूमियों के लिए जिप्सम आवश्यक भूमि सुधारक है। जमीन की आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग अति आवश्यक है। किसानों को उपलब्ध कराने के लिए परिवहन

सुविधा में सुधार किया जाए। मिट्टी की त्वरित जांच के लिए भूमि परीक्षण प्रयोगशालाओं को आधुनिक बनाया जाए।

समन्वित पौध पोषण प्रणाली और संतुलित उर्वरक प्रयोग

संतुलित उर्वरक से तात्पर्य आवश्यक पोषक तत्वों की उस मात्रा के प्रयोग से है जिससे पौधे न्यूनता, विषालुता और परस्पर स्पर्धा से ग्रस्त न हों और अधिकतम उत्पादन दे सकें। फसलोत्पादन के लिए संतुलित उर्वरक प्रयोग, रासायनिक उर्वरकों तथा कार्बनिक खादों के द्वारा पोषक तत्वों की हानि कम हो जिसके फलस्वरूप पर्यावरण को भी कम नुकसान न हो एवं मिट्टी की पूरी उत्पादन क्षमता का दोहन किया जा सके। संतुलित उर्वरक प्रयोग किसी भी फसल-चक्र प्रणाली के समेकित पौध पोषण के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए। सिद्धांत रूप में संतुलित उर्वरक प्रयोग समन्वित पौध पोषण प्रणाली के लगभग समान ही है।

समन्वित पौध पोषण प्रणाली तकनीकी को अपनाने में बाधाएं

1. गोबर की खाद की अनुपलब्धता
2. जैव-उर्वरकों की अनुपलब्धता
3. फसल-चक्र में दलहनी फसलों का अभाव
4. पानी की कमी, श्रमिक समस्याएं, अच्छी किस्मों के बीजों का अभाव एवं फसल समय का नुकसान आदि के कारण हरी खादों का उगाना संभव नहीं
5. फसल अवशेषों के पुन: चक्रण का अभाव
6. समस्याग्रस्त मृदाएं
7. अधिक कीमत की वजह से मृदा सुधारकों के प्रयोग में कमी
8. मृदा परीक्षण सुविधा का अभाव

9. रासायनिक उर्वरकों की बढ़ी हुई कीमतें
10. उर्वरकों के उपयुक्त समय एवं उचित विधि द्वारा प्रयोग के ज्ञान का अभाव
11. अधिक उपज देने वाली फसलों के बीजों का अभाव
12. समय पर साख सुविधा का अभाव
13. किसानों में ज्ञान की कमी एवं सलाहकारी सेवाओं में त्रुटियां

किसानों द्वारा समन्वित पौध प्रणाली को अपनाने के लिए सुझाव

1. किसानों को विभिन्न संचार माध्यमों तथा उनके खेतों पर प्रदर्शन करके समन्वित पौध पोषण प्रणाली के महत्व के बारे में प्रशिक्षित किया जाए।
2. जितना संभव हो सके फसल अवशेषों को खेतों में मिलाने की किसानों को सलाह दी जाए एवं कंपोस्ट बनाने की तकनीक के बारे में प्रशिक्षित किया जाए
3. समय-समय पर किसानों को भूमि की दशा, उर्वरता तथा समग्र उत्पादकता के आकलन के लिए सलाह दी जाए
4. किसानों को मिट्टी एवं इसके स्वभाव, मृदा स्वास्थ्य तथा मनुष्यों के लिए इसकी उपयोगिता तथा इसको सुरक्षित बनाए रखने के लिए शिक्षित किया जाए
5. किसानों द्वारा भिन्न-भिन्न कृषि प्रणाली, उपयुक्त फसल-चक्र तथा मिश्रित खेती को अपनाने के लिए सुझाव दिया जाए
6. किसानों को पानी तथा पोषक तत्वों के उचित प्रबंधन हेतु समय-समय पर प्रशिक्षित किया जाए
7. मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों के प्रयोग की सलाह दी जाए और समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार जैव-उर्वरक, दलहनी तथा हरी खादों के उच्च गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराए जाएं

अध्याय-11

उपसंहार

बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए इसके उत्पादन को बढ़ाना किसी भी देश की प्राथमिक जिम्मेदारी है। ऐसी स्थिति में जहां खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिन-प्रतिदिन, शहरीकरण की वजह से, घटता जा रहा है, सिर्फ सीमित खेती योग्य भूमि की उत्पादकता को बढ़ाकर ही खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। हालांकि यह कोई उचित एवं टिकाऊ उपाय नहीं है क्योंकि उत्पादकता बढ़ाने की भी एक सीमा है अन्यथा ज्यादा पैदावार लेने के चक्कर में जमीन की उर्वरता शीघ्र ही नष्ट हो सकती है जिसकी भरपाई करना बहुत ही मुश्किल हो जाएगा। अतीत में हमारे खेतों की पैदावार भले ही कम रही हो परंतु उसकी उर्वरता काफी दिनों तक बरकरार थी और उसी का नतीजा है कि हजारों वर्षों तक खेती करने के बावजूद उसकी उर्वरता बनी रही। पिछले 25-30 वर्षों में अपनी भूमि पर सघन खेती करके अधिक खाद्यान्न का उत्पादन किया है जिससे जमीन की उर्वरता में भारी कमी दिखाई देने लगी है, क्योंकि जितना पोषक तत्व जमीन से फसलों के जरिए निकालते हैं उतनी मात्रा में पुन: जमीन में नहीं लौटा पाते, नतीजन जमीन में पोषक तत्वों विशेषकर सूक्ष्म पोषक तत्वों, जैसे जिंक, तांबा, लोहा इत्यादि की भारी कमी होने लगी है जिसका प्रतिकूल असर फसलों के उत्पादन पर पड़ रहा है। खेतों में सूक्ष्म तत्वों की कमी का मुख्य कारण है शहरीकरण तथा पौधों, बैलों के स्थान पर मशीनीकरण। फसलों का उत्पादन गांव की जिन जमीनों से किया जाता है उसका बहुत-सा हिस्सा चारे तथा खाद्यान्न के रूपों में शहर में बढ़ती आबादी की आपूर्ति के लिए किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप जो पोषक तत्व उनके सड़ने-गलने के बाद देशी खाद तथा मलमूत्र के रूप में जमीन में जानी चाहिए वहां न पहुंचकर बड़े-बड़े

शहरों के सीवरों के द्वारा नदी या समुद्र में चला जाता है जिससे खेती योग्य भूमि के पोषक तत्वों के पुन: चक्रण द्वारा उसी में न जाने के कारण दिन-प्रतिदिन भूमि की उर्वरा-शक्ति क्षीण होती जा रही है और उनकी उत्पादन क्षमता में ह्रास हो रहा है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि फॉस्फेटीय तथा पोटैशियमयुक्त उर्वरकों का दाम ज्यादा होने के कारण किसान ज्यादातर उर्वरकों के नाम पर यूरिया का प्रयोग करने लगा है। परिणामस्वरूप भूमि में उर्वरकों का प्रयोग होने के बावजूद इसका सदुपयोग नहीं हो पा रहा है क्योंकि किसी भी पोषक तत्व की उपयोग क्षमता उसके साथ-साथ अन्य तत्वों की उपलब्धता पर भी निर्भर करती है और इस तरह फॉस्फोरस तथा पोटाश या अन्य तत्वों की कमी को सिर्फ नाइट्रोजन देकर पूरा नहीं किया जा सकता है। जब तक उर्वरक संतुलित मात्रा में न दिए जाएं, उन सभी की उपयोग क्षमता कम हो जाती है और परिणामस्वरूप अधिक मात्रा में असंतुलित उर्वरकों के प्रयोग के बावजूद वांछित परिणाम नहीं मिलता है। यही नहीं, असंतुलित उर्वरकों के प्रयोग से जमीन तथा भूमिगत जल के प्रदूषित होने का भी खतरा बढ़ जाता है।

आज से 25-30 वर्ष पहले यानी हरित-क्रांति के पहले खेती का तरीका आज से भिन्न था। खेतों की उर्वरता काफी अच्छी थी क्योंकि फसल-चक्र तथा देशी एवं हरी खादों का भरपूर प्रयोग होता था। इसलिए हरित-क्रांति के शुरुआती दौर में जब अधिक पैदावार लेने के लिए बौनी प्रजातियों में जो भी उर्वरक दिया जाता था उसका परिणाम बहुत अच्छा मिलता था क्योंकि मिट्टी में प्रमुख पोषक तत्वों, जैसे – नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, गंधक, कैल्शियम, मैग्नीशियम के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा भरपूर थी। परंतु अधिक उत्पादन लेने के चक्कर में किसानों ने बीच में हरी तथा कम्पोस्ट खादों का प्रयोग करना लगभग बंद कर दिया था। इसका एक मुख्य कारण बैलों की जगह ट्रैक्टरों का प्रयोग है, जिससे गोबर की खाद का अभाव हो गया तथा वर्ष में एक से ज्यादा फसल लेने और समय के अभाव

में हरी खादों का प्रयोग सीमित हो गया और किसान मुख्यतया रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने लगा। इसके परिणामस्वरूप जमीन से भारी मात्रा में प्रमुख तत्वों के साथ-साथ सूक्ष्म तत्वों का दोहन होने लगा और अंततः बहुत से मुख्य तथा सूक्ष्म तत्वों की जमीन में कमी होने लगी। इसके फलस्वरूप फसलों की उत्पादकता भी कम होने लगी और किसान उन सूक्ष्म तत्वों तथा अन्य प्रमुख तत्वों की कमी से पैदावार में होने वाली कमी को मुख्यतया यूरिया से पूरा करने की कोशिश करते रहे जिससे अधिक लागत के बावजूद पैदावार नहीं बढ़ी। एक निश्चित उत्पादकता लेने के लिए किसान आज से 20 वर्ष पहले जितने उर्वरक का प्रयोग करता था उतनी ही पैदावार लेने के लिए अब उसे पहले की अपेक्षा डेढ़ से दो गुना उर्वरक का प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि अन्य पोषक तत्वों के अभाव में डाले गए अधिक नाइट्रोजन का समुचित उपयोग नहीं होता है और प्रति इकाई मात्रा में डाले गए उर्वरक से फसल उत्पादन कम हो रहा है। अब जब पूरे देश में देशी खादों के प्रयोग न होने या सीमित प्रयोग तथा रासायनिक उर्वरकों के भारी मात्रा में प्रयोग करने से जमीन की उर्वरता क्षीण होने लगी तब फिर से पूरे विश्व में कार्बनिक खेती यानी देशी खादों का प्रयोग करके उत्पादकता बढ़ाने की बात कही जा रही है क्योंकि बिना इसके टिकाऊ खेती संभव नहीं है। अतः आज के दौर में जहां रासायनिक उर्वरकों की बेतहाशा कीमत बढ़ने से उनकी उपलब्धता एक समस्या बनती जा रही है। उसका निदान सिर्फ उर्वरकों की संतुलित मात्रा तथा उचित समय पर प्रयोग करके उनकी उपयोग क्षमता को बढ़ाकर कम मात्रा में उर्वरकों के प्रयोग से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। उर्वरकों के कुल उत्पादन व उपयोग की दृष्टि से हमारा देश विश्व में तीसरे नंबर पर है, लेकिन प्रति हेक्टेयर उर्वरक उपयोग मात्र 97 किग्रा. है, जो कि फसलों की आवश्यकता से काफी कम है। हमारे पड़ोसी देश, जैसे–चीन, पाकिस्तान, बांग्लादेश व श्रीलंका में भी प्रति हेक्टेयर उर्वरक उपयोग इससे कहीं अधिक है। चीन में तो बड़े स्तर पर कार्बनिक खादों के उपयोग के बावजूद प्रति हेक्टेयर उर्वरक उपयोग 262 किग्रा. है। इसी कारण चीन की खाद्यान्न उत्पादकता

4750 किग्रा. प्रति हेक्टेयर है जबकि भारत में यह मात्र 1887 किग्रा. प्रति हेक्टेयर है जो कि निःसंदेह उर्वरक के कम व असंतुलित उपयोग के कारण हैं।

देश की आबादी एक अरब के आंकड़े को पार कर चुकी है। इस बढ़ती आबादी की गरीबी और भूख को मिटाने के लिए खाद्यान्न उत्पादन में निरंतर वृद्धि आवश्यक है। कृषि के अंतर्गत क्षेत्रफल में वृद्धि की संभावनाएं नगण्य है। अतः फसलों की उत्पादकता में वृद्धि करके ही खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाया जा सकता है जिसके लिए उर्वरक उपयोग में वृद्धि नितांत आवश्यक है।

फसलों द्वारा भूमि से पोषक तत्वों के अधिक अवशोषण के कारण उर्वरक उपयोग में वृद्धि के बावजूद भी मृदा से पोषक तत्वों का ह्रास लगातार बढ़ रहा है। उर्वरकों द्वारा इन पोषक तत्वों की उतनी आपूर्ति न होने के कारण भूमि की उर्वरता में प्रतिवर्ष गिरावट आ रही है। उदाहरण के लिए गत वर्ष मृदा के लगभग 275 लाख टन पोषक तत्व हैं। (नाइट्रोजन-फॉस्फोरस-पोटाश) के अवशोषण का अनुमान है जबकि उर्वरकों द्वारा भूमि में लगभग 180 लाख टन पोषक तत्वों की आपूर्ति हुई। इस प्रकार प्रतिवर्ष भूमि में लगभग 95 लाख टन पोषक तत्वों का ह्रास हो रहा है।

प्रमुख पोषक तत्वों के साथ-साथ गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का अवशोषण भी मृदा में निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। उदाहरणतया गत वर्ष भूमि से लगभग 15 लाख टन गंधक (सल्फर) का अवशोषण हुआ जबकि उर्वरक द्वारा केवल 6 लाख टन की आपूर्ति हुई जिससे मृदा से लगभग 9 लाख टन सल्फर का ह्रास हुआ। वर्तमान कृषि उत्पादन पर भूमि से प्रतिवर्ष पन्द्रह हजार टन जस्ता (जिंक) एवं डेढ़ लाख टन लोहा (आयरन) का अवशोषण भी हो रहा है। जबकि उर्वरकों द्वारा इन पोषक तत्वों की भूमि में आपूर्ति बहुत ही कम है।

पौध पोषक तत्वों के मृदा से ह्रास के कारण मृदा उर्वरता क्षीण होती जा रही है। यदि पोषक तत्वों के उपयोग में पर्याप्त वृद्धि के

द्वारा इस ह्रास को न रोका गया तो निकट भविष्य में फसलों की उत्पादकता में ठहराव या गिरावट आ सकती है जिससे देश की खाद्य सुरक्षा भी खतरे में पड़ सकती है। इस समय कोई भी अकेला स्रोत फसलों की पोषक तत्वों की मांग को पूरा करने की स्थिति में नहीं है। अत: पोषक तत्वों के अन्य स्रोत, जैसे कार्बनिक खाद व जैविक उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा देने के साथ रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में निरंतर वृद्धि के अलावा दूसरा विकल्प मौजूद नहीं है।

टिकाऊ कृषि सुनिश्चित रखने के लिए मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखना अत्यंत जरूरी है। इस चुनौतीपूर्ण उद्देश्य प्राप्ति की ओर उन्मुख कृषि व उर्वरक नीति वातावरण बनाया जाना चाहिए। इसके लिए प्रमुख पोषक तत्वों के साथ-साथ गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्व धारक उर्वरकों की उपलब्धता सुनिश्चित कराने एवं इनके समन्वित व संतुलित उपयोग पर विशेष बल देने की आवश्यकता है। क्योंकि प्रत्येक राज्य में भूमि की विभिन्न दशाएं होती हैं। विपरीत प्रकृति की दशा में यदि विपरीत प्रकृति वाला उर्वरक प्रयोग किया जाएगा तो लाभ की जगह किसान को आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। उससे इच्छित उपज तो मिलना दूर, उर्वरक पर खर्च की गई धनराशि भी व्यर्थ चली जाएगी।

जब से अधिक उपज देने वाली किस्मों का प्रचलन बढ़ा है, तब से प्रत्येक किसान फसलों में उर्वरक उपयोग के बारे में सजग है, लेकिन फिर भी किसान से कहीं न कहीं भूल हो ही जाती है। जैसे–फसल विशेष या भूमि की भौतिक दशा जाने बिना ही किसी भी उर्वरक का इस्तेमाल करना, मिट्टी परीक्षण कराए बिना ही उर्वरक का प्रयोग करना, प्रस्तावित कुल उर्वरकों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश) को चाहे उनकी आवश्यकता हो या न हो, खेत की तैयारी के समय ही इस्तेमाल करना, आदि आदि।

स्मरण रहे कि मिट्टी का परीक्षण कराए बिना उर्वरक का प्रयोग न केवल धन का अपव्यय है अपितु इससे लाभ भी कम होता है। अत: मिट्टी का परीक्षण कराकर ही उर्वरकों का उपयोग करना किसान

के हित में है। मिट्टी की उर्वरता का मूल्यांकन करने के लिए और उर्वरकों का वैज्ञानिक उपयोग करने के लिए मिट्टी परीक्षण और उसके आधार पर फसलों की अनुक्रिया संबंधी अनुसंधान किया जाता है। मिट्टी परीक्षण से यह पता चल सकता है कि कौन-सी मिट्टी ऐसी है, जिसमें उर्वरक लगाने से फसल पर ज्यादा असर पड़ेगा और कौन-सी ऐसी है, जिसमें अधिक उर्वरक देने से प्रभाव था तो बिल्कुल नहीं होगा या कम होगा। संतुलित उर्वरक उपयोग का अर्थ यह नहीं है, कि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा मृदा में एक समान डाली जाए। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि मृदा में जिस-जिस तत्व की कमी पाई जाए, उसी तत्वधारी उर्वरक को भूमि में दिया जाए।

भारतीय कृषक वर्ग में एक बड़ी भारी कमी यह है कि ये केवल नाइट्रोजन (नाइट्रोजन धारी उर्वरक यूरिया) पर ही अपना ध्यान दे रहे हैं। उन्हें यह पता होना चाहिए कि प्रमुख पोषक तत्वों में फॉस्फोरस और पोटाश भी आवश्यक हैं। जब तक इन तीनों पोषक तत्वों का संतुलन नहीं होगा तो एक तत्व भी इच्छित पैदावार नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त मिट्टी में गौण और सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की कमी भी देखने को मिल रही है। लेकिन आम किसान इस विषय में आज भी अनभिज्ञ हैं। जब तक इन गौण और सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का उपयोग नहीं किया जाएगा, प्रमुख पोषक तत्वों के उपयोग से भी कोई विशेष लाभ नहीं मिल सकता।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने सन् 1969 से अखिल भारतीय स्तर पर मिट्टी की जांच के आधार पर फसलों पर उर्वरकों का प्रभाव परखने के लिए अनुसंधान प्रायोजना आरंभ की थी। यह अनुसंधान देश के विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों में किया गया। तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, हरियाणा, पंजाब, हिसार और दिल्ली के आसपास के इलाकों में लिए गए प्रयोगों से उर्वरकों के इस्तेमाल के बारे में सही सलाह देना संभव हो सका है। इस बारे में अनुसंधान करते समय यह देखा गया है कि:

1. जहां पर उर्वरक बिल्कुल नहीं दिए गए हैं, उन मिट्टियों में दो स्थानों से प्राप्त की गई उपज में मिट्टी की प्रारंभिक उर्वरता से क्या संबंध रहा।

2. जहां मिट्टी में प्रारंभिक उर्वरता स्तर कम था, उसमें उर्वरक लगाने से ज्यादा फायदा होगा, बजाय, उसके, जिसमें कि प्रारंभिक उर्वरता स्तर अधिक था।

3. यह भी पता चला कि लागत और मुनाफा का अनुपात तथा प्रति हेक्टेयर कुल आमदनी उन खेतों में उर्वरक देने से अधिक होती है, जहां उर्वरक देने से पहले मिट्टी की जांच कर ली जाती है, बजाय इसके कि जहां जांच नहीं की जाती।

4. मिट्टी की जांच के आधार पर उर्वरक की सही मात्रा तय करके उर्वरक देने से ज्यादा फायदा मिलता है, बजाय इसके कि किसान अपनी मिट्टी को मनचाहे उर्वरक दे या सामान्य सिफारिशों के आधार पर उर्वरक दें।

इन सभी बातों को किसानों के खेतों पर प्रयोग करके आजमाया गया है और अनुसंधान केंद्रों पर भी ये नतीजे खरे उतरे हैं। यह भी एक व्यावहारिक पक्ष है कि प्रयोगशालाओं में जो खोजें की जाती हैं और जिनको किसानों के खेतों पर भी आजमा लिया जाता है, वह भी बड़े पैमाने पर अपनाए जाने पर या तो बहुत मुश्किल मालूम होती है या बहुत मंहगी। अत: आज जब हम रासायनिक उर्वरकों के फसल में भरपूर इस्तेमाल की बात करते हैं, तो हमें जैविक खादों को नहीं भूलना चाहिए। इस समय ढेर सारा गोबर और फसलों के अवशेष ईंधन के रूप में इस्तेमाल कर लिए जाते हैं जिससे खेतों में वांछित जैविक खादें इस्तेमाल नहीं हो पा रहीं हैं। इस समस्या का हल तभी निकल सकता है जब हम किसानों के लिए ईंधन की सुविधा जुटाएं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक ओर तो हमें ज्यादा पेड़ लगाने होंगे और दूसरी ओर हमें गोबर-गैस के इस्तेमाल को बढ़ावा देना होगा। ऐसा करके हम भारतीय कृषि को एक नया आयाम दे सकते हैं।

परिशिष्ट I: उपयोगी सारणियां

सारणी 1: जैविक खादों का रासायनिक संघटन

खाद	पोषक तत्व की प्रतिशत मात्रा		
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
(क) भारी जैविक खादें			
1. गोबर की खाद	0.5-1.5	0.4-0.8	0.5-1.9
2. शहरी कंपोस्ट	1.2-2.0	1.0	1.5
3. देहाती कंपोस्ट	0.4-0.8	0.3-0.6	0.7-1.0
4. हरी खाद (विभिन्न फसलों का औसत)	0.5-0.7	0.1-0.2	0.6-0.8
(ख) जैविक खादें (खलियां)			
1. अण्डी की खली	5.5-5.8	1.0-1.9	1.0-1.1
2. महुआ की खली	2.5-2.6	0.1-0.9	1.8-1.9
3. करंज की खली	3.9-4.0	0.9-1.0	1.3-1.4
4. नीम की खली	5.2-5.3	1.0-1.1	1.4-1.5
5. सूरजमुखी की खली (छिलका सहित)	4.8-4.9	1.4-1.5	1.2-1.3
6. नारियल की खली	3.0-3.2	1.8-1.9	1.7-1.8
7. बिनौले की खली (छिलका सहित)	6.4-6.5	2.8-2.9	2.1-2.2
8. बिनौले की खली (छिलका सहित)	3.9-4.0	1.1-1.9	1.6-1.7
9. मूंगफली की खली	7.0-7.2	1.5-1.6	1.3-1.4

10. अलसी की खली	5.5-5.6	1.1-1.5	1.2-1.3
11. रामतिल की खली	4.7-4.8	1.8-1.9	1.1-1.3
12. सरसों की खली	5.1-5.2	1.8-1.9	1.1-1.3
13. कुसुम (छिलके सहित) की खली	4.9	1.4	1.2
14. तिल की खली	6.2-6.3	2.0-2.1	1.2-1.3
(ग) पशुजात खादें			
1. सूखा खून	10.0-12.0	1.0-1.5	0.6-0.8
2. मछली की खाद	4.0-10.0	3.0-9.0	0.3-1.5
3. गुआनों की खाद	7.0-8.0	11.0-14.0	2.3-3.0
4. कच्ची हड्डी का चूरा	3.4	20-25	-
5. भाप से पकी हड्डी का चूरा	1.0-2.0	25-30	-
6. उपचारित आपंक (सूखी)	5.0-6.5	3.0-3.5	0.5-0.7
7. अवक्षेपित आपंक (सूखा)	2.0-2.5	1.0-1.2	0.4-0.5
8. विष्ठा की खाद	1.2-1.3	0.8-1.0	0.4-0.5
9. मानव मूत्र	1.0-1.2	0.1-0.2	0.2-0.3
10. गोबर और मूत्र मिला हुआ	0.60	0.15	0.45
11. घोड़े की लीद और मूत्र मिला हुआ	0.70	0.25	0.55
12. मेंगनी और मूत्र मिला हुआ	0.95	0.35	1.00

सारणी 2: विभिन्न उर्वरकों में पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा

उर्वरक	कुल नाइट्रोजन	अमोनिकल नाइट्रोजन	नाइट्रेट नाइट्रोजन	एमाइड नाइट्रोजन	तुल्यांक अम्लता
(क) नाइट्रोजनधारी उर्वरक					
1. निर्जल अमोनिया	81.5	81.5	–	–	148
2. अमोनियम क्लोराइड	25.0	25.0	–	–	128-140
3. अमोनियम नाइट्रेट	33.5	16.75	16.76	–	80
4. अमोनियम सल्फेट	20.6	20.6	–	–	110
5. कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट (25% नाइट्रोजन)	25.0	12.50	12.50	–	उदासीन
6. कैल्सियम 26% अमोनियम उदासीन नाइट्रेट नाइट्रोजन	26.0	13.0	13.0	–	उदासीन
7. यूरिया	46.0	–	–	46.0	80

(ख) फॉस्फोरसधारी उर्वरक

उर्वरक	कुल फॉस्फोरस	उपलब्ध फॉस्फोरस	जल में विलेय	कुल चूना (कैल्शियम ऑक्साइड)	कुल मैगनीशियम
8. सिंगल सुपरफॉस्फेट	18.0-20.0	16.5-17.0	16.0	25.0-30.0	0.5
9. सिंगल सुपर फॉस्फेट (ग्रेड-11.14% फॉस्फोरस)	16.0-18.0	14.5-16.0	14.0	–	–
10. ट्रिपल सुपरफॉस्फेट	46.0	43.0	42.5	17.0-20.0	0.5
11. पलफास	17.0	16.0	5.0	–	–
12. रॉक फॉस्फेट					
(क) रॉक फॉस्फेट	30.0-40.0	–	–	–	–
(ख) उदयपुर रॉक फॉ.	20.5-35.0	–	–	–	–
(ग) मंसूरी रॉक फॉ.	23.0-34.0	–	–	–	–
(घ) झबुआ रॉक फॉ.	31.0-38.0	–	–	–	–

(ग) पोटाशधारी उर्वरक

उर्वरक	K_2O (%)
13. पोटैशियम क्लोराइड	60.0
14. पोटैशियम सल्फेट	48.0

सारणी 3: विभिन्न उर्वरकों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा मि. ग्रा./किग्रा.

उर्वरक	तांबा	जस्ता	मैंगनीज	बोरॉन	मॉलिब्डेनम
(क) नाइट्रोजनधारी उर्वरक					
1. अमोनियम सूक्ष्म सल्फेट	0.5	0.33	70	6.0	0.1
2. यूरिया	0-3.6	0.5	0.5	0.5	0.7-6.2
3. कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट	लेशमात्र	18.0	8.35	10.50	लेशमात्र
(ख) फॉस्फोरसधारी उर्वरक					
1. सुपर फॉस्फेट (सिंगल)	26.0	50-165	65-270	9.5	3.3
2. ट्रिपल सुपर फॉस्फेट	2-12	53-100	175-245	529	9.1
3. बेसिक स्लैग	9.2-56.4	4-59	68900	33.4	10.1
4. रॉक फॉस्फेट	5.6-9.5	24-137	130320	16	5.6
5. हड्डी का चूरा	270	660	500	715	-
(ग) पोटाशधारी उर्वरक					
1. पोटैशियम क्लोराइड	3.0	3.0	8.0	14.0	0.2

2. पोटैशियम सल्फेट	5.6-10.4	2.0	2.2-13.0	4.0	0.2
(घ) जटिल उर्वरक					
(क) अमोनियम	3.4 लगभग	80	115-220	-	2.2

सारणी 4: हरी खाद वाली विभिन्न फसलों की रासायनिक रचना

फसल	वानस्पतिक नाम	सूखे पदार्थ में पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा				
		N	P	K	Ca	Mg
सनई	*क्रोटोलेरिया जंसिया*	2.210	0.380	1.478	2.867	0.660
ढैंचा	*सेस्बेनिया एक्युलिएटा*	2.340	0.240	2.970	-	-
लोबिया	*विग्ना कैटजंग*	2.310	0.550	2.393	2.332	0.957
मूंग	*फेसिओलस औरियस*	2.200	0.480	2.103	1.689	0.648
रिजका	*मेडिकागो सैटाइबा*	3.40	0.590	3.007	1.647	0.576
नील	*टैफ्रोसिया कैन्डिडा*	3.15	0.503	2.300	2.595	1.014
सोया-बीन	ग्लाइसीन प्रजाति	2.84	0.614	1.359	2.417	0.947

सारणी 5: पाइराइट की विशिष्ट रासायनिक रचना

रचना तत्व	प्रतिशत मात्रा
कुल गंधक	22-24
लोहा	20-22
मैग्नीशियम (ऑक्साइड के रूप में)	0.55-0.6
कैल्सियम (ऑक्साइड के रूप में)	0.1
ऐल्युमिनियम	6.8
सिलिका	33-40
कार्बन	2-3
जस्ता	0.02
तांबा	0.05
मैंगनीज	0.01

सारणी 6 : उर्वरता-वर्ग

मृदा अवयव	निम्न	मध्यम	उच्च
1. जैविक कार्बन (%)	< 0.5	0.5-75%	> 0.75%
2. प्राप्य नाइट्रोजन (किग्रा./हे.)	< 280.0	280-560	> 560
3. प्राप्य फॉस्फोरस (किग्रा./हे.)	< 10.0	10-24.6	> 24.6
4. प्राप्य पोटाश (किग्रा./हे.)	< 108	108-280	> 280

सारणी 7: पोषक तत्वों की कमी दर्शाने वाले सांकेतिक पौधे

क्र.सं.	पोषकतत्व	प्रतीक	सांकेतिक पौधे
1.	नाइट्रोजन	N	मक्का, सेब, आड़ू और नींबू
2.	फास्फोरस	P	मक्का, सलाद, जौ और टमाटर
3.	पोटैशियम	K	आलू, लूसर्न, सेम, तम्बाकू, कद्दू, वर्गीय सब्जियों और फल, बादाम, गन्ना, चुकंदर, गाजर और अनाज की फसलें
4.	कैल्सियम	Ca	बरसीम
5.	मैग्नीशियम	Mg	आलू, फूलगोभी, सेब
6.	गंधक	S	बरसीम, जौ, सेम, नींबू, मक्का, सोयाबीन, तंबाकू
7.	बोरॉन	B	बरसीम, शलजम, पातगोभी, सेब और नाशपाती
8.	तांबा	Cu	नींबू,आलू, बुखारा, जैतून, आड़ू,अखरोट, सेब, जई, जौ, मक्का, तंबाकू, नींबू, टमाटर और प्याज
9.	लोहा	Fe	फूलगोभी, नींबू, यूकेलिप्टस, केला और अकेशिया
10.	मैंगनीज	Mn	सेब, चेरी, नींबू और चुकंदर
11.	मॉलिब्डेनम	Mo	टमाटर, पालक, चुकंदर, फूलगोभी, नींबू और घासें
12.	जस्ता	Zn	नींबू, आड़ू, मक्का, सेब, कपास, जौ, प्याज, ज्वार, टमाटर, जई
13.	क्लोरीन	Cl	टमाटर, गाजर, चुकंदर, गेहूं, बरसीम तथा सेम

सारणी 8: मृदा पी.एच. के अनुसार जिप्सम की आवश्यक मात्रा

मृदा का पी. एच.		जिप्सम की मात्रा (टन/हे.)
निम्न स्तर	उच्च स्तर	
8.60	8.70	2.00
8.80	8.90	3.00
9.00	9.10	4.00
9.20	9.30	5.00
9.40	9.50	7.00
9.60	9.90	9.00
10.00	10.10	13.00
10.00	14.00	14.00

सारणी 9: मृदा पी-एच मान के अनुसार चूना की आवश्यक मात्रा

मृदा पी-एच	चूना की मात्रा (टन/हे.)
4.80	12.40
4.90	11.80
5.00	11.20
5.10	11.60
5.20	10.00
5.30	9.40
5.40	8.90
5.50	8.30
5.60	7.70
5.70	7.10
5.80	6.50
5.90	6.00
6.00	5.40
6.10	4.80
6.20	4.20
6.30	3.70
6.40	3.10

परिशिष्ट II

पारिभाषिक शब्दावली

हिंदी-अंग्रेजी

अचलीकरण	immobilisation
अपचयन	reduction
अपक्षयण	weathering
अतिरिक्त उपभोग	luxurious consumption
अधिशोषण	adsorption
अनुत्पादकता	unproductivity
अनुत्पादक मृदा	unproductive soil
अन्योन्य क्रिया	interaction
अम्लीय मृदा	acidic soil
अवशेष	residue
अवायुजीवी जीवाणु	anaerobic bacteria
अवशोषण	absorption
ऑक्सीकरण	oxidation
आवश्यक तत्व	essential element
इकाई	unit
उत्पादकता	productivity
उत्पादक मृदा	productive soil

उत्पादन	production
उदासीनीकरण	neutralisation
उद्योग	industry
उर्वरक	fertiliser
उर्वरता	fertility
एकीकृत	integrated
एक्टिनोमाइसिटीज	actinomycetes
कमी	deficiency
कवक	fungi
कार्बनिक पदार्थ	organic matter
कूड़ा-करकट	rubbish
कूँड़	furrow
कृषि अवशेष	agricultural residue
कृषि जन्य अपशिष्ट	agricultural waste
केंचुआ	earthworn
कैडमियम	cadmium
कैल्शियम	calcium
कैल्साइट	calcite
कंपोस्ट	compost
कंपोस्टिंग	composting
खनिजीकरण	mineralisation
खरपतवार	weed

खाद	manure
खाद्यान्न उत्पादन	food grain poduction
गोबर	dung
गोबर की खाद	farm yard manure
गौण पोषक तत्व	secondary nutrient
ग्रंथिका	nodule
घनत्व	density
घासें	grasses
चरागाह	grassland
चयापचय	metabolism
चूना	lime
चूनेदार मृदा	calcareous soil
जटिल उर्वरक	complex fertiliser
जल-निकास	drainage
जलवायु	climate
जलोढ़ मृदा	alluvial soil
जैव-उर्वरक	biofertiliser
जैव-खाद	organic manure
जीव	organism
जीवाणु	bacteria
जीवाणु निवेशक	bacterial inoculant
जीवाणु निवेशन	bacterial inoculation

टॉप ड्रेसिंग	top dressing
टिकाऊ कृषि	sustainable agriculture
तत्व	element
तनूकरण	dilution
तापमान	temperature
दौजी	tiller
धनायन विनिमय क्षमता	cation exchange capacity
दौजी निकलना	tillering
नाइट्रोजन-चक्र	nitrogen cycle
नाइट्रोजन यौगिकीकरण	nitrogen fixation
नाइट्रोजनी उर्वरक	nitrification
नाइट्रीकरण	nitrification
निक्षालन	leaching
नील - हरित शैवाल	blue green algae
पलवार	mulch
पारिस्थितिकी	ecology
पारिस्थिकी-तंत्र	ecosystem
पी-एच.	pH
पोषक तत्व	nutrient
पोषण	nutrition
पोटैशियम स्थिरीकरण	potassium fixation
फर्न	fern

फसल	crop
फसल-चक्र	crop rotation
फॉस्फोरस स्थिरीकरण	phosphoras fixation
फॉस्फेटी उर्वरक	phosphatic fertiliser
फलीदार फसल	leguminous crop
बहिस्राव	effluent
बायोगैस	biogas
बेस विनिमय	base exchange
बेसिक स्लैग	basic slag
बिना बुझा चूना	quick lime
भूमि	land
भारी धातु	heavy metal
भूमिक्षरण	soil erosion
मलजल	sewage
मृदा उर्वरता	soil fertility
मृदा उत्पादकता	soil productvity
मृदा परिच्छेदिका	soil profile
मृदा परीक्षण	soil testing
मृदा नमूना	soil sample
मृदा समुच्चय	soil aggregate
मृदा सुधारक	soil amendment
मिश्रित उर्वरक	mixed fertiliser

लवणीकरण	salinisation
लवणीयता	salinity
लाल मृदा	red soil
लेटेराइट मृदा	laterite soil
लेटेराइटिकरण	laterisation
वनस्पति	vegetation
वानस्पतिक वृद्धि	vegetative growth
वायुजीवी जीवाणु	aerobic bacteria
विनिमय क्षमता	exchange capacity
विनिमय सोडियम प्रतिशतता	exchangeable sodium percentage
विषाक्तता	toxicity
शस्य, सस्य	crop
शस्यीय-क्रिया	agronomic practice
शैवाल	algae
शैवालीय निवेशन	algal inoculation
शैवालीय निवेशक	algal inoculant
सक्रियता	activity
संरक्षण	conservation
संस्तर	horizons
सतही जल	surface water
सांद्रता	concentration
सुधारक	amendment

सूचक पौधे	indicator plants
समन्वित	integrated
सूक्ष्मजीव	micro-organism
सूक्ष्मजैविक क्रिया	microbial activity
सूक्ष्म पोषक तत्व	micronutrient
स्वपोषित जीवाणु	autotrophic bacteria
हरी खाद	green manure
ह्युमस	humus
ह्युमसीकरण	humification
हानिकारक प्रभाव	harmful effect
क्षरण	erosion
क्षारीयता	alkalinity
क्षारीय मृदा	alkaline soil

अंग्रेजी-हिंदी

absorption	अवशोषण
adsorption	अधिशोषण
acidic soil	अम्लीय मृदा
actinomycetes	एक्टिनोमाइसिटीज
activity	सक्रियता
aerobic bacteria	वायुजीवी जीवाणु
agriculture	कृषि
agricultural residue	कृषि अवशेष
agricultural waste	कृषि-जन्य अपशिष्ट
agronomic practice	शस्यीय क्रिया
algae	शैवाल
algal inoculation	शैवालीय निवेशन
algal inoculant	शैवालीय निवेशक
alluvial soil	जलोढ़ मृदा
alkalinity	क्षारीयता, क्षारता
alkaline soil	क्षारीय मृदा
anaerobic	अवायुजीवी जीवाणु
amendment	सुधारक
ammonification	अमोनीकरण
autotrophic bacteria	स्वपोषित जीवाणु

bacteria	जीवाणु
bacterial inoculation	जीवायु निवेशन
bacterial inoculant	जीवाणु निवेशक
biofertilizer	जैव-उर्वरक
biogas	बायोगैस
blue green algae	नीलहरित शैवाल
base exchange	बेस विनिमय
basal dressing	आधारीय प्रयोग
basic slag	बेसिक स्लैग
cadmium	कैडमियम
calcium	कैल्शियम
calcite	कैलसाइट
calcareous soil	चूनेदार मृदा
clay	क्ले (मृत्तिका)
climate	जलवायु
clover	तिपतिया
compost	कंपोस्ट
composting	कंपोस्टिंग
complex fertilizer	जटिल उर्वरक
concentration	सांद्रता
conservation	संरक्षण
crop	फसल/शस्य, सस्य

crop rotation	फसल-आवर्तन/ शस्य-आवर्तन या चक्र
cation exchange capacity	धनायन विनिमय क्षमता
deficiency	कमी, न्यूनता
density	घनत्व
dilution	तनुकरण
dung	गोबर
earth worm	केंचुआ
ecology	पारिस्थितिकी
ecosystem	पारिस्थितिकी-तंत्र
effluent	बहि:स्राव
element	तत्व
environment	पर्यावरण
erosion	क्षरण
essential element	आवश्यक तत्व
exchange capacity	विनिमय क्षमता
exchangeable sodium percentage	विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशतता
farm yard manure	गोबर की खाद
fern	फर्न
fertility	उर्वरता
fertiliser	उर्वरक
fertiliser use efficiency	उर्वरक उपयोग क्षमता

fertile soil	उर्वर मृदा
fixation	यौगिकीकरण/स्थिरीकरण
food grain production	खाद्यान्न उत्पादन
fungi	कवक
furrow	कूँड़
grasses	घासें
grassland	चरागाह
green manure	हरी खाद
harmful effect	हानिकारक प्रभाव
heavy metal	भारी धातु
horizon	संस्तर
humification	ह्यूमसीकरण
humus	ह्यूमस
hidden hunger	छिपी भूख
humidity	आर्द्रता
indicator plants	सूचक पौधे
ion exchange	आयन विनिमय
industry	उद्योग
interaction	अन्योन्य-क्रिया
irrigation	सिंचाई
integrated	समन्वित/एकीकृत
immobilisation	अचलीकरण

land	भूमि
laterisation	लेटेराइटीकरण
laterite soil	लेटेराइट मृदा
leaching	निक्षालन
leguminous crop	फलीदार फसल
luxurious consumption	अतिरिक्त उपभोग
magnesium	मैग्नीशियम
manure	खाद
metabolism	चयापचय
micronutrient	सूक्ष्मपोषक तत्व
micro-organism	सूक्ष्मजीव
microbial activity	सूक्ष्मजैविक-क्रिया
mineralisation	खनिजीकरण
mixed fertiliser	मिश्रित उर्वरक
mulch	पलवार
neutralisation	उदासीनीकरण
night soil	विष्ठा
nitrification	नाइट्रीकरण
nitrogen cycle	नाइट्रोजन-चक्र
nitrogenous fertiliser	नाइट्रोजनी उर्वरक
nitrogen fixation	नाइट्रोजन यौगिकीकरण
nodule	ग्रंथिका

nutrient	पोषक तत्व
nutrition	पोषण
organic acid	जैव-अम्ल/कार्बनिक अम्ल
organic manure	जैव-खाद/कार्बनिक खाद
organic matter	जैव-पदार्थ
organism	जीव
oxidation	ऑक्सीकरण
phosphatic fertiliser	फॉस्फेटी उर्वरक
phosphorus fixation	फॉस्फोरस स्थिरीकरण
potassium fixation	पोटैशियम स्थिरीकरण
production	उत्पादन
productivity	उत्पादकता
profile	परिच्छेदिका
quick lime	बिनाबुझा चूना
red soil	लाल मृदा
reduction	अपचयन
residue	अवशेष
rubbish	कूड़ा-करकट
salinisation	लवणीकरण
saline soil	लवणीय मृदा
secondary nutrient	गौण/द्वितीयक, पोषक तत्व

sewage	वाहित मलजल
sludge	आपंक
spraying	छिड़काव
soil aggegate	मृदा समुच्चय
soil amendment	मृदा सुधारक
soil conservation	मृदा संरक्षण
soil fertility	मृदा उर्वरता
soil productivity	मृदा उत्पादकता
soil profile	मृदा परिच्छेदिका
soil sample	मृदा नमूना
soil testing	मृदा परीक्षण
surface water	सतही जल
sustainable agriculture	टिकाऊ कृषि
temperature	तापमान
testing	परीक्षण
tillage	कर्षण/जुताई
tiller	दौजी
tillering	दौजी निकलना
top dressing	टॉप ड्रेसिंग
toxicity	विषाक्तता
unit	इकाई
unproductivity	अनुत्पादकता

unproductive soil	अनुत्पादक मृदा
vegetation	वनस्पति
vegetative growth	वानस्पतिक वृद्धि
vermi composting	वर्मी कैंपोस्टिंग
vermiculture	वर्मीकल्चर
wasteland	व्यर्थ भूमि
weathering	अपक्षयण
weed	खरपतवार
weeding	निराई
worm cast	केंचुए का मल
zinc	जिंक

परिशिष्ट-III

संदर्भ :

टिस्डैल एस. एल. इत्यादि (1990) स्वायॅल फर्टिलिटी एण्ड फर्टिलाइजर्स, (चतुर्थ संस्करण), मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयार्क,

तिवारी, काशीनाथ (1995) उर्वरक और खाद (प्रथम संस्करण), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

दिनेश मणि (2001) मिट्टी परीक्षण अवश्य कराएं, नर्मदा कृषि परिवार फरवरी अंक।

दिनेश मणि (2000) उर्वरकों का बेहतर इस्तेमाल आवश्यक, नर्मदा कृषि परिवार, मार्च अंक।

दिनेश मणि (2000) मिट्टी परीक्षण के पश्चात् ही उर्वरक प्रयोग करें, खाद पत्रिका, जनवरी अंक।

दिनेश मणि (1999) बारानी खेती में उर्वरक प्रबंध के विभिन्न पहलू, खाद पत्रिका, मई अंक।

दिनेश मणि (1999) सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का इस्तेमाल जरूरी, कृषि चयनिका, जुलाई-सितंबर अंक।

दिनेश मणि (1999) ग्रामीण अपशिष्टों के निपटान में वर्मी कंपोस्टिंग, कुरुक्षेत्र, जुलाई अंक।

दिनेश मणि (1999) फसलोत्पादन में सूक्ष्म परिवेश में बायोगैस की प्रासंगिकता, कुरूक्षेत्र, अक्टूबर-दिसंबर अंक।

दिनेश मणि (1999) बदलते ग्रामीण परिवेश में बायोगैस की प्रासंगिकता कुरूक्षेत्र, फरवरी अंक।

दिनेश मणि (1999) वर्तमान भारतीय कृषि के संदर्भ में उर्वरक उपयोग की स्थिति, खाद पत्रिका, जनवरी अंक।

दिनेश मणि (1999) उर्वरकों की कहानी, (प्रथम संस्करण) पुस्तकायन नई दिल्ली।

दिनेश मणि (1999) जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण, प्रतियोगिता दर्पण जुलाई अंक।

दिनेश मणि (1999) उर्वरकों के कुशल उपयोग से अधिक लाभ, कृषि जीवन सितंबर-दिसंबर अंक।

दिनेश मणि (1997) मृदा उर्वरता में पोटाशधारी उर्वरक, कृषि जीवन, सितंबर-दिसंबर अंक।

दिनेश मणि (1997) खादों एवं उर्वरकों का उपयोग : उपयुक्त समय व विधियां, आविष्कार, नवंबर अंक।

दिनेश मणि (1997) भारतीय कृषि का वर्तमान परिदृश्य एवं उर्वरक उपयोग, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त अंक।

दिनेश मणि (1997) मृदा उर्वरता और उर्वरक, खाद पत्रिका जनवरी अंक।

दिनेश मणि (1996) भारतीय कृषि और रासायनिक उर्वरक, खाद पत्रिका अगस्त अंक।

दिनेश मणि (1996) उर्वरक उपयोग की विधि, खाद पत्रिका, फरवरी अंक।

दिनेश मणि (1996) मिट्टी परीक्षण कराएं और अधिक लाभ पाएं, कृषि जीवन, मार्च-अप्रैल अंक।

दिनेश मणि (1995) सूक्ष्मात्रिक तत्वों का महत्व, विज्ञान, नवंबर-दिसंबर अंक।

दिनेश मणि (1995) मृदा को उर्वर बनाना भी जरूरी, कृषि चयनिका अक्टूबर-दिसंबर अंक।

दिनेश मणि (1995) पादप पोषण में सूक्ष्म मात्रिक तत्व, किसान ज्योति अप्रैल-जून अंक।

मिश्र, शिवगोपाल तथा दिनेश मणि (1994) जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण आविष्कार, जनवरी अंक।

मिश्र, शिवगोपाल तथा दिनेश मणि (1993) बीमार पौधों की दवा-सूक्ष्म मात्रिक तत्व, खेती, जुलाई अंक।

राय, एम.एम. (1993) फसलों के लिए संतुलित उर्वरक (प्रथम संस्करण) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।

MGIPCBE—CRC—1/CSTT/ND/05—27-1-06—600 copies

©

PED-885
600—2006 (DSK-II)

Price : Inland Rs. 367.00 ; Foreign £ 7.94 or $ 4.33

PRINTED BY THE MANAGER, GOVERNMENT OF INDIA PRESS, COIMBATORE-19
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, CIVIL LINES, DELHI-54
2006